प्रकाशक .

एस. के. पब्लिशर्स
E-10, पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान महाविद्यालय
आल इण्डिया रेडियो स्टेशन रोड
बीकानेर (राजस्थान)

शाखा
43, बछराज का बाग
12 वी रोड, सरदारपुरा
जोधपुर-342 001

प्रथम संस्करण · नवम्बर 1988
मूल्य 80 रु
आवरण . श्रीमती उषा पुरोहित

एस. के. पब्लिशर्स, बीकानेर (राजस्थान) 334 001, भारत के लिए श्रीमती उषा पुरोहित द्वारा प्रकाशित एवं साखला प्रिन्टर्स बीकानेर मे मुद्रित।

पूजनीय माताजी श्रीमती श्यामप्यारी पुरोहित
एवं पिताश्री शिवदत्त जी पुरोहित के लिए
जिनके आशीर्वाद और प्रेरणा से यह पुस्तक पूरी हुई।



प्रस्तावना

जीवन के लिये पानी, हवा, दूध, मांस व वनस्पति बहुत ही आवश्यक हैं। मनुष्यों और पशुओं का स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखने के लिये इन सभी का शुद्ध व आरोग्यप्रद अवस्था में उपलब्ध होना अति आवश्यक है। आज से और अभी से ही हमारा ध्येय यह होना चाहिये कि अच्छे स्वास्थ्य के लिये हम हमारे पर्यावरण को प्रदूषित नहीं करें। हर व्यक्ति को स्वास्थ्यविज्ञान के नियमों का दृढता से पालन करते हुए प्रदूषण पर नियंत्रण पाने के लिए मिल-जुल कर सामुहिक योग दान देना चाहिये। भारत में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या विकराल रूप लिये खड़ी है। प्रदूषण के कारण पानी, हवा, दूध व मांस का संदूषण होता है जिससे प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में मनुष्य, पशु, मुर्गी व मछली आदि रोग ग्रस्त होते हैं या मर जाते हैं। आम व्यक्ति स्वास्थ्यविज्ञान के अध्ययन द्वारा ही स्वच्छ व प्रदूषण रहित पर्यावरण बनाये रख सकता है। इस पुस्तक में पर्यावरण प्रदूषण के कारणों का विस्तृत ज्ञान और उससे बचाव के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है।

हिन्दी में अपने विषय की प्रथम पुस्तक होने के कारण इसमें कुछ कमियां और दोष रह जाना स्वाभाविक है। विद्यार्थियों, अध्यापकों और अन्य पाठकों से मेरा निवेदन है कि वे इस पुस्तक की त्रुटियां दूर करने और इसको और भी अधिक उपयोगी बनाने के लिए आवश्यक सुझाव लेखक को भेजने की कृपा करें।

इस पुस्तक की भाषा सुधार हेतु मुझे श्री ऋषि कुमार रंगा, राजकीय मुद्रणालय, बीकानेर और डॉ. सत्यनारायण स्वामी, राजस्थान अभिलेखागार विभाग, बीकानेर से पर्याप्त सहायता मिली है। मैं आपका आभारी हूं।

मैं अपने सुयोग्य प्रकाशक श्रीमती उषा का आभारी हूं जिनके सतत् प्रयत्न से यह पुस्तक इतनी सुन्दरता से प्रकाशित हो सकी है।

बीकानेर
नवम्बर, 1988

एस. के. पुरोहित

विषय सूची

प्रथम भाग

पर्यावरण प्रदूषण कारण और निवारण

द्वितीय भाग

पानी और हवा का विश्लेषण (प्रायोगिक)

प्रथम भाग

पर्यावरण प्रदूषण कारण और निवारण



पानी

पानी का बढ़ता दुरुपयोग और प्रदूषण

मनुष्यों, पशुओं और पौधों के जीवन और बढ़ोतरी के लिये पानी प्राथमिक महत्त्व रखता है। यह शरीर में पानी की मात्रा और उसका तापक्रम बराबर बनाये रखने में सहायक है। हमारे शरीर में कुल भार के अनुपात में 75 प्रतिशत पानी की मात्रा होती है। यह पसीने, मल और मूत्र के द्वारा शरीर में काम न आने वाले और हानिप्रद पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करता है। पानी के मामले मे इस देश की गिनती दुनिया के सम्पन्न देशो में होती है मगर दुर्भाग्य की बात है कि कही पर वर्षा बहुत और कहीं पर नही के बराबर होती है इसलिये इस देश में पानी की समस्या एक विकट समस्या है। साथ ही साथ पानी का रख-रखाव व उपयोग ठीक से नही होने के कारण पानी के प्रदूषण की समस्या विकराल रूप धारण कर चुकी है। ज्यादा पानी बरसना, बाढ आना, सूखा पडना एव घरो और कारखानों से निकलने वाला गंदा पानी आदि इस समस्या मे आग मे घी डालने का काम कर रहे हैं। इनसे प्रदूषण इतना बढ़ रहा है कि नलकूपों, हैंडपम्पों और पानी के स्रोतों से रंगीन पानी आने लगा है। पानी में मनुष्यो और पशुओं में बीमारी पैदा करने वाले सूक्ष्म जीवाणु, रासायनिक विष, कारखाने और घर की नालियों का पानी और कार्बनिक तथा अकार्बनिक पदार्थ पाएं जाये तो उसे प्रदूषित पानी कहते हैं। पानी का प्रदूषण मुख्यतया मनुष्यो और पशुओं के द्वारा ही होता है।

पानी के रासायनिक मिश्रण में दो भाग हाइड्रोजन और एक भाग आक्सीजन का होता है। वाष्प रूप में पानी बहुत शुद्ध होता है, लेकिन जब वर्षा के रूप में यह धरती पर बहता है तब वायुमण्डल और धरती की अशुद्धियां अपने साथ घोल लेता है। पानी मे पदार्थों को घोलने का गुण होने के कारण यह आसानी से दूषित हो जाता है, इसलिये यह कभी भी शुद्ध रूप में नही पाया जाता।

पानी के उपयोग

1. घरेलू उपयोग

(ए) मनुष्यो के पीने के लिये (बी) खाना पकाने के लिये (सी) धोने के लिये (डी) पशुओं के पीने और उनके घरों की सफाई के लिये (इ) नहाने के लिये

(एफ) गाड़ियां धोने के लिये (जी) बागवानी के लिये (एच) घरों को ठंडा रखने के लिये।

2. सार्वजनिक उपयोग

(ए) नालियों की सफाई (बी) गलियों की सफाई (सी) अस्पताल की सफाई (डी) नहाने के कुंड के लिये (इ) मूत्रालय की सफाई (एफ) पीने के लिये सार्वजनिक नल।

3. कारखानों के लिये

(ए) लोहा (बी) स्टील (सी) कागज (डी) कपड़ा (इ) रेल व चमड़ा उद्योग (एफ) मछली पालन (जी) दाना बनाने का कारखाना (एच) दूध की डेयरी और अन्य उद्योग।

4. कृषि सम्बन्धी उपयोग

पानी द्वारा मनुष्यों और जानवरों में फैलने वाले रोग

प्रदूषण द्वारा मनुष्यों और पशुओं में सूक्ष्म जीवों और रसायनों की उपस्थिति के कारण बहुत से रोग हो जाते हैं जो इस प्रकार हैं—

(ए) पानी मे सूक्ष्म जीवाणुओं की उपस्थिति के कारण मनुष्यों मे होने वाले रोग :—

संक्रामक रोगो के कारण	सूक्ष्म जीवाणुओं की किस्में/वर्ग	रोग
वाइरस	हिपैटाइटिस वाइरस ए और बी	वाइरल हिपैटाइटिस
	पोलियो वाइरस	पोलियोमाइलाइटिस
बैक्टीरिया	क्लोस्ट्रीडियम बेलशाई	गैस गैंग्रीन
	ऐस्करिटीया कोलाई	गैस्ट्रोएन्टराइटिस
	पास्चुरैला टूलेरेन्सिस	टूलेरिमिया
	साल्मोनीला टायफी	टायफोयड
	साल्मोनीला पैराटायफी	पैराटायफोयड
	शिगला स्पीशीज	बैसिलरी डिसेन्टरी
	स्ट्रैप्टोकोकस फीकलिस	एन्टराइटिस
	विब्रियों कोलेरा	कोलेरा (हैजा)
स्पाइरोकीटस	लेप्टोस्पाइरा— इक्टीरोहिमोरेजिका	वेल्स रोग
प्रोटोजोआ	एन्टेअमीबा हिस्टोलिटिका	अमीबिएसिस
	जिआरडिया लेम्बलिया	जिआरडियेसिस

हैल्मिन्थ	ऐकेरिस लम्ब्रीक्वायडस	ऐसकेरिस-रूग्णता (दस्त लगती है)
	एन्ट्रोबियस वर्मीकूलरिस	थ्रेड वर्म, इनसे रुकावट, न्युमोनिया आदि होता है।
	इकाइनोकोकस ग्रेन्यूलोसस	हाइडेटिड रोग
	ड्रेकनकूलस मीडीनसिस	नारू रोग (इस रोग के भ्रूण साइक्लोप मे पनपते हैं और इन्हें मनुष्य पानी के साथ पी लेता है)
	सिस्टोसोमा जापानिकम सिस्टोसोमा वान्सिनि सिस्टोसोमा हिमेटोबियम	सिस्टोसोमिएसिस- रूग्णता (यह पानी में रहने वाले सिरकेरिया में पाया जाता है)

(बी) पानी में सूक्ष्म जीवाणुओं की उपस्थिति के कारण पशुओं में होने वाले रोग :–

संक्रामक रोगों के कारण	सूक्ष्म जीवाणुओं की किस्में	रोग
वायरस	खुरपका-मुंहपका रोग की वायरस	खुरपका–मुंहपका रोग
	रिन्डरपैस्ट वाइरस	पशु प्लेग या रिन्डरपैस्ट
	न्यू कैसल वाइरस या रानीखेत रोग की वायरस	न्यू कैसल रोग या रानीखेत की बीमारी
बैक्टीरिया	बैसिलस एन्थ्रेसिस	एन्थ्रेक्स
	ब्रूसेला एबार्टस	ब्रूसेल्लोसिस
	क्लोस्ट्रीडियम वेलशाइ	गैस गेंग्रीन
	क्लोस्ट्रीडियम शोभिआइ	लंगडी रोग
	एरिसिपेलोथ्रिक्स रूजियोपैथी	सुअरों में एरिसिपेलास
	ऐस्करिटीया कोलाई	बछडों में दस्त लगना
	माइकोबैक्टीरियम—पैराट्युबरक्युलोसिस	जोने रोग
	माइकोबैक्टीरियम—ट्युबरक्युलोसिस (गाय, मनुष्य और मुर्गी में क्षय रोगों के जीवाणुओं की किस्में)	क्षय रोग

	बैसिलस मेलिआई	ग्लैंडर्स
	स्ट्रेप्टोकोकस इक्वाई	स्ट्रेन्गलस
स्पाइरोकीटस	लेप्टोस्पाइरा बोविस	गायों में लेप्टोस्पाइरा का रोग
	लेप्टोस्पाइरा केनिकोला	केनिकोला ज्वर
	लेप्टोस्पाइरा— इक्टीरोहिमोरेजिका	वेल्स रोग
प्रोटोजोआ	आइमेरिया की किस्में	पशु-पक्षियों में कावसीडीयोसिस का रोग
	एन्टेअमीबा हिस्टोलिटिका	कुत्तों में अमीबिएसिस का रोग
हैल्मिन्थ	फैसियोला हिपॅटिका	फैसियोला-रुग्णता
	सिस्टीसरकस बोविस	मांसपेशियो में सिस्टीसरकस की अवस्था
	डाइफाइलोबोथ्रीयम लेटम	माइक्लोप्स में मध्य अवस्था और मछली में प्लीओसर्कोइड लार्वल अवस्था
	इकाइनोकोकस ग्रेन्यूलोसस	पशुओं में हाइडेटिड रोग
	टोक्सोकेरा केनिस	ऐस्केरिस रुग्णता (दस्त लगती है)
	ऐस्केरिस सम्म	एस्केरिस के कारण फेफड़ों में सूजन आना

(सी) मनुष्यों और पशुओं में निम्न रसायन पानी में होने पर कई तरह के रोग पैदा करते हैं—

(ए) अम्ल (बी) क्षार (सी) साबुन को घोलने वाले रसायन (डी) आर्सेनिक (इ) सायनायड (एफ) सीसा (जी) नाइट्रोजिनस पदार्थ (एच) जीवों को हानि पहुंचाने वाले कार्बनिक पदार्थों के मिश्रण (आइ) सल्फाइड (जे) पिगमेन्टस (के) डाइज (एल) ब्लीचिंग पदार्थ।

जल-प्रदूषण के कारण—

1. घरों से निकलने वाला गंदा पानी (मल, मूत्र, रसोईघर और स्नानघर)	(ए) रोग पैदा करने वाले जीवाणु और (बी) मौलिक पदार्थों में पृथक होने योग्य कार्बनिक पदार्थ।
2. कारखानों से निकलने वाला गंदा पानी	(ए) विषैले रसायन (धात्विक और अधात्विक) और (बी) रोग पैदा करने वाले जीवाणु।

3. वायुमण्डल — (ए) अम्ल (बी) क्षार (सी) कार्बनडाइ-आक्साइड और (डी) सल्फर डाइआक्साइड।

4. कृषि सम्बन्धी प्रदूषक — (ए) उर्वरक (बी) कीटनाशक रसायन और (सी) पत्तियों का सड़ना।

5. भौतिक प्रदूषक — (ए) गर्मी और (बी) आणविक विकिरण।

6. शवों का उचित ढग से निस्तारण नही करना।

भारत में 80 प्रतिशत लोग गावों मे बसे है, और उनमें से ज्यादातर अनपढ हैं। ये लोग स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी से अनभिज्ञ हैं। ग्रामीण लोग ज्यादातर कृषि और पशुओं पर निर्भर रहते हैं। मनुष्यों और पशुओं के मल-मूत्र का सही ढंग से निस्तारण नहीं होने से और कृषि के काम मे लाये जाने वाले रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक रसायन का फसलों पर सही तरीके से उपयोग नही कर पाने के कारण पानी के प्रदूषण की समस्या बढ़ती जा रही है। बहते हुए पानी में शवों को और कारखानों के पानी को छोड़ना एक आम बात हो गई है, और इसी से नदियों में प्रदूषण की समस्या उठ खड़ी हुई है। गावों मे लोग पीने और दूसरे काम के लिए पोखर या तालाब के पानी पर निर्भर रहते हैं। पशु भी इन्ही पोखरों और तालाबों में अन्दर तक जाकर पानी से प्यास बुझाते हैं, लेकिन साथ-साथ ये इसे अपने मल और मूत्र द्वारा प्रदूषित भी करते हैं। कुछ पशु जैसे सूअर और भैंस भी गर्मी से बचने के लिए इसमें तैरते रहते हैं और पानी को मल और मूत्र द्वारा संदूषित करते हैं।

वर्षा के मौसम मे नालियो का रख-रखाव ठीक ढंग से नही होने के कारण तथा बाढ़ आने पर अक्सर कुओं और तालाबों का पानी दूषित हो जाता है। यह पानी अपने साथ खेतों, फसलो और भूमि के उर्वरक, कीटनाशक रसायन, कार्बनिक पदार्थ, मल-मूत्र, जीवाणु और खरपतवार आदि बहाकर ले जाता है और पानी के स्रोतों में मिलने पर उन्हे भी दूषित करता है। इस प्रकार ऐसा पानी पीकर मनुष्यों और पशुओं को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

दूषित पानी का उपयोग दूध की डेयरी और उससे बनने वाले पदार्थों के लिए ठीक नही होता। दूषित पानी से इनका प्रदूषण होता है और इसका उपयोग करने वालों की सेहत पर प्रतिकूल असर होता है। कुछ जीवाणु जैसे 'क्लोस्ट्रीडियम वेलशाई और एन्थ्रेक्स आदि जब पानी के प्रदूषण से दूध मे मिल जाते है तब यदि दूध को कुछ समय के लिए उबाला जाये तो भी वे समाप्त नही होते है और ऐसे दूध को पीने पर मनुष्य अक्सर इन रोगों से पीड़ित हो जाते हैं।

ऐसा सोचा जाता है कि आने वाले समय में आणविक विकिरण पैदा करने वाले तत्व पानी में मिलकर प्राणियों के लिये काफी भयंकर समस्या पैदा करेंगे।

एटॉमिक रिएक्टर से, अणु बिजलीघर से या आणविक विकिरण तत्व रखने वाले कारखानों से विकिरण की अल्प खुराक पानी के स्रोतों में मिल कर उसे सदूषित कर सकती है। यह किसी दुश्मन देश द्वारा भी किया जा सकता है। आकाश व दूसरी जगह से लगातार एक साल में 0.1 राड (Rad) विकिरण मिलता है। विकिरण की मात्रा एक साल में 5 राड से ज्यादा नहीं बढ़नी चाहिए। राड किसी के द्वारा ग्रहण की गयी विकिरण खुराक की इकाई है। यह एक ग्राम मांस पेशियों या किसी पदार्थ के द्वारा ग्रहण की गयी विकिरण खुराक की मात्रा होती है (एक एम. राड 0.001 राड)। चिकित्सकों के अनुसार विश्लेषण से पता चला है कि जिन स्थानों पर विकिरण का स्तर कम था वहां कैंसर रोग की दर भी कम थी।

जल-प्रदूषण से बचाव और नियंत्रण

1. लोगों को पानी के प्रदूषण के कारण और इससे होने वाली हानियों के बारे में शिक्षित करना चाहिये। लोगों को इस बात की शिक्षा लेनी चाहिए कि अच्छा और साफ पानी स्वास्थ्य के लिये जरूरी है, और इसलिये अपनी बुरी आदतों को त्यागें जिससे पानी के स्रोतों को दूषित होने से बचाया जा सके। लोगों को स्वास्थ्य-सम्बंधी जानकारी दें जिससे वे अपना स्वास्थ्य अच्छा रख सकें और शुद्ध व आरोग्यप्रद पानी की जानकारी द्वारा वे पानी के प्रदूषण को बचाने और उसे नियंत्रण में रखने को सदा ही तैयार रहें।

2. शिक्षा द्वारा हर व्यक्ति को पानी के भौतिक गुणों की जानकारी दी जाये, जिससे वह पानी पीने से पहले उसका स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छे होने की पहचान कर सके। उसे पानी के रंग, गंध, स्वाद, कार्बनिक पदार्थ, मान और गंदलापन आदि के बारे में जानकारी होने से वह पानी का भौतिक परीक्षण तुरन्त कर सकेगा। इस परीक्षण में प्रयोगशाला के सामान की ज्यादा जरूरत नहीं रहती है और इसे किसी भी जगह जहा चाहे तुरन्त किया जा सकता है। इस परीक्षण द्वारा व्यक्ति को प्रदूषण की किस्म के बारे मे तुरन्त पता लग जाता है और वह आसानी से सोच सकता है कि यह पानी पीने या फिर किसी और जरूरत की पूर्ति के लिए काम में लिया जा सकता है अथवा नही।

3. घरों और कारखानों से निकली गंदगी के ठीक से निस्तारण का ज्ञान होना चाहिए।

पानी मे पाई जाने वाली ज्यादातर अशुद्धियों को हटाने के लिए पानी को इकट्ठा करके रखना, उसे साफ करना और स्टरलाइजेसन आदि के तरीके अपनाये जाते हैं। तेल, रंग और लवण से प्रदूषित हुए कारखाने के गंदे पानी का सही ढंग से उपचार करने के पश्चात् ही उसे कारखाने के बाहर छोड़ना चाहिये ताकि इसके द्वारा धरातलीय और भूमिगत पानी दूषित नही हो।

4. कुएं पर चबूतरा और उसके पास की नालियां ठीक ढंग से बनावें। पक्षियों को जाली लगा कर कुएं में जाने से रोकें और यह भी ध्यान रहे कि उस पानी में पेड़ की पत्तिया आदि न गिरने पाए।

5. किसी भी जलस्रोत में से पानी निकालते वक्त साफ बाल्टी और रस्सी आदि का उपयोग करें।

6. जानवरों को पानी के स्रोतों में नही जाने दें, उनके पानी पीने के लिए कुंडी आदि की व्यवस्था करें।

7. नदी और तालाब में कपड़े धोने पर तुरन्त रोक लगाएं।

8. जमीन पर गंदा पानी ले जाने के लिए पक्की नालियां बनवाएँ जिससे पानी का रिसाव रोका जा सके।

9. सीवर-लाइन के पाइप से गंदे पानी का रिसाव नही होना चाहिए अगर ऐसा होता हो तो उसे तुरन्त रोकें।

10. शवों को पानी के स्रोतों में या उसके आस-पास नही डालने देवें।

11. बाढ़ के समय नदी, तालाब और कुओं का पानी उपचार के बाद ही पीने के काम मे लें। इसके लिए पानी को उबालकर, क्लोरीन द्वारा या पोटेशियम परमैंगनेट आदि किसी एक विधि को अपनाकर, पानी साफ करके पीने के काम में लें।

12. जब भी पीने के पानी का घरेलू या कारखाने के दूषित पानी से संदूषण हो जाये तो वह स्थिति कानून की मदद से नियंत्रण में लाई जा सकती है। यह कानून पानी के प्रदूषण को नियंत्रण में लाने के लिए ही बनाया गया है (पानी कानून 1974, पानी के प्रदूषण से बचाव और नियंत्रण के लिए)।

प्रदूषित पानी के भौतिक, रासायनिक, जैविक, सूक्ष्मदर्शी और उसके स्रोतों के आस-पास के भौगोलिक परीक्षण और सही उपचार द्वारा मनुष्यों और जानवरों में पानी के द्वारा फैलने वाली बीमारियों का सही ढंग से बचाव और नियंत्रण किया जा सकता है।

प्राकृतिक पानी में पाई जाने वाली सामान्य अशुद्धियां

प्राकृतिक पानी कभी भी शुद्ध और आरोग्यप्रद अवस्था में नही पाया जाता। आसुत पानी 100 प्रतिशत शुद्ध होता है लेकिन यह पीने के लिये ठीक नही होता और काफी महंगा होता है। एक अच्छे पीने के पानी में नुकसानदेह पदार्थ नहीं होते और यदि इसमे कुछ पदार्थ ऐसे हों तो वे पीने के लिये बताई गयी निश्चित सीमा मे ही होने चाहिये। इसका पता 'पानी के भौतिक, रासायनिक, सूक्ष्मदर्शी और जैविक परीक्षण द्वारा आसानी से किया जा सकता है और पानी को वितरण

से पहले ही उसमें से नुकसान देने वाले पदार्थों को उचित विधियां द्वारा हटा दिया जाता है।

पानी में कार्बनिक या अकार्बनिक पदार्थ, चाहे वे घुली अवस्था में हों या छोटे-छोटे कणों के रूप में दिखाई देते हों, अशुद्धियां कहलाती हैं। यह जरूरी नहीं है कि पाई जाने वाली सभी अशुद्धिया मनुष्यों और जानवरों के लिये हानिकारक ही हो। कणों के रूप में दिखाई देने वाली अशुद्धियां पानी को कुछ समय तक संग्रह करके रखने से बर्तन के पैंदे में बैठ जाती हैं या ऐसी अशुद्धियों को छानने की विधि द्वारा भी पानी से हटाया जा सकता है। सामान्यतया निम्न प्रकार की अशुद्धियां पानी मे पाई जाती हैं—

1. अकार्बनिक अशुद्धियां

(ए) घुली हुई अकार्बनिक अशुद्धियां

(बी) तैरती रहने वाली (Suspended) अकार्बनिक अशुद्धियां

(ए) घुली हुई अकार्बनिक अशुद्धियां

प्राकृतिक पानी जब भूमिगत चट्टानों में से गुजरता है तो अपने साथ इससे खनिज लवण घोल लेता है। इसकी पाई जाने वाली मात्रा चट्टान की किस्म (जिससे पानी गुजरता है) पर निर्भर करती है और ये निम्न है :

(i) कार्बन डाइआक्साइड की उपस्थिति में कार्बोनेट्स आफ लाइम पानी में अस्थाई कठोरता पैदा करते हैं। इसे पानी को उबाल कर हटाया जा सकता है। पानी के उबालने पर कार्बन डाइआक्साइड निकल जाती है और कार्बोनेट्स आफ लाइम बर्तन के पैंदे मे बैठ जाते हैं।

(ii) कैल्शियम तथा मैग्नीशियम के सल्फेट, क्लोराइड और नाइट्रेट्स की उपस्थिति के कारण पानी में स्थाई कठोरता उत्पन्न करते हैं। इसे दूर करने के लिये पानी में चूना और धोने वाला सोडा डाला जाता है। ऐसा पानी भोजन पकाने, बाइलर, दवाई के घोल और भेड़ को रासायनिक घोल से स्नान कराने के लिये उपयुक्त नहीं है। ऐसे पानी का उपयोग करने से साबुन का काफी नुकसान होता है। अधिक कठोर पानी पीने पर दस्त व पेट की बीमारी की शिकायत रहती है।

(iii) पानी में अत्यधिक लवण की मात्रा उसमें नालियो के पानी से संदूषण का होना बताती है। गहरे कुओं और समुद्र के पानी मे भी लवण की अत्यधिक मात्रा होती है।

(iv) जिस पानी में खनिज पदार्थों की मात्रा एम. पी. एल. से ज्यादा हो उसे घरेलू उपयोग में नहीं लाना चाहिये। ये पदार्थ सीसा, आर्सेनिक, साइनाइड, तांबा, मैंगनीज, जस्ता, रांगा, एल्यूमिनियम, पारा, आयोडीन, एन्टीमनी और फ्लोरीन हैं।

(बी) तैरती रहने वाली अकार्बनिक अशुद्धियां

इस प्रकार की अशुद्धियां मिट्टी, चाक और लोहे के आक्साइड इत्यादि मे होती हैं। इनसे शरीर को हानि नही होती परन्तु कुछ तत्व शरीर की पाचन-शक्ति को बिगाड़ते हैं। उन्हें छानने की विधि द्वारा पानी से हटाया जा सकता है।

2. कार्बनिक अशुद्धियां

(ए) घुली हुई कार्बनिक अशुद्धिया

(बी) पानी में तैरती रहने वाली कार्बनिक अशुद्धियां

(ए) घुली हुई कार्बनिक अशुद्धियां

ये अशुद्धियां पानी में शवों, सड़ रही खरपतवार या सीधे गट्टर के पानी द्वारा पीने के पानी मे मिल जाने से हो जाती है। इनमें मुख्यतया क्लोराइड, अमोनिया, नाइट्रेट, नाइट्राइट, ह्यूमिक अम्ल और गट्टर का पानी सम्मिलित है। भूमि में पड़े हुए कार्बनिक पदार्थों का विघटन होता रहता है और जब पानी इस तरह की भूमि से गुजरता है तब यह वहा पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थों द्वारा सदूषित हो जाता है। ये पदार्थ पेड़ों से या पानी में रह रहे जीवों के भी हो सकते हैं। पानी में नाइट्रोजिनस पदार्थ की जरा-सी मात्रा प्राकृतिक विघटन की क्रिया के बाद पाई जा सकती है मगर इसका ज्यादा मात्रा में पाया जाना गट्टर के पानी द्वारा संदूषण होने को बताता है।

(बी) पानी में तैरती रहने वाली कार्बनिक अशुद्धियां

इस तरह की अशुद्धिया काफी हानिकारक होती है और पानी के प्रदूषित होने का द्योतक होती हैं। ये अशुद्धियां जैसे कि बाल, ऊन, स्टार्च, लकड़ी के टुकड़े, पशुओं की मांस पेशियां और पौधों के तन्तु आदि है और इनकी उपस्थिति हमेशा विकार पैदा करने वाले जीवाणुओं के साथ रहती है। ऐसे जीवाणुओं का पानी में रहने के कारण इस प्रकार का प्रदूषण काफी हानिकारक माना गया है।

3. घुली हुई गैसें

पानी मे अक्सर आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड, हाइड्रोजन, अमोनिया, नाइट्रोजन और मीथेन आदि गैसें घुली हुई रहती हैं। हाइड्रोजन सल्फाइड की उपस्थिति के कारण पानी का स्वाद सड़े हुए अण्डे जैसा लगता है। यह गैस विषैली होती है और धातुओं को पानी में घोल सकती है।

4. पानी में स्थिर रहने वाली हल्की अशुद्धियां (Colloidal)

इस तरह की अशुद्धियां पानी को टरबिड बनाती है, और पानी मे धुंधलापन दिखता रहता है, ये पदार्थ जैसे लोहे के आक्साइड, सिल्लीका और रंग आदि है।

5. जीव विद्या सम्बन्धी अशुद्धियां

गहरे कुओं के पानी के अलावा सभी प्राकृतिक स्रोतों के पानी में वनस्पति

और जीव रहते हैं, जैसे जीवाणु, शैवाल, फफूंदी, प्रोटोजोआ, क्रसटेशियन, कीड़े-मकोड़े, मछलियां और जल तथा थल में रहने वाले प्राणी आदि।

(ए) जीवाणु

जीवाणु बहुत हानिकारक होते हैं और सूक्ष्म होने के कारण इन्हें आंखों की सहायता से नहीं देखा जा सकता है, इनकी किस्में निम्न हैं :

(i) भूमि के जीवाणु

भूमि में रहने वाले जीवाणु पानी में पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थों को तोड़ कर कार्बन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन जैसे तत्वों में बदल देते हैं। नाइट्रोजोमोनास जीवाणु अमोनिया तत्वों को नाइट्राइट में परिवर्तित करते हैं। नाइट्रोबेक्टर आक्सीडेसन की क्रिया द्वारा नाइट्राइट को नाइट्रेट में बदलते हैं लेकिन ये जीवाणु इस क्रिया को आर्द्रता, तापक्रम और आक्सीजन के होने पर ही पूर्ण कर सकते हैं। अगर इस तरह का वातावरण न मिले तो ये जीवाणु अमोनिया के तत्वों को नाइट्राइट और नाइट्रेट में बदल ही नहीं सकते हैं। जीवाणुओं द्वारा आक्सीडेसन क्रिया नहीं हो सकने के कारण कार्बनिक पदार्थ ह्यूमिक अम्ल बनाते हैं और इससे भूमि में अम्ल की मात्रा बढ़ती है।

(ii) लोहे की धातु पर रहने वाले जीवाणु

क्रिनोथ्रीक्स, लोह जीवाणु हैं जो पानी में पाये जाने वाले लोहे को हटाते हैं। ये जीवाणु लोहे को फेरिक हाइड्रोआक्साइड के रूप में जमा करते हैं जो एक लसलसे पदार्थ के रूप में दिखाई देता है। पानी में लोहे पर रहने वाला दूसरा जीवाणु गेलिओनेला है, जो पानी से लोहा हटाता है और इससे पानी के वितरण के लिये लगाये गये नलो मे जग लगना, नल में जग के गोल उभार आना और जंग की परतें बनना आम बात हो जाती है। बाद में नलों का भीतरी भाग छोटा हो जाता है अथवा पूर्णतया बंद हो सकता है। इनके कारण नल कमजोर हो जाते हैं और पानी का दबाव बढ़ने से वे क्षतिग्रस्त हो सकते हैं। इन कारणो से जलदाय विभाग को और पानी के आम उपभोक्ता को काफी नुकसान उठाना पड़ता है। इन जीवाणुओं की पानी में वृद्धि रोकने के लिये पानी को क्लोरीन से उपचारित किया जाता है।

(बी) शैवाल

पानी में ज्यादातर तीन किस्म की शैवाल पाई जाती है, वे हैं ग्रीन, ब्ल्यू ग्रीन और डायएटम्स। ये अक्सर नाले, पोखर और तालाब के पानी मे पाई जाती हैं। ये सूर्य की रोशनी मे वृद्धि करती हैं तथा आकार में छोटी-बड़ी भी होती हैं जो सिर्फ सूक्ष्मदर्शी की सहायता से ही दिखाई देती हैं। इनसे पानी साफ होने मे बहुत मदद मिलती है, किन्तु जब इनकी बढ़ोतरी बहुत ज्यादा हो जाती है तब फिल्टर प्लान्ट ठीक से काम नही दे पाते। ये पानी मे रह कर उसमें दुर्गन्ध पैदा करते हैं और पानी

का स्वाद भी बदल जाता है। इनकी बढ़ोतरी रोकने के लिये पानी में 2 से 10 पौंड प्रति दस लाख गैलन के हिसाब से कापर सल्फेट मिलाते हैं। पानी का स्वाद ठीक करने के वास्ते उसमें 0.5 पी. पी. एम. के हिसाब से पोटेशियम परमैंगनेट डालते हैं या फिर एक्टीवेटेड चारकोल, 1 से 5 पी. पी. एम. के हिसाब से मिलाते हैं।

(सी) फफूंदी

गटर के पानी में रहने वाली फफूंद सेप्रोफाइटिक होती है। यह भूरे या मैले पीले रंग की होती है। यह बहते पानी के तल और किनारों पर जैली जैसी दिखाई देती है। इसका पानी में दिखना, गटर के पानी द्वारा संदूषित होने की सूचना देता है।

(डी) पानी में रहने वाले जीव

प्रोटोजोआ, मोलस्का और स्पोंज पानी में रहने वाले प्राणी हैं और ये ज्यादातर फिल्टर हाऊस के प्लान्ट में देखे जाते हैं। ये पानी में किसी तरह की खराबी पैदा नही करते। पानी में रहने वाली मछलियां इन पर और पानी की वनस्पति पर जीवित रहती हैं इसलिए इनकी संख्या पानी में सीमित ही रहती है।

धातुओं पर पानी की क्रिया

शुद्ध पानी द्वारा धातुओं को घोलने की बहुत कम या बिल्कुल ही क्रिया नही होती, परन्तु प्राकृतिक पानी में कुछ पदार्थ ऐसे घुले हुए होते हैं, जिनसे यह क्रिया होती रहती है। पानी में ये पदार्थ निम्न प्रकार के होते हैं :—

1. जो पदार्थ अम्लीय प्रकृति के हों, जैसे कार्बन डाइआक्साइड, ह्यूमिक अम्ल, सल्फर डाइआक्साइड से सल्फूरिक अम्ल और नाइट्रोजन आक्साइड से नाइट्रिक एसिड जो कि तेल-शोधक और कोयला काम में लेने वाले कारखान से निकलते हैं। अम्लीय पानी की वर्षा भारत के लिये एक समस्या पैदा कर रही है। यह समस्या अब सिर्फ धनी देशों की ही नही है। भारत में इस पर शोध करने पर कुछ नगरों में (दिल्ली 6. 21, मद्रास 5.85, हैदराबाद 5. 73, बेलापुर 5.20, बम्बई में ट्राम्बे 4.85) वर्षा का पानी अम्लीय अवस्था मे पाया गया, जबकि साधारणतया वर्षा के पानी का पी. एच. 7 होना चाहिए।

अम्लीय पानी सभी धातुओं को घोल लेता है किंतु विशेषतः इसका असर सीसा, लोहा और जस्ते जैसी धातुओं पर होता है और तांबा एवं ब्रोंज धातुओं पर अपेक्षाकृत कम रहता है।

2. जो पदार्थ क्षारीय प्रकृति के हों, जैसे सोडियम कार्बोनेट और वस्त्र उद्योग से निकलने वाला पानी। जब वस्त्र उद्योग का पानी बिना उपचार के बहा दिया जाता है, तो यह धरातलीय और भूमिगत दोनों ही प्रकार के पानी के स्रोतों का प्रदूषण करता है। प्रायः भूमिगत पानी बिना उपचारित किये ही वितरित किया जाता है,

किंतु अपनी क्षारीय प्रकृति के कारण इस के प्रवाह में काम आने वाले नल क्षतिग्रस्त हो जाते हैं और इसका मनुष्यों, पशुओं, खेत की भूमि और फसल आदि पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

3 घुले हुए लवण, विशेषतः सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम के नाइट्रेट और क्लोराइड पानी में पाये जा सकते हैं। यह पानी भी क्षारीय प्रकृति का होने के कारण नलों को क्षति पहुंचाता है और इसे पीने पर मनुष्यों और पशुओं के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

सीसा

शरीर के लिये सीसा एक संचयी विष होता है। जो पानी सीसा धातु के साथ रहने पर उसे घोल सके उसे प्लंबोसोल्वेन्ट (Plumbosolvent) पानी कहा जाता है। यदि प्लम्बोसोल्वेन्ट पानी लगातार पीया जाये, तो उससे पानी पीने वाला सीसा-विषाक्तता से पीड़ित हो जाता है और उसे प्लमबिज्म कहते हैं। सीसा के विषैलेपन का प्रभाव मनुष्यों और समस्त पशु-जाति पर होता है, परन्तु ऐसा देखा गया है कि इसका प्रभाव गाय और भेड़ में ज्यादा होता है। सीसा-विषाक्तता के और भी कई कारण हैं जैसे पानी का संदूषण जब रेड आक्साइड आफ लेड, लेड एसीटेट, सफेद लेड, लेड आरसीनेट, लेड से बने रंग, कीटनाशक रसायन जिनमें लेड हो, मोटर गाड़ी की बैटरी, लेड के कारतूस, रंग के खाली डिब्बे, काम में लिया हुआ मोबिल आइल और ग्रीस आदि से होता है। सीसा संचयी धातु होता है, इसलिये सीसे की थोड़ी-थोड़ी मात्रा वाले पानी को यदि लगातार पीया जाये तो कुछ समय पश्चात् शरीर में इसके विषैले प्रभाव के लक्षण दिखाई देने लगेंगे। घरेलू उपयोग के लिये इसका एम. पी एल. 0.01 है। जिस पानी का पी. एच. 6.8 से 4.5 होता है वह नलों के साथ क्रिया करता रहता है और ऐसे पानी में सीसे की कुछ मात्रा घुल जाती है। जब कहीं पर नया नल लगाया जाता है तो ऐसे में कठोर और मृदु दोनों ही तरह का पानी इस पर क्रिया करता है।

जस्ता

अम्लीय, सोडियम, कार्बोनेट का क्षारीय पानी और क्लोराइड व नाइट्रेट की अधिक मात्रा वाले पानी में जस्ता आसानी से घुल जाता है। जलदाय विभाग द्वारा लोहे के नलों में जस्ते की कलई किया हुआ नल बहुत काम में लिया जाता है। यह जस्ता पानी की प्रकृति के कारण नल से कुछ समय बाद हट जाता है और लोहा ही पानी के सम्पर्क में रहने लगता है। इसलिये जस्ते की विषाक्तता का काफी खतरा रहता है। अम्लीय पानी, जो जस्ता को घोल सकता है, चाक से उपचारित करना चाहिये। जस्ते के दूसरे मिश्रण जो पानी को विषैला करते हैं वे ज़िंक एसीटेट और ज़िंक कार्बोनेट आदि हैं।

• लक्षण : जस्ते की विषाक्तता के कारण पशुओं मे पेट दर्द, उल्टी और हल्की हरे रग की दस्त लगना जैसे लक्षण देखने को मिलते हैं। पशु पेट अन्दर की तरफ कर लेते हैं और उनकी कमर उठी हुई रहती है। गायों में हेमेसियेसन और हीमोग्लोबिन मूत्र के साथ आना आदि लक्षण देखे जा सकते हैं। जस्ते की कुछ मात्रा के कारण मनुष्य में दुष्पचन, कब्ज और कभी-कभी अतिसार रोग हो जाता है।

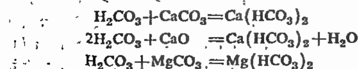
पानी की कठोरता, इसका महत्त्व और मृदु करना

अकार्बनिक पदार्थों को विभिन्न मात्रा पानी मे घुली हुई हो सकती है। पानी कितना कठोर या मृदु है यह इन घुले हुए पदार्थों की मात्रा पर निर्भर करता है। पानी की कठोरता उसके साबुन विनाश करने की शक्ति को कहा जाता है। पानी में कठोरता उसमे पाये जाने वाले कैल्शियम और मैग्नीशियम के बाइकार्बोनेट्स के कारण होती है। अस्थाई कठोरता पानी में बाइकार्बोनेट्स के कारण उत्पन्न होती है और इसे दूर करने के लिये पानी को उबाला जाता है। बाईकार्बोनेट प्राकृतिक पानी में खास तौर से पाये जाते हैं, और ये पानी मे कार्बन डाइआक्साइड की कैल्शियम और मैग्नीशियम कार्बोनेट्स से क्रिया करने से बनते हैं। जब पानी को उबाला जाता है तब कार्बन डाइआक्साइड तो निकल जाती है और पीछे पानी में सिर्फ कैल्शियम और मैग्नीशियम कार्बोनेटस अवशिष्ट अवस्था में रह जाते है। पानी मे स्थायी कठोरता उसमें कैल्शियम और मैग्नीशियम के सल्फेटस और क्लोराइड्स के रहने से होती है और ऐसे पानी को उबालने से कठोरता में कोई अन्तर नही आता है। पानी में लोहा, मैग्नीज और एल्यूमीनियम जैसे पदार्थ भी कुछ हद तक कठोरता बढाते हैं और ऐसा पानी भी जब उबाला जाये तो पानी की कठोरता पर कुछ असर नही होता है। वर्षा का पानी जब वायुमण्डल से गुजरता है तब अपने साथ हवा में रहने वाली कार्बन डाइआक्साइड घोल लेता है और जब यह पानी जमीन पर बहता है तब भी सड़ने वाली पत्तियो से कार्बन डाइआक्साइड लेता है। इस तरह पानी और कार्बन डाइआक्साइड के मिलने से कार्बोनिक अम्ल बनता है।



$$H_2O + CO_2 = H_2CO_3 \quad \text{(कार्बोनिक अम्ल)}$$

यह कार्बोनिक अम्ल युक्त पानी जब चूने (चूने का पत्थर, CaCO3; चूना CaO; जिप्सम $CaSO_4$) या मैग्नीसिया के समीप आता है तो पानी में अस्थायी कठोरता उत्पन्न हो जाती है।



$$H_2CO_3 + CaCO_3 = Ca(HCO_3)_2$$

$$2H_2CO_3 + CaO = Ca(HCO_3)_2 + H_2O$$

$$H_2CO_3 + MgCO_3 = Mg(HCO_3)_2$$

मैट्रिक प्रणाली में कठोरता को मिलि इक्यूवलेन्ट प्रति लीटर (mEq/L) आफ कैल्शियम में व्यक्त किया जाता है। एक लीटर पानी में एक mEq/L कठोरता

लाने वाले आयन करीब 50 मि. ग्राम कैल्शियम कार्बोनेट के बराबर होते हैं। कठोरता के विभिन्न स्तर इस प्रकार हैं—

श्रेणी	कठोरता की डिग्री (mEq/Litre)	
मृदु पानी	1 से कम	(50 मि. ग्राम/लीटर)
थोड़ा कठोर	1 से 3	(50–150 मि. ग्राम/लीटर)
कठोर पानी	3 से 6	(150–300 मि. ग्राम/लीटर)
बहुत कठोर पानी	6 से ज्यादा	(300 से ज्यादा मि. ग्राम/लीटर)

प्रयोगशाला मे परीक्षण द्वारा पानी की कठोर अवस्था का पता लगाया जाता है। थोड़ी कठोरता की स्थिति वाला पानी पीने के लिये बहुत रुचिकर होता है। अगर पानी की कठोरता 3 mEq/ लीटर से ज्यादा हो तो उसे मृदु करने के योग्य माना जाता है।

कठोर और मृदु पानी के महत्त्व :

बहुत कठोर और बहुत मृदु पानी शरीर के लिये नुकसानदेय होता है और वह पानी के वितरण के काम में आने वाले सीसे के नलों से और धातुओं के बर्तन से धातुओं को पानी में घोलता है। मृदु पानी पीने से बच्चों में कैल्शियम की कमी रहती है और बड़े होने पर वे डेन्टल केरीज नामक बीमारी से ग्रसित हो जाते हैं। मृदु पानी का उपयोग बागवानी, कपड़ा उद्योग, रंगाई और कपड़े धोने के काम के लिये ठीक रहता है।

जब कठोर पानी को गर्म किया जाता है तब उसमें से कार्बन डाइआक्साइड निकल जाती है और पानी में अघुलित कैल्शियम और मैगनेशियम के कार्बोनेट रह जाते हैं जो कि पानी के ठंडे होने पर बर्तन के पैंदे पर इकट्ठे हो जाते हैं। ये बर्तनों के और बायलरों के पैंदे में एक परत बना देते हैं। कठोर पानी के कारण ईंधन पर काफी खर्चा बैठता है और ऐसे पानी के उपयोग से बायलर फटने का भी डर रहता है। कठोर पानी के कारण साबुन का खर्च भी बढ़ जाता है। इसके कारण भोजन को पकाने मे ज्यादा खर्चा आता है और भोजन दिखने में और रंग में उतना अच्छा नहीं होता है जितना कि मृदु पानी मे पकाने पर होता है। कारखानों को भी ऐसे पानी के कारण काफी हानि उठानी पड़ती है। इसके कारण नल जल्दी ही खराब हो जाते हैं। जो कपड़े स्थायी कठोरता वाले पानी से धोये जाते है वे जल्दी ही खराब हो जाते हैं। कठोर पानी जीवाणुओं को मारने के लिये तैयार किये रासायनिक घोल के लिये और भेड़ पर से परजीवी हटाने के लिये रसायन घोल के स्नान के लिये भी उपयुक्त नही रहता है। कठोर पानी पीने से गलगण्ड, वृक्क–पथरी, पाचन क्रिया का खराब

होना, जठर-विकार और घोड़ों में सूनी व कठोर चमड़ी जैसे विकार पैदा हो जाते हैं। कृत्रिम अवयवों के द्वारा बनाये गये साबुन पर कठोर पानी का असर नहीं होता।

कठोर पानी का उपचार :

1. अस्थायी कठोरता हटाना

(i) उबालकर

(ii) चूने के द्वारा उपचार (ए) क्लार्क्स विधि (Clark's Process)

(बी) पोर्टर क्लार्क्स विधि (Porter Clark's Process

(सी) ह्युस्टन की ज्यादा चूने वाली विधि (Housten' Excess Lime Process)

2. स्थायी कठोरता हटाना

(i) चूने और सोडे की विधि (Lime & Soda Process)

(ii) जियोलाइट या परम्यूटिट या क्षार विनिमय विधि (Zeolite or Permutit or Base exchange Process)

1. अस्थायी कठोरता हटाना

(i) उबालकर

पानी को उबालकर उसकी अस्थायी कठोरता हटाई जा सकती है। इसमें से कार्बन डाइआक्साइड निकल जाती है और पानी में घुले बाइकार्बोनेट अघुलित कार्बोनेट में परिवर्तित हो जाते हैं। ये कुछ समय बाद बर्तन के पेंदे में इकट्ठे हो जाते हैं। यह विधि काफी खर्चीली होने के कारण पानी की ज्यादा मात्रा को मृदु करने के लिए अनुपयोगी है।



$$Ca(HCO_3)_2 + \text{तापक्रम} = CaCO_3 + H_2O + CO_2$$

(ii) चूने के द्वारा उपचार

(ए) क्लार्क्स विधि

पानी की अस्थाई कठोरता हटाने के लिए, बिना बुझाया चूना या बुझा हुआ चूना लेते हैं। चूना पानी में होने वाली कार्बन डाइआक्साइड सोख लेता है और कैल्शियम कार्बोनेट को अघुलित अवस्था में ले आता है। यह पानी में से मैग्नीशियम भी हटाता है। करीब 700 गैलन पानी से एक डिग्री कठोरता हटाने के लिये एक औंस बिना बुझा हुआ चूने का उपयोग किया जाता है।



$$Ca(OH)_2 + Ca(HCO_3)_2 = 2\,CaCO_3 + 2H_2O$$

चूने को पानी में छोड़कर जोर से हिलाते हुए मिलाया जाता है। फिर इसे दूसरी टंकी में लेकर पानी को 12 घंटे के लिये रहने दिया जाता है। पानी को बिना

हिलाये निथारकर एक दूसरी टंकी में निकाल कर मिट्टी के बने फिल्टर से छाना जाता है।

(बी) पोर्टर क्लार्क्स विधि

यह विधि भी ऊपर लिखी गयी विधि के समान ही है परन्तु फिल्टरेशन के लिए पानी को दबाव वाली फिल्टर द्वारा छाना जाता है, जिसमें कि पानी एक लिनन के कपड़े के द्वारा छाना जाता है।

(सी) ह्यूस्टन की ज्यादा चूने वाली विधि

इस विधि में ऊपर दी गयी चूने की मात्रा से पाँच गुना ज्यादा चूना पानी में डाला जाता है। इसे 12 घंटे तक रखने के बाद इसमें जो ज्यादा चूना रह जाता है, उसे पानी में कार्बन डाइआक्साइड गैस को गुजार कर हटाया जाता है। इस विधि के दो फायदे हैं, एक तो पानी की कठोरता हट जाती है और दूसरा यह कि पानी साथ ही साथ स्टरलाइज भी हो जाता है।

2. स्थायी कठोरता हटाना

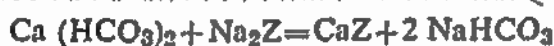
(i) चूने और सोडे की विधि

कठोर पानी में चूना और सोडा एक साथ या एक के बाद दूसरा मिलाया जाता है। इससे कैल्शियम कार्बोनेट के अवशेष बनते हैं जो पानी की टंकी के पैंदे में बैठ जाते हैं। यह क्रिया 2 से 4 घंटे तक होने देते हैं। फिर पानी निथारकर एक दूसरी टंकी में लेते है और उसमें सोडियम कार्बोनेट मिलाते हैं। इस प्रकार रासायनिक क्रिया द्वारा पानी में सोडियम या मैग्नीशियम कार्बोनेट और सोडियम या मैग्नीशियम सल्फेट के अवशेष बनते है जो टंकी के पैंदे में बैठ जाते हैं। अब पानी को निथारकर अगली टंकी में लेते हैं और इसमें 10 हजार गैलन पानी के लिये 5 पाउण्ड कार्बन डाइआक्साइड को 20 मिनट तक मिलाकर रखे रहते हैं। इससे कैल्शियम कार्बोनेट क्रिया करके घुलनशील बाइकार्बोनेट बनाता है। इस विधि में कैल्शियम कार्बोनेट की ज्यादा मात्रा को कार्बन डाइआक्साइड की सहायता से हटाया जाता है। अन्यथा यह मिट्टी के फिल्टर पर जमा होकर पानी के छनने मे रुकावट पैदा कर सकता है। कार्बन डाइआक्साइड गैस को उपयोग में लेने से पानी में कठोरता की कुछ मात्रा फिर से बढ़ जाती है, लेकिन इस विधि में यह कठोरता 30 पी. पी. एम. से ज्यादा नहीं बढ पाती है। सोडा विधि द्वारा लौह युक्त पानी से लोहा भी हटता है। जिस पानी मे क्लोरीन की मात्रा अधिक हो तो इस विधि को अपनाकर पानी से क्लोरीन की मात्रा काफी हद तक कम की जा सकती है।

(ii) जियोलाइट या परम्यूटिट या क्षार विनिमय विधि

पानी से स्थायी कठोरता हटाने के लिये बहुत बड़े पैमाने पर पानी का मृदुकरण करने के लिये इस विधि को काम में लिया जाता है। यह विधि पानी में प्राकृतिक

रूप से पाये जाने वाले कुछ खनिज पदार्थों के आयन विनिमय गुणों पर आधारित है। पानी को मृदु करने के काम में लिये जाने वाले सामान्य जियोलाइट को परम्यूटिट कहते हैं। यह कृत्रिम ढंग से बनाया गया सोडियम जियोलाइट ($NaAlSiO_4$) है। यह कोर्स मिट्टी जैसा दिखता है जिसमे छोटे किन्तु सख्त तारे जैसे चमकीले दाने दिखाई देते हैं। यह नमी सोखता है, इसलिये इसे सूखी जगह पर बन्द डिब्बे में रखना चाहिये। यह अविलेय और अविनाशी यौगिक है, जो पानी से, कैल्शियम और मैग्नीशियम आयनों को हटाता है। यह इस तरह सोडियम जियोलाइट बन जाता है। इस विधि द्वारा पानी से स्थायी कठोरता पूर्णतया हट जाती है। इस तरह का पानी धातुओं को घोल सकता है, इसलिये इसमे कुछ मात्रा मे रा (Raw) पानी फिर से मिलाया जाता है। जियोलाइट से सारा सोडियम हटने के पश्चात् और कैल्शियम जियोलाइट बनने पर पानी को मृदु बनाने की क्रिया रुक जाती है। जियोलाइट को फिर से रीजनरेट (Regenerate) करने के लिये इसे ब्राइन (नमक के पानी का गाढा घोल) के साथ मिलाया जाता है, जिसके कारण कैल्शियम या मैग्नीशियम जियोलाइट फिर से सोडियम जियोलाइट में बदल जाता है।


$$Ca(HCO_3)_2 + Na_2Z = CaZ + 2\,NaHCO_3$$

$$CaZ + 2\,NaCl = Na_2Z + CaCl_2$$

ये दोनों क्रियाएँ एक के बाद दूसरी, क्रम से, लम्बी अवधि तक दोहराई जा सकती हैं और इनको 200 बार इस तरह की क्रियाएं दोहराने पर सिर्फ एक प्रतिशत जियोलाइट की ही हानि होती है। पानी से कठोरता हटाने की यह विधि जलदाय विभाग और कारखानों द्वारा बिल्कुल आसानी से उपयोग मे ली जा सकती है।

पानी को साफ करना

पीने के पानी को साफ करने का महत्व भारत में बहुत पुराने जमाने से ही स्वीकारा गया है। पूरे भारत मे पानी को कपडे से या फिर मोटी टाट द्वारा छानकर पीने के काम में लिया जाता है। कुछ गावों मे पानी को मिट्टी द्वारा और कंकड़ की सहायता से भी छाना जाता है। लेकिन इन विधियों द्वारा पानी में होने वाले केवल बड़े कण या कचरों को ही हटाया जा सकता है। पिछले कुछ वर्षों में पानी को साफ करने की बहुत उन्नत विधिया तैयार हुई हैं और इस कारण पानी द्वारा फैलने वाली बीमारिया काफी नियंत्रण में आ गयी हैं।

पानी को इसलिये साफ किया जाता है ताकि यह पीने योग्य हो जाये और पीने पर किसी प्रकार का रोग उत्पन्न न करे (शुद्ध और आरोग्य)। इस तरह का पानी हजारो या लाखों मनुष्यों और पशुओं की जान बचाता है।

निम्नांकित उद्देश्यो के लिये पानी को साफ किया जाता है—

1. पानी से अनुचित रग और गध हटाना।

2 कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों की मात्रा निश्चित की गयी सीमा में लाना।

3. हानिकारक सूक्ष्मजीवाणुओं को पानी से हटाना तथा उन्हें समाप्त करना।

4. पानी से कठोरता हटाना और उसमें वायु प्रवाहित करना।

5 पानी को धातुओं के घोलने की प्रवृत्ति से मुक्त कराना।

पानी को साफ करने के तरीके—

1. छोटे पैमाने पर पानी साफ करना (Small Scale Purification)

(ए) संग्रह (Storage)

(बी) उबालना (Boiling)

(सी) डिसटिलेशन (Distillation)

(डी) सूर्य की किरणें (Sun rays)

(ई) घरेलू फिल्टर (Domestic Filters)

(i) कम दाब वाला फिल्टर (Low Pressure Filter)

(ii) ज्यादा दाब वाला फिल्टर (High Pressure Filter)

(एफ) रसायन (Chemical)

(i) फिटकरी (Alum)

(ii) पोटेशियम परमैंगनेट (Potassium Permanganate)

(iii) ब्लीचिंग पाउडर या क्लोरीन (Bleaching Powder or Chlorine)

(iv) ऐसिड सोडियम सल्फेट (Acid Sodium Sulphate)

(v) कापर सल्फेट (Copper Sulphate)

(vi) आइओडिन (Iodine) और

(vii) चूना (Lime)

2. बड़े पैमाने पर पानी साफ करना (Large Scale Purification)

पानी को बड़े पैमाने पर साफ करने के लिये इन तीन विधियों का उपयोग किया जाता है:—

(ए) संग्रह (Storage)

(बी) पानी को सीधे ही फिल्टर करना या इसके लिये अवक्षेपक पदार्थों की सहायता लेना (Filtration with or without the aid of Coagulation)

(i) मंद गति वाले रेत के फिल्टर (Slow Sand Filter) और

(ii) तीव्र गति वाले रेत के फिल्टर (Rapid Sand Filter)

(सी) रसायन द्वारा स्टरलाइजेसन (Chemical Sterilization)

(i) क्लोरीनेसन (Chlorination)

(ii) सुपरक्लोरीनेसन (Super Chlorination)

(iii) क्लोरामीन (Chlormine) और

(iv) ओजोनीकरण (Ozonisation)

1. छोटे पैमाने पर पानी साफ करना

इसमें एक ही विधि या उससे अधिक विधियों के उपयोग से पानी को साफ किया जा सकता है। यहां दिए गये तरीके को सिर्फ थोड़े समय के लिये उपयोग में लाया जाता है, खासकर जब कि शहर के फिल्टर प्लान्ट थोड़े दिनों के लिये खराब हो जाये या फिर बाढ़ आ जाने के कारण नदी, झरने, कुएं, तालाब या पोखर आदि के पानी का सदूषण हो गया हो। ऐसी हालत में पानी अक्सर टरबिड हो जाता है। ज्यादातर गांवों में फिल्टर प्लान्ट नहीं होते हैं और ऐसी जगहों पर जब पानी द्वारा बीमारियाँ फैल रही हों तब यहां दी गयी कोई विधि द्वारा पानी को साफ करके मनुष्यों और पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है।

(ए) संग्रह

गावों में ज्यादातर घरों में जमीन के नीचे छोटी-छोटी कुडियां बना कर वर्षा, पोखर या तालाब का पानी इकट्ठा किया जाता है। इनमें दूर-दराज से पानी लाकर भी इकट्ठा करते है। ऐसी विधि द्वारा पानी का संग्रह करने पर उसमें से 80 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थ और छोटे कण या कचरे पानी में नीचे पैंदे पर बैठ जाते हैं। संग्रह के दौरान कई प्रकार के सूक्ष्म जीवाणु भी मर जाते हैं। लेकिन जो जीवाणु स्पोर बनाते हैं उन पर पानी के संग्रह करने के दौरान कुछ असर नहीं होता है, और ऐसा पानी काफी खतरनाक होता है, इसलिये इसे किसी दूसरी विधि द्वारा साफ करके ही उपयोग में लाना चाहिये। संग्रह करने के बाद पानी के तल में पड़े हुए कीचड़ जैसे कचरे (Sludge) को बिना हिलाये पानी निकाल कर काम में लेते रहना चाहिये। अगर पानी को तीन सप्ताह तक संग्रह करके रखें तो कोलेरा जैसे खतरनाक जीवाणु भी मर जाते हैं। जबकि टाइफोयड बीमारी के 90 प्रतिशत जीवाणु पानी संग्रह करके रखने पर एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर मर जाते हैं। इस प्रकार अगर पानी को एक माह तक संग्रह करके रखें और इसके बाद काम में लें तो ज्यादातर जीवाणु मर जाते हैं। पानी को बहुत ज्यादा समय तक संग्रह कर के रखते हैं तो उसमें शैवाल की संख्या बहुत बढ़ जाती है और इससे पानी में खराब गंध आती है और यह रंगीन हो जाता है।

रेगिस्तान के जीवन के बारे में सोचने पर लोगों में कई तरह की जो जिज्ञासाएं जागती हैं, उनमें से सबसे प्रमुख यह है कि यहां के रहने वाले बाशिंदे

अपनी प्यास किस तरह बुझाते होंगे। राजस्थान के काफी क्षेत्र ऐसे हैं जहां वर्षा कम होती है और भू-जल काफी गहराई पर मिलता है और ज्यादातर वह भी खारा और फ्लोराईड व अन्य पदार्थों की मात्रा भी इतनी होती है कि इसे पीने पर यह स्वास्थ्य पर बुरा असर करता है। रेगिस्तान में रेत के टीबों की कमी नहीं है, और अगर ऐसे में जल संग्रह के लिये तालाब बनाया जाये तो सारा पानी रेत सोख लेती है। फिर अगर तालाब बनाया भी जाये तो यहां की गर्मी के कारण पानी जल्दी ही वाष्पीभूत हो जाता है।

किन्तु रेगिस्तान के क्षेत्र के कुछ गांवों में लोगों ने वर्षा के पानी संचय की अद्भुत तकनीक निकाली है। राजस्थान में बीकानेर क्षेत्र के कुछेक गांव वर्षा का पानी कुई नाम के कुण्डों में इकट्ठा करते हैं। इस क्षेत्र में जालवाली गांव इसमें प्रमुख है जहां करीब 200 कुइयां हैं और पूरे गांव वाले सदियों से इस तकनीक द्वारा पानी इकट्ठा करके अपनी और पशुओं की प्यास बुझाते हैं। कुई राख और चूनें को मिलाकर धरती के नीचे बनाई जाती है। ये कुइयां कुछ नीची जगह पर इस तरह बनाई जाती हैं कि बारिश का पानी बहकर उन तक आ जाता है। इन कुइयों के चारो ओर पानी ग्रहण करने के लिये नालियां बनी हुई होती हैं। कुइयों की गहराई ज्यादा से ज्यादा 30 से 35 फीट तक रहती है और व्यास 10 से 12 फीट होता है। इसकी छत फोग की लकड़ियों को एक के ऊपर एक रखकर अर्ध अंडाकार रूप की बनाई जाती है। यहां के लोग इसे भिडा कहते है। इसे भी चूनें और राख से लीप दिया जाता है और पानी निकालने के लिये लोग भिड़े पर बने प्लेटफार्म से पानी खींचते है।

अगर भारत के पानी की कमी वाले सभी गांवों में इस तरह की कुइया बनाई जाये तो पानी की समस्या काफी हद तक हल हो सकती है और वर्षा का पानी, जो जमीन सोख लेती है या वाष्प बनकर उड जाता है, इन कुइयो के माध्यम से संग्रह किया जा सकता है। साथ ही ये कुइयां पानी संग्रह करके प्रदूषण से भी बचाएँगी क्योंकि पानी जमा होने पर एक माह में काफी साफ हो जाता है। इस प्रकार का पानी बंद रहने से उसे जानवर गन्दा नही कर पायेंगे और साथ ही हवा मे जो हानिकारक सूक्ष्म जीवाणु होते है उनसे भी पानी को कोई हानि नही होगी जबकि तालाब या खुला रहने वाले पानी का हवा मे भी प्रदूषण होता रहता है।

(बी) उबालना

पानी को उबालने से उसमें होने वाले सूक्ष्म जीवाणु मर जाते हैं, घुली हुई अशुद्धियां हानिरहित हो जाती हैं और पानी मे पाई जाने वाली अस्थायी कठोरता भी समाप्त हो जाती है। पानी से कुछ गैसे जैसे हाइड्रोजन सल्फाइड, अमोनिया व कार्बन डाइआक्साइड भी निकल जाती हैं। यह विधि बहुत ही सुरक्षा प्रदान करती है क्योंकि पानी को उबालने से बीमारी पैदा करने वाले जीवाणु समाप्त हो जाते हैं।

पानी को 20 से 25 मिनट तक उबालते हैं और उसी बर्तन में ढक कर रखे रहने देते हैं। इस तरह पानी का फिर से संदूषण नही होगा।

गर्म करने पर पानी से उसमे घुली हुई हवा बाहर निकल जाती है और ऐसा पानी पीने पर बेस्वाद और रुचिकर नही रहता है, इसलिये ऐसे पानी को पीने से पहले या कुछ देर तक उसे खुला रखें या दो बर्तन लेकर उसे ऊपर तक उठाकर एक बर्तन से दूसरे बर्तन में जाने दें ताकि उसमे फिर से हवा घुल सके। पानी को उबालने पर उसमें होने वाली टरबिडिटि पर कोई असर नही होगा। यह विधि काफी महंगी पड़ती है इसलिये यह विधि पानी को छोटे पैमाने पर साफ करने के काम मे ही ली जाती है।

(सी) डिसटिलेशन

पानी को एक बद बर्तन मे लगातार उबालते हैं और उसमे से निकलने वाली वाष्प को ठंडा करके पानी मे परिवर्तित कर लेते है। एडन और कुवैत मे इस विधि द्वारा समुद्र के पानी से पीने का पानी तैयार किया जाता है। यह पानी पीने के लिये हर दृष्टि से उपयोगी होता है परन्तु यह काफी खर्चीला होता है।

(डी) सूर्य की किरणें

सूर्य की किरणें, जो प्राकृतिक रूप मे मिलती है, बहुत उपयोगी होती हैं क्योंकि इनमें सूक्ष्म जीवाणुओं को मारने की क्षमता होती है। लेकिन यह क्षमता सर्दी के दिनों में घट जाती है। यह क्रिया पानी की ऊपरी सतह तक ही सीमित रहती है। कृत्रिम साधनो द्वारा भी अल्ट्रावायलेट किरणें पैदा की जा सकती है जो कि पानी को साफ करने में सहायक होती है। इसके लिये बाजार में मिलने वाले मरकरी वेपर लेम्प (220 वोल्ट) या क्वार्टज ग्लास के बने बल्ब या ट्यूब काम में लिये जाते हैं। ये किरणें पानी के अन्दर 12 इंच तक पहुंच सकती है। यह विधि काफी अच्छी है क्योंकि इसमें उपचार के बाद पानी में किसी तरह का खराब स्वाद, रंग या गंध पैदा नही होती है और साथ ही इन किरणों से किसी प्रकार के विषाक्त पदार्थ नही निकलते है। इस विधि का उपयोग दफतरो, घरों, स्वीमिंग पूल और होटलों मे निपुणता से किया जा सकता है।

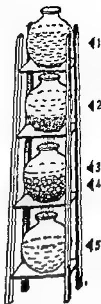
(इ) घरेलू फिल्टर

इस विधि मे पानी को मिट्टी और कंकड़ से बनी कई परतों से छान कर साफ करते हैं। छना हुआ पानी साफ होता है और इसे जीवाणुओ से भी मुक्ति मिल जाती है। विभिन्न किस्म के फिल्टर, जो काम मे लिये जाते है, इस प्रकार है :—

(i) कम दाब वाला फिल्टर

भारत के कई गावों मे काम में लिया जाने वाला यह भारतीय फिल्टर (चित्र 1) चार मिट्टी के घड़ों द्वारा तैयार किया जाता है और ये घड़े एक स्टेण्ड में एक के

ऊपर एक तरकीब से रखे जाते हैं। ऊपर के तीन घड़ों के पैंदों में एक छेद बनाया जाता है जिन्हें रूई या घास की सहायता से बंद करके रखते हैं। सबसे ऊपर के घड़े में साफ किया जाने वाला पानी भरा जाता है। इस घड़े के छेद से पानी रिस कर दूसरे घड़े में गिरता है। दूसरे घड़े में रेत की परत बिछाई जाती है और उस पर पानी रहता है जो रेत से छन कर तीसरे घड़े में आता है। तीसरे घड़े के पैंदे में कंकड़ और उसी के ऊपर लकड़ी के कोयले की परत रहती है। चौथे घड़े में छना हुआ साफ पानी इकट्ठा होता रहता है। इस विधि द्वारा पानी स्टरलाइज नही होता। मगर इसमें कणों के रूप में रहने वाला कचरा दूर हो जाता है। इस विधि को अच्छी तरह कार्य रूप में लाने के लिये समय-समय पर घड़े की परतों को साफ करते रहते हैं।



चित्र 1. भारतीय फिल्टर। (1) साफ किया जाने वाला पानी, (2) पानी और रेत की परत, (3) पानी और कोयले की परत, (4) कंकड़ की परत और (5) छना हुआ साफ पानी।

(ii) ज्यादा दबाव वाले फ़िल्टर

इनमें कुछ किस्म के फिल्टर हैं, जिनमें से पानी दबाव से निकलने पर छन कर साफ हो जाता है। इन फिल्टरो की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिये इनको निश्चित समय पर साफ करते रहना चाहिये। पानी साफ करने के लिये निम्न प्रकार के दबाव वाले फिल्टर काम में लिये जा सकते है।

पासट्यूर चेम्बरलेण्ड दाब फिल्टर (**Pasteur Chamberland Filter**)

इस फिल्टर का बाहरी भाग ब्रास धातु का बना हुआ होता है और इसके अन्दर एक मोमवत्ती के आकार की छिद्र युक्त नली रहती है। यह नली चीनी मिट्टी की बनी होती है और इसमे बने हुए छिद्रों में से पानी साफ होकर पैंदे मे बने छिद्र द्वारा बाहर निकल जाता है। इस विधि द्वारा पानी जीवाणुओं से मुक्त हो जाता है। इस फिल्टर को पानी के वितरण वाले नल से जोड़ दिया जाता है और इसके लिये पानी का दबाव 20 से 40 पाउण्ड प्रति स्क्वेयर इंच होना चाहिये। कुछ घंटे पानी छनने के बाद इसमे लगी हुई नली को बाहर निकालकर रगड कर साफ करें और फिर इसे पानी में उबालें। इस फिल्टर का उपयोग करने से जीवाणु रहित पानी मिलता है जिससे पानी द्वारा फैलने वाली कुछ बीमारियों से बचने में सहायता मिलती है।

वर्कइफील्ड फिल्टर (Berkefeld Filter)

इस फिल्टर में छिद्र जरा बडे होते है इसलिये छनकर निकले हुए साफ पानी मे कुछ प्रकार के जीवाणुओं के होने का सदेह रहता है। इस फिल्टर में दो भाग होते हैं, ऊपर वाले भाग मे पानी इकट्ठा किया जाता है, और इसके बीचो-बीच एक मोमबत्ती के आकार की छिद्र युक्त नली रहती है। यह नली केओलिन या किसिलगहर (Kieselgubr) की बनी होती है। इस ऊपरी भाग से पानी नली के छिद्रों से छन कर नीचे वाले भाग में इकट्ठा होता रहता है।

मैटा फिल्टर (Meta Filter)

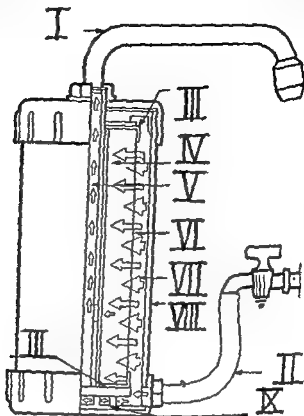
यह काच के पात्र का गोल आकार का फिल्टर है। इसके दोनों सिरो पर धातु के आवरण होते है। इसे चालू करने से पहले काच के पात्र में किसिलगहर का मिश्रण भरते है जिस पर चांदी और एल्यूमिनियम हाइड्रेट की परतें चढ़ी हुई होती हैं।

जब पानी फिल्टर मे प्रवेश करता है तब किसिलगहर का मिश्रण फिल्टर में बने छिद्रों पर समान रूप से परत बनाता है। इस प्रकार बनी हुई फिल्टर की तह में जीवाणु और अन्य कण फस जाते है, मगर इस विधि द्वारा साफ किये गये पानी को ब्लीचिंग पाउडर द्वारा उपचार करने के पश्चात् ही काम मे लेना चाहिये। फिल्टर को कुछ घटे तक काम मे लेने के पश्चात् इसका किसिलगहर बदलना पडता है। इस विधि में जीवाणु सिल्वर आयन की आलिगोडायनेमिक (Oligodyanamic) क्रिया द्वारा मरते है। इसमे काम आने वाले फिल्टर को काटाडाइन बीड टाइप स्टरलाइजर कहते हैं जिसमे ग्लास आर बीड्स पर चांदी चढी रहती है। इसमें पानी भर कर पूरी रात के लिये रख दिया जाता है। सिल्वर आयन जीवाणुओं को समाप्त करते है। इसके द्वारा पानी छानने के लिये मोमबत्ती के आकार की नली भी मिलती है, जिस पर सिल्वर की परत लगी होती है। पानी साफ करने की यह विधि छात्रावास, अस्पतालों और दफ्तरो के लिये काम मे लाई जाती है।

शुद्ध माइक्रो फिल्टर (Shuddha Micro Filter)

शुद्ध माइक्रो फिल्टर (चित्र 2) द्वारा 6 से 10 लीटर पानी प्रति मिनट प्राप्त किया जा सकता है। इसके द्वारा साफ किया पानी शुद्ध व आरोग्यप्रद होता है। इस फिल्टर द्वारा धातु की बनी टंकी से जंग, मिट्टी, कीचड, फफूंद, जीवों की मृत कोशिकाएं बड़ी सफलतापूर्वक हटाये जाते हैं, यहां तक कि इस फिल्टर द्वारा 0.4 माइक्रोन आकार तक के जीवाणु पानी से हटा लिये जाते हैं जिनमें मुख्यतया अमीबा, स्पोर वाले जीवाणु, वेसीलाई, कोकसाई और ई. कोलाई सम्मिलित है। इस फिल्टर से साफ किये पानी से 90 प्रतिशत पानी की बीमारियों से छुटकारा मिल जाता है। इससे साफ किया गया पानी छोटे बच्चों और छोटे पशुओं के लिये बहुत उपयोगी है। इसका उपयोग स्कूलों, कॉलेजों, दफ्तरों, अस्पतालों, गावों और मेलों

में बड़ी सफलता के साथ किया जा सकता है। इसके द्वारा फिल्टर किये गये पानी को उबालने की जरूरत नहीं पड़ती। इस फिल्टर को नल (चित्र 3.I) में पाइप



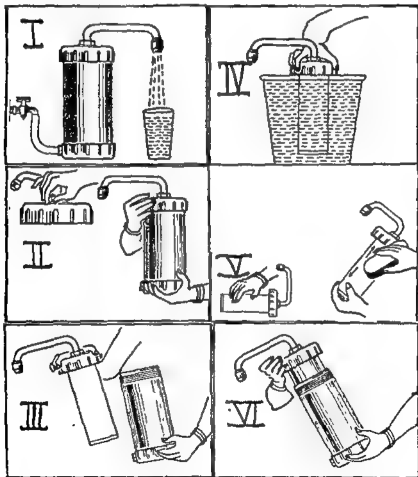
चित्र 2. शुद्ध माइक्रो फिल्टर। (I) पानी के निकास का नल, (II) पानी के प्रवेश के लिए नल, (III) वायु रोधक स्थान, (IV) फिल्टर का खोल, (V) शुद्ध हुए पानी के निकलने का मार्ग, (VI) फिल्टर के खोल से मिट्टी और जीवाणुओं के निकास का मार्ग (VII) साफ किया जाने वाला पानी और (VIII) फिल्टर का बाहरी भाग* ।

लगा कर चालू किया जाता है। इससे पहले-पहल निकला 7 या 8 बाल्टी पानी पीने के काम में नहीं लेना चाहिए। उसके पश्चात् इसका फिल्टर सही काम करने लगता है और साफ पानी प्राप्त होता है। कुछ दिनों के उपयोग के बाद इसके फिल्टर को निकाल कर साफ किया जाता है क्योंकि पानी में आने वाले कचरे और जीवाणुओं से इसमें लगे सेल्यूलोज फिल्टर के छिद्र बन्द हो जाते हैं। इसे खोलने के लिये इसके ऊपर लगे ढक्कन को घुमा कर खोलते हैं (चित्र 3.II) और फिल्टर को उसके बाहरी प्लास्टिक के खोल से अलग (चित्र 3.III) कर लेते हैं। सेल्यूलोज

---

* *Available at : M/s. Emkaypee enterprises, Marketing & Allied Services, Gandhi Chowk, Jodhpur-342001.*

फिल्टर को एक बाल्टी पानी (चित्र 3.IV) में 4 से 6 घंटे के लिये भिगो कर रखने मे उस पर लगी मिट्टी और जीवाणु इत्यादि हटने लगते है और फिर उन्हे पूरी तरह से साफ करने के लिये नाइलोन के कोमल ब्रस द्वारा (चित्र 3.V) उसे ऊपर से नीचे और फिर ऊपर ले जाते हुए पूर्णतया साफ करते हैं। इस तरह साफ करने पर हर बार फिल्टर के खोल का कुछ भाग हटता जाता है। फिल्टर को फिर से जोडकर (चित्र 3.VI) शुरू करें, पहले कुछ देर तक 7 एवं 8 बाल्टी पानी बहते रहने दें फिर इससे निकला पानी बिल्कुल साफ आयेगा। फिल्टर का जो खोल काफी काम आ चुका हो और जो कि 50 मी. मी. ϕ का हो जाये तब नया सेल्यूलोज फिल्टर पेड लगाना चाहिये जो कि 70 मी मी. ϕ आकार का होता है।



चित्र 3. I से VI शुद्ध माइक्रो फिल्टर की कार्य प्रणाली* ।

* Available at : M/s. Emkaypee enterprises. Marketing & Allied Services, Gandhi Chowk, Jodhpur-342001.

(एफ) रसायन

(i) फिटकरी

फिटकरी या एल्यूमिनियम सल्फेट पानी मे रग, पीट अम्ल, जीवाणु, सिल्ट (Silt) और कीचड़ आदि हटाने के लिये इस्तेमाल की जाती है। इसकी क्रिया द्वारा पानी मे स्थिर अवस्था मे रहने वाली अशुद्धियां, अवक्षेपित होकर बर्तन के पेंदे में बैठ जाती हैं। पानी की एक गैलन मात्रा को साफ करने के लिये इसमे 1 से 6 ग्रेन फिटकरी मिलाई जाती है। इस विधि द्वारा साफ किये गये पानी को घरेलू कम दबाव वाले फिल्टर से छान कर उपयोग में लाना ठीक रहता है।

(ii) पोटेशियम परमैंगनेट

यह एक धीमी गति वाला डिसइन्फेक्टेन्ट है। इसके साथ तनु किया हुआ हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाने से इसकी स्टरलाईजेशन क्षमता मे तेजी आती है। यह रसायन पानी मे कौलेरा विब्रोयों को समाप्त करने की क्षमता रखता है। पानी साफ करने के लिये इसका उपयोग घरों, विहार मे की जाने वाली पार्टियो और कुओं के लिये किया जाता है। यह कार्बनिक पदार्थों को आक्सीडाइज क्रिया द्वारा समाप्त करता है और इन पदार्थों में ही जीवाणु रहा करते है। एक कुएं में अगर 1,000 से 1,500 गैलन पानी हो तो उसे साफ करने के लिये आधा औंस पोटेशियम परमैंगनेट की जरूरत पड़ती है (1 गैलन पानी के लिये 60 ग्रेन पोटेशियम परमैंगनेट के साथ 180 ग्रेन बिना तनु किया हाइड्रोक्लोरिक अम्ल)। इसे पानी मे मिलाने पर बैंगनी या गुलाबी रग आता है और अगर यह रग 15 से 20 मिनट मे फीका हो जाये, तो पानी मे कुछ मात्रा रसायन की और मिलानी चाहिये। यह रग 3 से 4 घंटे तक पानी मे स्थिर रहना चाहिये। रसायन मिलाने के बाद उस पानी को बाल्टी या किसी और साधन द्वारा अच्छी तरह से हिलायें। पूरी एक रात के समय तक पानी में क्रिया होने देते हैं। पानी को फिर इसके बाद काम मे लिया जा सकता है या फिर जरूरत नही हो तो उसे पम्प द्वारा कुएं से तब तक निकाला जाता है जब तक कि पानी मे रग दिखना बद न हो जाये। अगर पानी मे जरा भी गुलाबी रग दिखता रहे तब भी ऐसा पानी पीने के लिये हानिकर नहीं होता है। इस रसायन के उपयोग के बाद पानी तो साफ हो जाता है मगर उसके गंध और स्वाद मे बदलाव आ जाता है। कार्बनिक पदार्थों से उत्पन्न लोहा भी इस विधि द्वारा पानी से हटा दिया जाता है।

(iii) ब्लीचिंग पाउडर या क्लोरीन

ब्लीचिंग पाउडर या क्लोरीनेटेड चूना ($CaOCl_2$) एक सफेद रग का बिना किसी खास आकार का चूर्ण होता है और इसमें 33 प्रतिशत क्लोरीन की मात्रा रहती है। इसे किसी अंधेरी जगह मे पात्र मे बद करके रखना चाहिये क्योंकि हवा, रोशनी और आर्द्रता से इसका नुकसान होता है और इसकी

क्लोरीन की मात्रा मे कमी उत्पन्न होती है जिसके कारण यह शक्तिहीन हो जाता है। इसकी मात्रा पानी मे इतनी मिलाई जाती है कि इसमें से एक भाग क्लोरीन, हर दस लाख भाग पानी को मिल पाये। ब्लीचिंग पाउडर का एक औंस भाग 750 एम. एल पानी में घोलकर 2,000 गैलन पानी को साफ किया जाता है। यह पानी 4 घंटे बाद पीने के काम में लेते हैं। धरातल के पानी को शुद्ध करने के लिये क्लोरीन की ज्यादा मात्रा की जरूरत होती है, जैसे कि 1 से 2 पी. पी. एम. और इस क्रिया के समाप्त होने पर पानी में 0.1 से 0.2 पी. पी. एम क्लोरीन बचनी जरूरी होती है। पानी जब वितरित किया जाता है, खुला रह जाता है या संग्रह किया जाता है तब पानी में बची हुई 0.1 से 0.2 पी. पी एम क्लोरीन उसे सदूषण से होने वाले खतरे से बचाती है। पानी को स्टरलाइज करने के लिये ब्लीचिंग पाउडर की गोलिया (सोडियम हाइपोक्लोराइट) भी बाजार मे मिला करती हैं, लेकिन वे पुरानी नही होनी चाहिये।

क्लोरीन की गोलियां

क्लोरीन की गोलियां सफेद रंग की होती है और ये बाजार मे हेलेजोन के नाम से मिलती है। इस विधि द्वारा 0.5 ग्राम की एक गोली द्वारा 20 लीटर पानी को आधा घंटे के समय में ही स्टरलाइज कर लिया जाता है। सोडियम थायोसल्फेट की गोली जो नीले रंग की होती है और उसके द्वारा पानी मे ज्यादा घुली हुई क्लोरीन को हटाया जाता है। उससे पानी का स्वाद भी सुधारा जाता है।

(iv) ऐसिड सोडियम सल्फेट

ऐसिड सोडियम सल्फेट की 15 ग्रेन भार की गोली से एक पिंट पानी को स्टरलाइज किया जाता है। इस विधि में गोली पानी में रखने के बाद उस पानी को आधा घटे के लिये छोड़ दें और फिर उसके बाद ही पानी को उपयोग मे लें।

(v) कापर सल्फेट

इसका उपयोग पोखर या तालाव मे पाई जाने वाली शैवाल को हटाने के लिये किया जाता है। इसकी 2 से 10 पाउण्ड मात्रा से 10 लाख गैलन पानी का उपचार होता है। इसका घोल छिड़काव द्वारा पोखर के पानी की सतह पर छोड़ा जाता है।

(vi) आइओडिन

इसको पानी में 2 पी. पी. एम. के हिसाब से मिलाते है। इसके द्वारा 20 से 30 मिनट में पानी का उपचार हो जाता है। यह पोटेशियम परमैंगनेट की तुलना में काफी ठीक रहता है। पानी में पाये जाने वाले कार्बनिक पदार्थ और उसमें कम या ज्यादा पी. एच. का होने पर भी यह रसायन ठीक काम करता है। थाइराइड ग्रंथी को हानि पहुंचाने और महंगा होने के कारण इसका उपयोग बहुत सीमित है।

(vii) चूना

चूने का उपयोग पानी में जीवाणुओं को मारने, कठोरता हटाने और उसे शुद्ध करने के लिये किया जाता है। यह 10 से 20 पी. पी. एम. के हिसाब से पानी मे मिलाया जाता है और अगर पानी में इसकी मात्रा ज्यादा हो जाय तो पानी में कार्बन डाइआक्साइड गैस प्रवाहित करके उसे हटा लिया जाता है। इससे यह कैल्शियम कार्बोनेट बनाता है, जिसे पानी में से हटाकर सुखाते हैं। इसे गर्म करने पर इसमें से कार्बन डाइआक्साइड निकल जाती है और इस तरह चूना फिर से प्राप्त हो जाता है। यह चूना पानी को साफ करने के लिये दुबारा काम में लाया जा सकता है।

निम्न तरीके से कुएं में पानी की मात्रा का पता लगाया जाता है:—

(i) कुएं मे पानी की उसके सतह से पैंदे तक की ऊँचाई नापें $=(h)$ मीटर

(ii) कुएं का व्यास नापें $=(d)$ मीटर

गणना के लिये बहुत सारी रीडिंग लेकर उसका औसत निकालें।

$$\text{पानी की मात्रा (लीटर)} = \frac{3.14 \times d^2 \times h}{4} \times 1{,}000$$

एक क्यूबिक मीटर $=$ 1,000 लीटर पानी।

बहता हुआ पानी

नदी और नालो का पानी स्वतः ही साफ होता रहता है, इस बहते हुए पानी को स्वत ही साफ होना कहा जाता है। ऐसा खासकर यहा बहते हुए पानी की मात्रा अधिक होने के कारण गटर का पानी संदूषण पैदा नही कर पाता है, साथ ही भारी पदार्थ पानी मे नीचे बैठ जाते हैं, सूर्य की किरणों द्वारा पानी का स्टरलाइजेशन भी होता रहता है, जीवाणुओं और रसायनों द्वारा कार्बनिक पदार्थों का आक्सीडेसन हो जाता है और इनका मछलियो द्वारा उपयोग कर लिया जाता है, अत इन सभी कारणों से बहता हुआ पानी स्वत ही साफ हो जाया करता है। मगर इस तरह का पानी पूर्णतया शुद्ध नही होता और इसलिये इसे साफ करने की विधि द्वारा शुद्ध करके ही पीने के काम में लेना चाहिये।

2. बड़े पैमाने पर पानी साफ करना

(ए) संग्रह

पानी को संग्रह करके रखने पर उसमें स्थिर अवस्था मे रहने वाला कचरा नीचे तल पर इकट्ठा होता जाता है। इसको ढककर रखा जाता है इसलिये दुबारा इसका संदूषण नही हो पाता है। पानी को संग्रह करके रखने के लिये ईंट, पत्थर या सीमेंट और कंकरीट की सहायता से बड़ी टंकी बनाई जाती है। पानी के संग्रह के लिये आयताकार टंकी 10 से 15 फीट गहरी और 25 से 30 फीट चौड़ी बनाई

जाती है। इसमें पानी भरने के लिये नल को टंकी में 7 या 8 फीट की ऊंचाई पर लगाया जाता है। टंकी को अन्दर से कई बराबर भागो में विभाजित किया जाता है। पानी नल द्वारा टकी के पहले भाग में आता है, इस तरह इस भाग के भरने पर पानी दूसरे में फिर तीसरे में बहता हुआ आगे हर भाग से निकलता है। इसमे पानी भरने की गति धीमी रहती है तथा पानी नितरता रहता है, और इसमे भारी कण पैंदे में बैठते रहते हैं। संग्रह के समय टकी के पानी को हिलाना नही चाहिये और साथ ही इस पानी का तापक्रम एक समान रहना चाहिये। बडे आकार वाले कचरे 1 से 2 घटे मे पैंदे मे पहुंचते है, जबकि हल्के कार्बनिक पदार्थ 6 से 8 घन्टे का समय लेते हैं और 70 से 80 प्रतिशत तक तैरते रहने वाले हल्के पदार्थ पानी से हट जाते हैं। इस विधि द्वारा 24 घंटे मे 90 प्रतिशत कचरा टंकी के पैंदे में बैठ जाता है। पानी टकी में तेजी से नही गिरना चाहिये। जीवाणु, कार्बनिक पदार्थों को आक्सीडाइज करके नाइट्रेट्स बनाते हैं, लेकिन इसमें अमोनिया तत्व कम हो जाते हैं। पानी के सग्रह करने की इस टकी के पैंदे से समय-समय पर जमा कीचड़ हटाते रहते हैं।

(बी) पानी को सीधे ही फिल्टर करना या इसके लिये अवक्षेपक पदार्थों की सहायता लेना

पानी का सग्रह, जल संभरण के स्थानों पर या टंकी में करने से यह कुछ हद तक शुद्ध हो जाता है। मगर पानी मे स्थिर अवस्था मे तैरते रहने वाले बहुत हल्के कण संग्रह विधि द्वारा पानी से हटाये नही जा सकते। इसके लिये कुछ रासायनिक अवक्षेपक पदार्थों की सहायता ली जाती है, जैसे फिटकरी, फेरस सल्फेट, सोडियम एल्यूमिनेट और फैरिक सल्फेट। इन सभी मे से फिटकरी का उपयोग अवक्षेपण के लिये किया जाता है। फिटकरी, कैल्शियम और मैग्नीशियम कार्बोनेट के साथ क्रिया करके एल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड बनाती है जो कार्बनिक और अकार्बनिक पदार्थों के तैरते कणों को जोड़ती है और उनका अवक्षेपण करके उनको पानी के पैंदे पर ले आती है। जब पानी को तीव्र गति के रेत के फिल्टर द्वारा साफ करना होता है तब इसे पहले फिटकरी द्वारा साफ किया जाना जरूरी होता है। इस विधि से जीवाणुओं की सख्या मे भी कमी आती है। जीवाणु कार्बनिक पदार्थों के साथ लगे रहते हैं। जब ये पदार्थ फिटकरी की रासायनिक क्रिया द्वारा जुड़ कर पानी में नीचे बैठते है तो अपने साथ जीवाणुओं को भी ले जाते हैं। धरातल के स्रोतों से सभी तरह के मिलने वाले पानी को फिल्टरेसन की विधि द्वारा साफ करना चाहिये। जलागार या नदी का पानी पीने के लिये काम मे लेने से पहले उसे मिट्टी से बने निम्न प्रकार के फिल्टर द्वारा साफ करते है।

(i) मंद गति वाले रेत के फिल्टर

ये फिल्टर सख्त व साफ किस्म की मिट्टी की परतो को भिन्न-भिन्न मोटाई

वाले कंकड़ पर बिछा कर बनाये जाते हैं। सबसे ऊपर वाली मिट्टी की परत 36 से 60 इंच गहराई तक बिछाते हैं। कंकड़ की भिन्न-भिन्न मोटाई की चार परतों पर मिट्टी की ऊपरी परत ठहरी रहती है और ये निम्न हैं :-

एकत्रित पानी		36 से 60 इंच
मिट्टी 0.25 से 0.35 मी. मी.		36 से 60"
कंकड़ $\frac{3}{8}$" × $1\frac{1}{8}$"		=3"
कंकड़ $\frac{1}{4}$" ×	$\frac{3}{8}$"	=3"
कंकड़ $\frac{3}{4}$" ×	$\frac{1}{2}$"	=3"
कंकड़ $1\frac{3}{4}$" ×	1"	=6"
छिद्र युक्त नल		
फर्श		

जब फिल्टर को पहली बार बनाकर चलाया जाता है तब वह सिर्फ पानी को छानने का कार्य ही करता है, जिससे छन कर आ रहे पानी मे जीवाणु और ठोस पदार्थ दोनो ही पाये जाते हैं। लेकिन 12 घण्टे पश्चात् मिट्टी के ऊपरी हिस्से पर जीवाणुओं द्वारा एक परत बना ली जाती है (प्लेन्कटन, डाइआटअम्, जीवाणु और शैवाल) और इसमें जीवों की सहायता से पानी साफ होता है। इन्हें परिपक्व मन्द गति वाला फिल्टर कहते हैं। इस फिल्टर द्वारा एक घन्टे में $2\frac{1}{2}$ गैलन पानी प्रति स्क्वैयर फीट ही साफ हो पाता है।

(ii) तीव्र गतिवाले रेत के फिल्टर

पानी को जलागार से लाने के बाद, उसे अवक्षेपक रसायन से क्रिया कराई जाती है। फिर पानी को नितार कर अलग करके उसे दाब पम्प द्वारा या रेत की सतह पर पानी की मात्रा बढ़ा कर फिल्टर करते हैं।

फिल्टर के लिये मिट्टी और कंकड़ की परतें निम्न प्रकार से होती हैं।

एकत्रित पानी	60" – 72"
मिट्टी के कण 0.45 से 0.55 मी मी.	30" – 36"
कंकड $\frac{1}{8}$" ऊपर की बिछावन	
$1\frac{1}{2}$" पैंदे की बिछावन	12" – 18"
छिद्र युक्त नल और फर्श	

फिटकरी और छोटे कण, जो टंकी में नीचे नही बैठे हो और पानी के साथ फिल्टर प्लान्ट मे आ गये हों, वे फिल्टर के लिये बिछाई गई ऊपर वाली मिट्टी की परत पर रह जाते हैं। इस मिट्टी की परत द्वारा जीवाणु भी रोक लिये जाते हैं और यहां अमोनिया का आक्सीडेसन होता है। छनने के बाद पानी देखने मे, रंग और स्वाद मे उन्नत किस्म का हो जाता है और इसमे किसी भी किस्म की गंध नही रह जाती। इस विधि द्वारा पानी मे 99 प्रतिशत जीवाणु

हट जाते हैं। गट्टर के पानी से संदूषित हुए पीने के पानी मे कोलीफार्म समूह के जीवाणु हमेशा पाये जाते हैं। अगर ऐसे पानी मे फिल्टररेसन के बाद कोलीफार्म जीवाणु नहीं मिले तो इससे फिल्टर की उत्तम कार्यक्षमता का पता लगता है। ऐसा माना जाता है कि अगर पानी में ई. कोलाई जीवाणु नही मिले तो मल में होने वाले दूसरे जीवाणु भी नही मिलेंगे।

मंद और तीव्र गति के फिल्टर मे प्राप्त हुए पानी को क्लोरीन या दूसरी विधियो द्वारा जीवाणु रहित किया जाता है।

(सी) रसायन द्वारा स्टरलाइजेशन

पानी को रसायनो द्वारा स्टरलाइज करना वह विधि है जिसमे पानी में पाये जाने वाले जीवाणुओं को ठोस या गैस से बने रसायनों द्वारा समाप्त किया जाता है। स्पोर बनाने वाले जीवाणु, पोलियो और हिपेटाइटिस वायरस रसायनों की सामान्य मात्रा से बेअसर रहते है, मगर सामान्य से ज्यादा मात्रा प्रयोग मे लाने से ये सूक्ष्म-जीवाणु भी मर जाते हैं।

रसायन की प्रकृति

पानी को स्टरलाइज करने के काम मे लाये गये रसायन पदार्थ मनुष्यों और जानवरो के स्वास्थ्य को किसी तरह का नुकसान नही पहुचाने चाहिये। ये बीमारी के जीवाणुओं को मारने में सक्षम होने चाहिये। इनको काम मे लेने पर पानी बेस्वाद नही हो। ये आसानी से प्राप्त किये जा सकें और ज्यादा महगे न हों।

(i) क्लोरीनेसन

बड़े पैमाने पर पानी साफ करने के लिये क्लोरीन काम में ली जाती है। यह असरदार, सस्ती और भरोसेमंद विधि है। पानी को 15 से 30 मिनट के लिये क्लोरीन के संपर्क मे रखा जाता है। इसके लिये क्लोरीन की इतनी मात्रा ली जाती है कि पानी बेस्वाद नही हो और इसमें कुछ क्लोरीन की मात्रा भी बची रहे, जो पानी के वितरण के समय उपभोक्ता को पानी के संदूषण के खतरे से बचावे। पानी मे अगर फेनोल के कुछ अंश हो और अगर इस पानी को क्लोरीन द्वारा उपचार करें तो, ऐसे पानी मे फेनाल और क्लोरीन रसायनिक क्रिया से क्लोरोफेनोल बनाते है जिससे पानी बेस्वाद हो जाता है और पानी मे आयडोफॉर्म का सा स्वाद और गध उत्पन्न हो जाती है। ऐसे पानी को क्लोरीन उपचार से पहले चारकोल के माध्यम से छानना चाहिये या इस पानी को सुपरक्लोरीनेसन की विधि द्वारा उपचार करके डीक्लोरीनेसन किया जा सकता है।

(ii) सुपरक्लोरीनेसन

इस विधि में साधारण क्लोरीनेसन की विधि में जितना क्लोरीन पानी साफ करने के लिये लेते है, उससे दस गुना क्लोरीन पानी में मिलाते हैं। इस विधि द्वारा

पानी में पाई जाने वाली खराब गंध, रंग और स्वाद भी सुधर जाते हैं और पानी जीवाणुरहित हो जाता है। पानी में कार्बनिक पदार्थ पूर्णतया आक्सीडाइज हो जाते हैं। जहां पानी को संग्रह करने की जगह न हो, वहां यह विधि अपनाई जाती है। इसमें क्लोरीन को सिर्फ 10 मिनट तक पानी के सम्पर्क में रखा जाता है। यह विधि संकट के समय या जहां कम समय में जल्दी पानी वितरण करना हो, काम में ली जाती है। पानी को कुछ ही मिनट में स्टरलाइज करके उसमें से ज्यादा रह जाने वाली क्लोरीन को सल्फर डाइआक्साइड मिलाकर (बड़े पैमाने पर) या फिर सोडियम थायोसल्फेट द्वारा (छोटे पैमाने पर) पानी से हटाया जाता है।

(iii) क्लोरामीन

अमोनिया युक्त पानी में जब क्लोरीन मिलाई जाती है तब क्लोरामीन बनते हैं। पानी में होने वाले कार्बनिक पदार्थों का इस पर कुछ भी असर नहीं होता है। इस विधि द्वारा पानी में क्लोरोफॉर्म नहीं बनते हैं और पानी में क्लोरीन का स्वाद भी पैदा नहीं हो पाता है। इस विधि द्वारा जीवाणुओं को मारने में काफी समय लगता है, इसलिये स्टरलाइजेशन के लिये सम्पर्क का समय बढ़ाना आवश्यक हो जाता है।

(iv) ओजोनीकरण

प्राकृतिक रूप में आक्सीजन का अस्तित्व बढ़ने वाली अवस्था में, आक्सीजन (O), सामान्य आक्सीजन (O_2) और ओजोन के रूप में रहता है। ओजोन बहुत ही अस्थिर होती है इसलिये यह O_2 और O में विभक्त हो जाती है। जब यह बढ़ने वाली (O) स्थिति में आती है, तब कार्बनिक पदार्थों का आक्सीडेशन हो जाता है और जीवाणु प्रायः मर जाते हैं। सूक्ष्मजीव भी कुछ ही सैकण्ड में समाप्त हो जाते हैं। ओजोन द्वारा स्वीमिंग पूल के पानी का भी स्टरलाइजेशन किया जाता है। इसके उपचार के बाद पानी में किसी भी तरह का खराब स्वाद या रंग पैदा नहीं होता है। इसमें पाये जाने वाले नाइट्रोजन के आक्साइड जीवाणुओं के लिये विषैले होते हैं। इसके उपचार के बाद पानी में ओजोन की कुछ भी मात्रा शेष नहीं बचती है। स्टरलाइजेशन के लिये पानी में ओजोन 0.2 से 1.5 मी. ग्राम. प्रति लीटर के हिसाब से मिलाया जाय।

पालतू पशुओं के अच्छे स्वास्थ्य के लिये पानी की आवश्यकताएं

पशुओं को पानी पिलाने के लिये, मनुष्यों के लिये दिये गये मानक का पानी देते रहना कतई संभव नहीं है। लेकिन बूचड़खाने में जानवरों के शवों को ठंडा करने, उनके भीतरी अंगों को धोकर साफ करने, डेयरी में दूध के बर्तन धोने, दुधारू पशुओं के घर साफ रखने व उनको पीने के लिये दिया जाने वाला पानी भी उसी मानक का होना जरूरी है जैसा कि मनुष्यों के पीने के पानी के लिये दर्शाया गया है। अगर ऐसा नहीं किया जाएगा तो दूषित पानी द्वारा मांस, दूध और उनसे बने पदार्थों का

जीवाणुओं द्वारा संदूषण होने के कारण, इनसे पानी द्वारा फैलने वाले रोगों से मनुष्यों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर होगा। जब पोखर का पानी जानवरों को पिलाएँ तब इसके आसपास के वातावरण का मुआयना जरूर करें, और अगर पानी दूषित होने का कुछ भी कारण हो तो उसे संदूषण से बचाएँ। पोखर कभी भी जानवरों के घरो, गट्टर लाइन के पास या गोबर इकट्ठा करने वाले स्थान के पास नही होने चाहिए। जब पशु पानी पीने पोखर पर जाये तो ध्यान रहे कि वे पानी में अन्दर तक न जाने पावे क्योंकि अक्सर वे पानी में मल और मूत्र त्याग कर उसे दूषित कर देते हैं। इसके लिये समुचित व्यवस्था करनी बहुत जरूरी होती है। पोखर का पानी पशुओं को पिलाने से पहले उसे जमीन से ऊपर टंकी बनाकर कुछ समय तक इकट्ठा करके रखें, और अगर पानी से फैलने वाले संक्रामक रोगों का संदेह हो तो, पानी को फिटकरी द्वारा और बाद मे रसायनो का उपयोग करके पानी को छोटे पैमाने पर दी गयी विधि से साफ करें। तालाब पर जानवरों को पानी पिलाने के लिये अलग से स्थान निश्चित करें, जो कि सामान्यतः मनुष्यो के पीने के उपयोग मे लाये जाने वाले पानी के स्थान से बहुत दूर हो। इस प्रकार पानी में पशुओ द्वारा फैलाये जा रहे प्रदूषण को रोकने और उसे नियन्त्रण में लाने मे सहायता मिलेगी। क्योंकि पशुओं के कई रोग दूषित पानी द्वारा मनुष्यों मे (Zoonotic) भी फैल जाते हैं इसलिये पोखर या तालाब का पानी जानवरों को तब पिलाएँ, जबकि दूसरा कोई भी स्रोत उनके पानी के वास्ते उपलब्ध न हो।

पशुओं के पानी पीने की मात्रा की आवश्यकता निम्न कारणों पर निर्भर करती है :

1. पशु का आकार और किस्म।
2. मौसम।
3. पशु का उपयोग किस काम के लिये किया जा रहा है।
4. भोजन की किस्म।

विभिन्न प्रकार के पशुओं के लिये प्रतिदिन पानी देने की मात्रा :

गाय

12–15 गैलन पीने के वास्ते।
12–15 गैलन धोने के वास्ते।
4 गैलन सफाई के वास्ते।

गायों को सभी जरूरतों के लिये 28 से 34 गैलन पानी प्रतिदिन के हिसाब से जरूर चाहिये।

ऊँट

8 गैलन प्रतिदिन।

यदि ऊँट को काफी दिनों तक पानी नहीं पिलाया गया हो तो वह एक साथ 20 गैलन पानी भी पी सकता है।

घोड़ा

8–12 गैलन पीने के वास्ते।
8 गैलन सफाई के वास्ते।
घोड़ों को सभी जरूरतों के लिये 16 से 20 गैलन पानी प्रतिदिन चाहिये।

भेड़ व बकरी

2 गैलन प्रतिदिन।

कुत्ता

5 से 20 औंस प्रतिदिन।

मुर्गी

$8\frac{1}{2}$ औंस प्रतिदिन।
प्रतिदिन एक गैलन पानी 18 से 20 मुर्गियों के लिये काफी होता है।

हवा

हवा का प्रदूषण

वायुमण्डल मे विषैले पदार्थों और सूक्ष्म जीवाणुओं के अधिक मात्रा में होने से मनुष्यों, पशुओं और पौधों के जीवन को खतरा और सम्पत्तियो का नुकसान आदि के होने को हवा का प्रदूषण कहा जाता है तथा इनकी उत्पत्ति मनुष्यो, पशुओं और प्रकृति के कारण ही होती है। हवा का पहला व्यापक प्रदूषण लोस एनजलिस (1948) और लन्दन (1952) में हुआ था। वायु प्रदूषण की ऐसी ही एक दुर्घटना भारत में 2-3 दिसम्बर, 1984 को भोपाल में हुई, जब कीटनाशक दवाइया बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कम्पनी यूनियन कार्बाइड के सयंत्र से गैस का रिसाव हुआ और असंख्य लोग और पशु इस हादसे में मारे गये। गैस रिसाव से प्रभावित लोगो को चर्म रोग, क्षय रोग, सांस और आंखो के रोग आदि हुए हैं। भारत जैसे विशाल प्रगतिशील देश में छोटे-मोटे वायु प्रदूषण के असख्य हादसे होते रहते हैं और इसके कारण मनुष्य समाज, पशुओं और फसलों व वनस्पतियो को काफी हानि उठानी पड़ रही है। बडौदा के एक कारखाने से अक्टूबर 1981 में क्लोरीन गैस रिसी, इससे अनेक गायें मरी और लोग बेहोश हो गये। इसी शहर मे 1984 मे एक अमोनिया से भरा टैंकर दुर्घटनाग्रस्त हो गया, जिसमे 60 मवेशी मरे और अनेक लोग बीमार होकर अस्पताल मे भर्ती कराये गये। भोपाल हादसे से भयभीत होकर गुजरात सरकार ने राज्य के 10 कीटनाशक कारखानों और जहरीले रसायनो का इस्तेमाल करने वाले अन्य 15 कारखानो में उत्पादन एक माह तक बन्द रखने का आदेश दिया था। इनकी सुरक्षा की दृष्टि से जांच की गयी। इस तरह भारत के हर राज्य में अनेक कारखाने हैं जिनकी जनहित-सुरक्षा की दृष्टि से समय-समय पर जांच होती रहनी चाहिये, क्योकि आज हमारे सारे विकास कार्य प्रदूषण से सीधे जुड़े हुए हैं।

जीवन के लिए शुद्ध हवा बहुत ही जरूरी है। जब से प्राणी जन्म लेता है वह अन्तिम क्षण तक बिना रुके हवा का.लगातार सेवन करता रहता है और यह भोजन और पानी से भी ज्यादा जरूरी है।

हवा के लिये राज्य या देश की सीमा निश्चित नही की जा सकती है, यह तो लगातार बहती ही रहती है। अगर किसी स्थान से शुद्ध हवा की मात्रा कम गुजरे तो

उस स्थान का वायुमण्डल दूषित होता रहता है और कभी-कभी यहां से दूषित पदार्थ हवा द्वारा किसी साफ स्थान पर भी ले जाये जा सकते हैं और वहां इनसे बीमारियां भी फैल सकती हैं। वैज्ञानिक प्रगति के कारण रेडियोधर्मिता का कुप्रभाव काफी नुकसानदेय साबित होता जा रहा है। दुर्घटनाओं के कारण, ये रेडियोधर्मी तत्व वायुमण्डल में पहुंचकर एक देश से दूसरे देश तक पहुंच जाते हैं और इससे मनुष्यों, पशुओं और पौधों को बहुत नुकसान होता है। ऐसी दुर्घटनाओं का वातावरण में कई वर्षों तक असर रहता है। इसके कारण किसी स्थान के मौसम में बदलाव आना और वहां रहने वाले प्राणियों में कैंसर जैसी बीमारी का होना एक सामान्य बात है।

वायुमण्डल में घरों और कारखानों से लगातार कुछ न कुछ पदार्थ छोड़े जाते रहते हैं जिनमें धुआं, गैस, कोहरा, पराग के कण, औद्योगिक धातुओं, खनिजों और रसायनिक पदार्थों की धूल, रेडियोधर्मिता और सूक्ष्म जीवाणु प्रमुख हैं। मनुष्यों, पशुओं और पौधों का इन सभी पदार्थों की ज्यादा मात्रा के सम्पर्क में आने से या फिर लम्बे समय तक इनके सम्पर्क में रहने से उनकी सामान्य शारीरिक क्रिया में विकार उत्पन्न हो जाते है। प्रदूषण के इन कारणों से मनुष्य एवं पशु एलर्जी रोग और सास के रोगों से पीड़ित हो जाते हैं और उनके गुर्दे, दिल, मस्तिष्क और यकृत आदि को काफी हद तक हानि पहुंचती है। प्रदूषण के कारण आंखें जलना, सिरदर्द होना, स्वभाव में चिडचिडापन पैदा होना आम शिकायत रहती है और कभी-कभी तो इन प्रदूषणों से आदमी पागल भी हो जाता है। इनसे वनस्पतियों को भी काफी नुकसान होता है और जब इस खराब हुई वनस्पति को मनुष्य या जानवर खाने के उपयोग मे लाते हैं तो उनकी सेहत पर बहुत हानिकारक प्रभाव होता है। पौधे वायु प्रदूषण के बहुत ही सचेतक होते हैं और इनके द्वारा वायु प्रदूषण की सही स्थिति का पता लगाया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण उन्नत विधियों की सहायता से बीमारियों को नियन्त्रित करने में काफी हद तक सहायता मिली है, मगर अभी भी ऊपरी सास नली में होते रहने वाले हवा के बैक्टीरिया, वाइरस और फफूंद से पैदा होने वाले रोगों को काबू मे लाना बड़ा ही कठिन है। मनुष्य, पशु और पौधे पर्यावरण में उत्पन्न हुए प्रदूषण का कुछ हद तक मुकाबला कर सकते हैं, लेकिन कारखानों की तादाद और शहरों की आबादी मे बढोतरी के कारण इनकी बचाव-क्षमता काफी कमजोर पडती जा रही है। मनुष्यों और पशुओं के स्वास्थ्य पर बुरा असर करने वाले छोटे कणों, मिट्टी, वायुमण्डल मे आने वाले विभिन्न प्रदूषकों की उत्पत्ति के बारे में शोध करना बहुत ही जरूरी है।

हवा के गुण

शुद्ध हवा रंगहीन, गंधहीन और स्वादहीन होती है। हवा आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड, नाइट्रोजन, आर्गन, हीलियम, क्रिप्टोन और निओन इत्यादि बहुत सारी गैसों के मिश्रण से बनती है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए ताजी हवा का उपलब्ध

होना बहुत ही जरूरी है। यह आग को जलाने में बहुत सहायक होती है । पश्चिमी देशों की तरह हमारे देश मे हवा के वितरण की कोई समस्या नही है।

हवा में प्रदूषण के कारण :

(1) हवा का मिश्रण एक समान नही होता है, वायु मण्डल में वातावरण के अनुसार इसके मिश्रण में बदलाव आता रहता है। गांवों मे हवा काफी शुद्ध रूप मे पाई जाती है, जबकि घनी आबादी और कारखानो वाले क्षेत्र मे इसके मिश्रण में फर्क आता रहता है। घनी आबादी वाले क्षेत्र मे सल्फर डाइआक्साइड, हाइड्रोजन क्लोराइड और हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी गैसें ज्यादा मात्रा मे मिला करती है। मनुष्यो और पशुओ के सास लेने की क्रिया द्वारा वायुमण्डल मे कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा में बढोतरी होती है। इसके बढने से कोई बीमारी तो पैदा नही होती मगर इससे शरीर की बीमारियां रोकने वाली शक्ति मे अवरोध पैदा होता है । इसके कारण वातावरण मे मीथेन, नमी और तापक्रम मे बढोतरी होती है।

(2) हवा में अशुद्धियां कई कारणो से होती है जैसे–कोयले, लकड़ी और ज्वलनशील पदार्थों का जलाना, रोशनी और भट्टी के लिए कारखानों और अनेक उपयोगो के काम में ली जाने वाली जलाने की गैसें और जानवरो के शवो के और वनस्पतियों के सड़ने से उत्पन्न हुई गैसें इत्यादि।

(3) बेढंगे और खराब वेन्टीलेशन वाले पशुघरो में यूरिया के सड़ने से स्वतंत्र अमोनिया बनती है और यह पशुघरो को और आसपास के वातावरण को दूपित करती है।

(4) पशुघरों में कार्बनिक और बहुत प्रकार के छोटे-छोटे पदार्थों के कण पाये जाते है। हवा में तैरते रहने वाली अशुद्धियां कई प्रकार की होती है जिनमें मुख्यतः सूखी हुई चमड़ी के कण, सूखे गोबर, मिट्टी और खाद्य पदार्थों और पराग के कण और पशुओं के फर्श पर उपयोग में आने वाली बिछावन के कण आदि सम्मिलित है।

(5) सामान्य तौर से घरों मे पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु और फफूंद भी पशुओं और मनुष्यो मे कभी-कभी किसी स्थिति में बीमारी पैदा करके उनके स्वास्थ्य को हानि पहुंचा सकते हैं और इन जीवाणुओं का स्वच्छ दूध के उत्पादन में काफी महत्व रहता है।

(6) खेती बाड़ी के काम से भी हवा में बहुत तरह की अशुद्धिया फैलती हैं, जैसे फसलो पर कई किस्मों के रसायन के घोल का छिड़काव और विषैले कीटनाशक पदार्थों का छिड़काव आदि।

(7) अणु शक्ति उत्पादन से सम्बन्धित कार्यक्रम के कारण भी वायुमण्डल प्रदूपित होता है।

वायु प्रदूषण का मनुष्यों, पशुओं और पौधों पर असर :

(1) वायु प्रदूषण के कारण तुरन्त मृत्यु या शरीर में रोग की प्रवृत्ति उत्पन्न हो सकती है। इसके कारण श्वसन और तन्त्रिका मण्डल पर काफी बुरा असर पड़ता है। जो रोगी काफी समय तक बीमार रहते हैं, उनके फेफड़े खराब हो जाते हैं और इनमें कैंसर पैदा होने की भी शिकायत रहती है। वायु प्रदूषण के कारण आँखों और श्वसन नली की श्लेष्मा झिल्ली और चमड़ी को भी काफी नुकसान पहुंचता है।

(2) वायु प्रदूषण द्वारा फ्लोरीन, सीसे और आर्सेनिक की विषाक्तता का मनुष्यों और पशुओं की सेहत पर बड़ा ही घातक असर होता है।

(3) पौधों पर वायु प्रदूषण का तुरन्त ही असर पड़ता है। सल्फर डाइआक्साइड, फ्लोरीन और स्मोग से पौधों को काफी नुकसान होता है। वायु प्रदूषण के कारण पत्तियों में धब्बे दिखाई देना और उनका जल जाना, फसल का ज्यादा नहीं बढ़ना या फसल का जल जाना आदि अक्सर देखे जा सकते हैं।

(4) वायु प्रदूषण से धातुओं में जंग लगने या उनके गलने आदि से आर्थिक नुकसान होता है।

वायु प्रदूषण की विषाक्तता का असर पशुओं में मनुष्यों के मुकाबले जरा भिन्न तरीकों से होता है। मनुष्य संदूषित वायुमण्डल के सम्पर्क में सीधे तौर से आता है, मगर पशुओं पर इसके अलावा संदूषित हुए घास खाने से और पानी, जो ऐसी घास पर गिरकर इन्हें धोता हुआ पोखर के रूप में इकट्ठा हो जाये, पीने से विषाक्तता का दोहरा असर पड़ता है। यह विदित ही है कि पौधों पर वायु प्रदूषण का काफी असर होता है, जिसके फलस्वरूप पौधो की पत्तियो पर कुछ संदूषित पदार्थ जमा होते है और ये प्रतिक्रिया करके पत्तियो में विषैलापन लाते है और ऐसी पत्तियो को खाने पर पशुओं में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

1. सीसा :

सीसा एक संचयी विष है। संदूषित हुई घास की थोड़ी-थोड़ी मात्रा भी पशुओ के द्वारा लगातार ग्रहण करने से सीसे की विषाक्तता हो जाती है। इसकी अत्यधिक मात्रा ग्रहण करने से पशुओं में सीसे की तीव्र विषाक्तता उत्पन्न होती है और वे 24 घण्टे के अन्दर ही मर जाते है। अगर पशुओ के आहार में कैल्शियम की कमी हो तो ऐसे में उन पर सीसे की विषाक्तता का असर ज्यादा होता है। भेड़ मे सीसा उसके गर्भ मे बढ रहे बच्चे तक भी पहुच जाता है और उसके दूध मे भी आता रहता है।

कारखानो से सीसा, धातुओं के गलाने के दौरान, कोयले की भट्टी या कोयले को जलाने पर वायु मे आता है। सीसे के कुछ मिश्रण जैसे सीसा के आक्साइड, सीसा ऐसीटेट और सफेद सीसा आदि सभी विषाक्तता पैदा करते हैं।

लक्षण : सीसा धातु को गलाने वाले कारखानो, सीसा की खानो और उस जगह जहां पर सीसा धातु के रसायन के घोल का छिड़काव किया जाता है आदि स्थानों के पास जब पशु चरने जाते है तब वे सीसे के विषैलेपन के शिकार हो जाते है। सीसे की मात्रा के शरीर मे ज्यादा जाने से इसकी विषाक्तता का असर अल्प समय में ही दिखाई देने लगता है।

सीसा विषाक्तता के कारण तन्त्रिका सबंधी लक्षण जैसे मासपेशी में झटके आना, मुह से झाग निकलना, मूर्छा आना आदि प्रायः दिखाई देते हैं। नाड़ी तीव्र गति से चलती है मगर यह कमजोर होती है और शरीर के छोर वाले हिस्सों का तापक्रम ठण्डा रहता है। पशु लड़खड़ाकर चलते हैं या जमीन पर सोयी हुई अवस्था मे रहते है और खड़े नही हो सकते है। वे चारा नही चर पाते है, पाचन प्रणाली का पक्षाघात हो जाता है और उन्हे दस्तें होने लगती है। दांतो को पीसना, जल्दी-जल्दी जुगाली करना और गले मे ऐंठन होना भी प्रायः देखा जाता है। घोड़ो में लेरिंग की मांसपेशी का पक्षाघात हो जाता है और उन्हे श्वास लेने मे दिक्कत पैदा होती है।

पोस्टमार्टम परिवर्तन

उग्र विषाक्तता : एबोमेसम तथा छोटी आंत मे रक्तास्राव तथा गुर्दों मे अधिक रक्त का होना और रक्तस्राव के लक्षण देखे जा सकते हैं। फेफड़ों में अधिक मात्रा मे रक्त का पाया जाना और यकृत का अपकर्षण इत्यादि लक्षण प्रकट होने लगते हैं। हृदय मे सबऐपीकार्डियल और सबएन्डोकार्डियल क्षेत्र में छोटे-छोटे पिन के सिर के आकार के और इकाइमोटिक रक्तस्राव नजर आते हैं। मेनिनजेज और सेरीब्रल नाड़ियों में अधिक रक्त का संचय और सेरीब्रोइस्पाइनल द्रव का बढ़ना भी प्रायः देखा जा सकता है।

दीर्घकालीन विषाक्तता : यकृत और गुर्दे में अपकर्षण बदलाव तथा यकृत का रंग पीला दिखाई देता है। सीसा विषाक्तता में शव से रक्त, सीरम, मल व मूत्र, मॉस-पेशी और हड्डिया इकट्ठा करके प्रयोगशाला में परीक्षण के लिये भेजना चाहिये।

चिकित्सा :

(1) कैल्शियम डाइसोडियम वर्सेनेट

कैल्शियम डाइसोडियम इथाइलिनडाइएमाइन ट्रेटा ऐसिटेट -- 20 ग्राम
आसुत पानी 1,000 एम. एल.
1 से 2 एम. एल. प्रति पाउन्ड भार के हिसाब से, खून की नाड़ी में (आई. वी.) इन्जेक्सन चार दिनो तक देवें।

(2) सीसे के विष को ऐमेटिक द्वारा पेट को धोकर या नमक के परगेटिव देकर हटाया जा सकता है।

(3) मानसिक उत्तेजना को कम करने के लिये मुख्य तन्त्रिका मण्डल की गति को धीमा करने वाली दवाई का प्रयोग करें।

आर्सेनिक

गो-पशु और घोड़ों की अपेक्षा भेड़ में मुख्यतया आर्सेनिक की विषाक्तता का असर ज्यादा होता है। भेड़ में मुख्यतया आर्सेनिक की विषाक्तता की दुर्घटनाएँ, उनको आर्सेनिक के स्नान के पश्चात् या फिर इनके छिड़काव के पश्चात् होती है। आर्सेनिक का उपयोग पेड़ व पौधों पर पाउडर या घोल के छिड़काव के रूप में भी किया जाता है और इस तरह पशु इन पौधों की पत्तियों आदि को खाकर आर्सेनिक की विषाक्तता से ग्रसित हो जाते हैं। आर्सेनिक कच्ची धातु और कोयले में भी पाया जाता है, इसलिये कारखाने से निकलने वाले धुएं के साथ बाहर आकर हवा के द्वारा काफी मीलों तक फैलता रहता है और वायु, पेड़-पौधों और पानी के स्रोतों का प्रदूषण करता है।

लक्षण : आर्सेनिक की विषाक्तता के कारण पशु सुस्त रहते हैं, कान नीचे की तरफ झुके रहते हैं, कुछ कदम भी चलना नहीं चाहते हैं तथा उनमें पेट दर्द, मुंह में से लार गिरना, उल्टी आने और बेचैनी आदि के लक्षण देखे जा सकते हैं। पशु पाव पटकता रहता है, तथा बार-बार नीचे बैठकर फिर उठता है। नाड़ी धीमी गति से तथा क्रमहीन चलती है। पशुओं को दस्त लगती है तथा उसमें लहसुन की सी गंध होती है। सांस भी क्रमहीन चलता है और उसमें भी लहसुन की गंध होती है। इसकी विषाक्तता के कारण पशु अत्यन्त थका हुआ नजर आता है और वह 24 घंटे में ही मर जाता है।

घोड़ों में काटने वाले दांतों की जड़ के पास लाल रंग की उभरी हुई रेखा दिखाई देती है। उनके मसूढ़ों के बाहरी भाग पर घाव हो जाते हैं। सांस लेने में दिक्कत होती है तथा उसमें लहसुन जैसी गंध आती है। आंखों की पुतलियाँ फैल जाती हैं और आंखों के ऊपर के भाग पर सूजन सी रहती है। इनके पिछले पैरों का आंशिक रूप से पक्षाघात हो जाता है।

दीर्घकालीन विषाक्तता के कारण पशु सुस्त रहते हैं और उनकी भूख बन्द हो जाती है। पशु लम्बे समय तक खरारता रहता है। उनकी चमड़ी मोटी हो जाती है। उसमें खुजली चलती है। उनमें रक्त की कमी, गर्भपात तथा बाझपन हो जाता है। पशुओं में लगातार दस्त की शिकायत रहती है तथा मरने से पहले उनको पक्षाघात हो जाता है।

पोस्टमार्टम परिवर्तन : चमड़ी के भीतरी भाग का रंग सामान्य नहीं दिखता है और वहां की मांस-पेशियों में पीले या खून के रंग का सीरम इकट्ठा हो जाता है। जब आर्सेनिक मुंह द्वारा शरीर में प्रविष्ट करता है तब चमड़ी में किसी प्रकार की

राबी उत्पन्न नही होती है। यकृत का नेक्रोसिस हो जाता है और पेट व आतो ं सूजन दिखलाई देती है। खून की लाल कोशिकाओं का नाश होता है और गुर्दे ताफी खराब हो जाते हैं। पोस्टमार्टम से प्राप्त हुए परिणाम और रासायनिक रीक्षण करके पक्का नतीजा निकाल लिया जाता है।

आर्सेनिक विषाक्तता का पक्का पता लगाने के लिये पशु के मल-मूत्र, रक्त, ीरम, गुर्दे, दिल और यकृत के नमूने लेकर उनका रासायनिक परीक्षण किया जाना ाहिये।

चिकित्सा : (1) गर्म पानी से पेट को साफ (Lavage) करें।

(2) वाल (Bal) का 10 प्रतिशत घोल तैयार करें। 50 पाउण्ड शरीर के भार के अनुपात पर एक एम. एल मात्रा अतः पेशी (I.M.) इन्जेक्शन की सहायता से पहले दो दिनो तक प्रति 4 घटे के अन्तर पर दें और फिर तीसरे दिन चार इंजेक्शन तथा इसके बाद 10 दिनों तक या अधिक समय तक रोजाना दो इन्जेक्शन देवें।

(3) सोडियम थायोसल्फेट के 20 प्रतिशत घोल की 10 एम. एल. मात्रा प्रति एक पाउण्ड शरीर के भार के हिसाब से खून की नाड़ी मे इन्जेक्शन की सहायता से देवें।

(4) फेरिक हाइड्रोक्साइड का ताजा घोल बनाकर देना काफी फायदेमद रहता है। इसके लिये आइरन परक्लोराइड घोल का 3 भाग, 17 भाग पानी और एक भाग कैलशाइन्ड मैग्निशिया के लें। इस दवा की 20 औस मात्रा पशु को पिलावें और 24 घंटे पश्चात् इसे फिर पिलावें।

3. फ्लोरीन

फ्लोरीन अक्सर कच्ची धातुओं, कोयले, क्ले और भूमि में पाया जाता है। कारखानों द्वारा खनिज रूप मे फ्लोरीन काम में लिया जाता है जो कि फ्लूओस्पर और क्रियोलाइट और सोडियम फ्लोराइड है। कोयले और अन्य ज्वलनशील पदार्थों में फ्लोरीन की भी कुछ मात्रा होती है और इनको जलाने से वायुमण्डल में धुएं के साथ फ्लोरीन की काफी मात्रा आती रहती है। घोड़ों और मुर्गियो पर फ्लोरीन की विषाक्तता का असर नही होता जबकि सूअर मे इससे कुछ असर जरूर होता है। गौ-वंश और भेड़ों मे इसकी विषाक्तता का काफी असर होता है और ये फ्लोरोसिस से पीड़ित हो जाते हैं।

लक्षण : फ्लोरीन की तीव्र विषाक्तता के कारण पशुओं में भूख न लगना, लगड़ाकर चलना, कभी-कभी दस्त लगना, शरीर के भार मे कमी होना, मांस-पेशियों में कमजोरी और मृत्यु तक हो सकती है। ऐसी स्थिति में उनके मूत्र में भी फ्लोरीन की मात्रा पाई जाती है। अगर किसी के द्वारा इसका सेवन लगातार किया जाये तो यह सचित विष का रूप धारण कर लेता है। इससे शरीर की कोशिकाओ

के प्रोटीन को बहुत ही नुकसान पहुंचता है। दीर्घकालीन फ्लोरीन विषाक्तता के कारण दांतो पर धब्बे पड़ जाते है। गौ-वश में दांतों के सामने वाली सतह पर धारियां पड़कर खुरदरी हो जाती हैं। फ्लोरीन की विषाक्तता मे दाढ़ के दातो की ऊपरी सतह परस्पर नही मिलती है और यह टेढी-मेढ़ी हो जाती है और कमजोर हो जाने के कारण जल्दी ही टूट कर गिर जाती है। पुराने रोगियो मे पांवो, जबड़ों और पसलियों की हड्डियों में सामान्य से अधिक बढ़ोतरी नजर आती है।

पोस्टमार्टम परिवर्तन : फ्लोरीन विषाक्तता से मरे हुए पशुओ के दात घिसे हुए होते है, उन पर धब्बे और रंगीन धारियां आदि दिखाई देती हैं। पसलिया, पावों और जबड़े की हड्डियों मे सामान्य से अधिक बढ़ोतरी दिखाई देती है। मूत्र का रासायनिक परीक्षण करके फ्लोरीन की विषाक्तता का पता लगाया जा सकता है। कारखानो द्वारा फ्लोरीन विषाक्तता से मरे हुए पशुओं के शवो की हड्डियो का रासायनिक परीक्षण करके उनके मरने के कारणो का पक्का पता लगाया जा सकता है।

चिकित्सा . कैल्शियम की ज्यादा मात्रा देने पर शरीर में फ्लोरीन का इकट्ठा होना कम होता है। फ्लोरोसिस के रोगियों के लिये कैल्शियम कार्बोनेट का उपयोग बहुत लाभदायक है। गायों और भेड़ों को फ्लोरोसिस से बचाने के लिये उनके खाने के साथ 0.5 प्रतिशत अल्युमिनियम सल्फेट या अल्युमिनियम क्लोराइड देना ठीक रहता है।

4. अमोनिया

अमोनिया एक नाइट्रोजन कम्पाउन्ड है जो कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से पैदा होता है। वायुमण्डल मे इसकी उपस्थिति हमेशा ही बनी रहती है। कार्बनिक रासायनिक कारखानों के पास उसकी मात्रा हमेशा ज्यादा रहती है। वायुमण्डल में मिलकर इसकी मात्रा सामान्य होती रहने के कारण इसका स्वास्थ्य पर बुरा असर नही पडता है। जिन पशुगृहो में वेन्टीलेशन ठीक ढंग का नही हो, वहा मल-मूत्र एकत्रित होकर सड़ते है और इस कारण ऐसे भवनो में इसकी मात्रा सामान्य से ज्यादा पाई जाती है। वायुमण्डल मे इसकी मात्रा ज्यादा होने पर यह आखों तथा सांस की नली की श्लेष्मा झिल्ली में जलन पैदा करती है। पशु-भवनों मे पाई जाने वाली अमोनिया की मात्रा को वहा के वेन्टीलेशन का ठीक से रख-रखाव करके नियंत्रण में लाया जा सकता है। जो पशु अमोनिया की ज्यादा मात्रा होने के कारण पीड़ित हो जायें उन्हें तनु किया हुआ सिरका, उपशयक (Demulcent) और उत्तेजना बढ़ाने वाले पदार्थ दिये जाते हैं।

5. सल्फर डाइआक्साइड

सल्फर डाइआक्साइड गैस कोयला जलाने, धातुओं को पिघालने, तेल शोधक कारखाने और अन्य कई रासायनिक पदार्थों को बनाने वाले कारखानों से निकलने

वाले धुएं के साथ बाहर निकलती है। इसके कारण वर्षा और धुंध अम्लीय हो जाते हैं और फिर इनसे भवनों में लगे धातुओं के सामान गलने लगते है तथा उनमें जंग भी लग जाता है। वायु प्रदूषण का पता लगाते समय वहां के वायुमण्डल में सल्फर डाइआक्साइड की मात्रा का पता जरूर लगाया जाता है। वायुमण्डल में इसकी मात्रा अधिक होने के कारण प्राणियों का दम घुटकर मृत्यु तक हो जाती है। सांस तेज हो जाती है और इसमें काफी कठिनाई होती है। दिखाई देती रहने वाली श्लेष्मा झिल्लियों का रंग लाल हो जाता है, मांस-पेशियों में कपकपी होती है और सकोचक पेशी की ताकत क्षीण हो जाती है। एक अनुमान के अनुसार अकेली दिल्ली में ही करीब 10 लाख वाहनों से रोज 2 टन सल्फर डाइआक्साइड वायु में छोड़ी जाती है जो सास के साथ शरीर में प्रवेश करती है।

पोस्टमार्टम के दौरान फेफड़ों में अधिक रक्त का सचय होना दिखाई देता है तथा उनमें सूजन भी होती है। रक्त का रंग गहरा लाल दिखाई देता है।

6. कार्बन मोनोआक्साइड

यह गैस कोयले के पूरा नही जल सकने के कारण बनती है। यह गैस धीमी गति से जलने वाले स्टोव, चिमनी और मोटर-गाड़ियों से निकलने वाले धुएं में रहती है। यह बहुत विषैली होती हैं। कभी-कभी इस गैस के कारण पशुओं की मौत भी हो जाती है। अगर लम्बे समय तक इसकी कम मात्रा सांस के साथ ली जाती रहे तो, इससे शरीर में रक्त की कमी पैदा हो जाती है। श्वास के साथ अगर हवा मे इसकी 0.4 प्रतिशत मात्रा निरन्तर फेफड़ों में जाती रहे तो यह शरीर को बहुत हानि पहुंचाती है।

भारत मे वायु प्रदूषण सबसे अधिक मोटर-गाड़ियों से निकलने वाली गैसो से होता है। बम्बई में यह अनुपात 60 प्रतिशत है और दिल्ली में 40 प्रतिशत है। गाड़ियों के अत्यधिक प्रदूषण से आखें जलती हैं, सिरदर्द भयंकर रूप से होकर स्वभाव भी चिड़चिड़ा हो जाता है। कभी-कभी तो इन प्रदूषणों से मनुष्य पागल हो जाता है।

प्रयोगशाला में काटायामा परीक्षण द्वारा कार्बन मोनोआक्साइड गैस की विषाक्तता का पता लगाया जाता है। तनु किया हुआ एक एम. एल. रक्त लेवें और उसमें 2 एम. एल. पीला अमोनिया सल्फाइड और 30 प्रतिशत ऐसिटिक ऐसिड की 2 एम. एल. मात्रा भी मिलावें। अगर रक्त में कार्बन मोनोआक्साइड घुली हुई होगी तो रक्त लाल रंग का ही रहता है अन्यथा सामान्य रक्त हरे रंग का हो जाता है।

इसके इलाज के लिये कृत्रिम सास और सांस लिये जाने वाली वायु में आक्सीजन के साथ 5 से 10 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड का होना काफी फायदेमंद होता है। एनेलेप्टीक के रूप मे पशुओं को लेप्टोजोल देना ठीक रहता है।

7. हाइड्रोकार्बन

हाइड्रोकार्बन पानी मे पैदा हुई घास से गैस के रूप में निकलकर वायुमण्डल में पहुंचते हैं। ये वायुमण्डल की हवा के साथ रासायनिक क्रियाएं करके हानिकारक पदार्थ बनाते हैं। इनसे आँखों में जलन पैदा होती है। हवा मे इसकी मात्रा मोटर गाड़ियां ठीक करने वाले स्थानो, तेल साफ करने वाले कारखानों और कपड़े छाप करने वाली दुकानों के वायुमण्डल मे ज्यादा होती है। दिल्ली मे रोजाना करीब 10 लाख वाहनो से 170 टन हाइड्रोकार्बन वायुमण्डल में छोड़े जाते हैं और ये श्वास द्वारा फेफड़ो में प्रवेश करके शरीर को हानि पहुंचाते है।

8 आक्सीजन

आक्सीजन रंगहीन, स्वादहीन और गंधहीन होती है। जीवित रहने वाले प्राणियों के लिये यह बहुत ही जरूरी है और इसके बिना मनुष्य, पशु और पौधे मर जाते हैं। यह आग को जलने में मदद करती है। मनुष्यों और पशुओ को आक्सीजन की जरूरत उनके शरीर में ऊर्जा पैदा करने और शरीर का तापक्रम बनाये रखने के लिये रहती है।

9. कार्बन डाइआक्साइड

भारी मात्रा मे कार्बन डाइआक्साइड गैस, मनुष्यों, जानवरो, पौधों, कोयले व तेल और पेट्रोलियम पदार्थों आदि के जलने से वायुमण्डल मे छोड़ी जाती है। हवा में कार्बन डाइआक्साइड की 0.5 प्रतिशत मात्रा हो जाने पर वह मनुष्यो के श्वास क्रिया पर बुरा असर करती है। कारखानों के पास इसकी मात्रा 0.06 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। वायु मे इसकी अत्यधिक मात्रा का होना हानिकारक होता है। कारण सिर दर्द होता है और ठंड लगती है। पौधो की पत्तियो मे हरा पदार्थ वायुमण्डल की हवा से कार्बन डाइआक्साइड लेकर उसे विभक्त करके कार्बन को अपने मे ही रख लेता है और आक्सीजन को हवा में छोड़ देता हैं।

10. पानी की वाष्प

हवा मे पानी के वाष्प की कुछ मात्रा हमेशा ही रहती है। मनुष्यो और पशुओं को शुष्क हवा में रहना काफी अप्रिय लगता है।

11. गन्ध

हवा में कई तरह की गंध होती है जिससे मानव समाज को काफी परेशानी होती है। दुर्गन्ध के कारण वायु प्रदूषण ज्यादातर पशुओं के शवो के सड़ने, मल-मूत्र, गैसों, धुन्ध और कई दुर्गन्ध पैदा करने वाले रासायनिक कारखानों इत्यादि से होता है।

दुर्गन्ध की समस्या को कम करने के लिये गैसों को ज्यादा हवा की मात्रा से तनु कराया जाता है। इसको कम करने के लिये गैस को एक्टीवेटेड कार्बन के फिल्टर

से गुजारा जाता है, गैसों का आक्सीडेशन किया जा सकता है, प्रोसेस गैस वाष्प को क्लोरीन गैस से मिलाना भी ठीक रहता है।

12. **हवा में अकार्बनिक और खनिज पदार्थ :** वायुमण्डल मे मिट्टी के कण, भूमि, कोयले, कैल्शियम के नमक, लवण, स्टील, रबड़, चूने और लोहों के आक्साइड आदि से आते है। खनिज पदार्थों की मिट्टी ज्यादातर मनुष्यों और पशुओ के लिये हानिकर होती है। कार्बनिक मिट्टी के कण जीवनहीन होते हैं मगर इनकी उपस्थिति काफी नुकसानदेह होती है क्योंकि इनके कणों के साथ अक्सर सूक्ष्म जीवाणु चिपके रहते हैं और ये श्वास द्वारा फेफड़ो मे पहुंच कर बीमारी पैदा करते है। पराग के कण, पेशिया, पौधों की कोशिकाएं, सूखी हुई चमड़ी के टुकड़े, शरीर की बाहरी त्वचा के अंश, बाल, ऊन, पंख और सूखा हुआ मल आदि कार्बनिक पदार्थ कहलाते हैं। ये वैसे तो कुछ भी नुकसान नही पहुंचाते मगर कभी-कभी मनुष्यों में और पशुओं मे इनसे एलर्जी और न्यूमोनिया जैसे रोग हो जाते हैं। इन पदार्थों के साथ सूक्ष्म जीवाणु भी रहते हैं, इसलिये डेयरी में इनका होना काफी नुकसानदेह है क्योंकि इनके कारण दूध के रख-रखाव मे काफी दिक्कत उत्पन्न हो जाती है।

खानो और कारखानो में काम करने वाले लोग, वहा पर पाये जाने वाले विभिन्न तरह की मिट्टी के कणों के कारण आखो, गले और फेफड़े के रोगों से पीडित होते रहते हैं।

13. **हवा में जीव सम्बन्धी पदार्थ :** वायुमण्डल में कई तरह के जीवाणुओं के आ जाने से ये मनुष्यो और पशुओं के लिये बीमारी का मुख्य स्रोत बन जाते है। घर के बाहर वायुमण्डल मे जीवाणुओ की संख्या का हवा द्वारा तनुकरण होता रहता है, लेकिन घरों के अन्दर या वे घर जिनमें वेन्टीलेशन ठीक ढंग से कार्य न करता हो, उनमें बीमारी पैदा करने वाले जीवाणु हवा द्वारा आसानी से फैलते है। खासने के द्वारा या नाक साफ करने पर, इनमे पाये जाने वाले खतरनाक रोगो के जीवाणु, वायुमण्डल में आसानी से पहुंच जाते है। हवा में तैरते रहने वाली छोटी-छोटी पानी की हल्की बूदों के साथ सूक्ष्म जीवाणु चिपके रहते है और ये किसी दूसरे की सांस द्वारा उनके फेफड़ों में पहुंच सकते है या फिर उनके शरीर, खाने या पीने के पानी में गिर जाते हैं। इस तरह हवा एक अच्छा माध्यम है जिसके द्वारा सूक्ष्म जीवाणु एक जगह से दूसरी जगह तक ले जाये जा सकते हैं।

वेन्टीलेशन में खराबी उत्पन्न हो जाने के कारण निम्नलिखित रोग हवा के माध्यम से फैलते हैं :—

(ए) केनाइन डिस्टेम्पर (बी) न्यू केसल रोग (सी) इनफ्ल्यूएंजा (डी) आरनीथोसिस (इ) एन्थ्रेक्स (एफ) बेसिलरी व्हाइट डाइरीया (जी) कंटेजियस इक्वाइन प्लूरोन्युमोनिया (एच) कटेजियस बोवाइन प्लूरोन्युमोनिया

(आइ) कंटेजियस केप्राइन प्लूरोन्युमोनिया (जे) ग्लैंडर्स (के) फेफड़ों और हड्डियों का ग्रेनूलोमेटस रोग (एल) मेनिनजाइटिस (एम) न्युमोनिया (एन) दाद (ओ) सोर थ्रोट (पी) स्ट्रेंगल्स और (क्यू) क्षय रोग।

वायु प्रदूषण से बचाव और उसका नियंत्रण

(ए) हवा को साफ करने के लिये प्राकृतिक साधनों का उपयोग :

(1) सूर्य की रोशनी में पाई जाने वाली अल्ट्रावायलेट किरणों द्वारा हवा में रहने वाले ज्यादातर जीवाणुओं की मृत्यु हो जाती है।

(2) वर्षा द्वारा हवा काफी साफ हो जाती है और इसमें से कणों के रूप में तैरती रहने वाली अशुद्धियां, गैसें और सूक्ष्म जीवाणु पानी के साथ होकर धरती पर आ जाते हैं।

(3) कार्बनिक पदार्थ, आक्सीजन द्वारा जला दिये जाते हैं जिससे वे नुकसान नही पहुचा सकते है।

(4) विभिन्न आयतन की गैसें पास आने पर जल्दी ही मिलकर एक समान आयतन मे परिवर्तित हो जाती हैं। वायु के स्वतः ही चलते रहने के गुण के कारण यह अपने साथ रास्ते मे आने वाली अशुद्धियों को ले जाकर उनका तनुकरण करती रहती है।

(5) दिन के समय, पौधे लगातार कार्बन डाइआक्साइड को लेकर, कार्बन को तो अपने में ही रख लेते हैं और आक्सीजन को वायुमण्डल में छोड़ते रहते हैं।

(बी) दूसरे तरीकों द्वारा :

(1) कुछ विधियों को उपयोग में लाकर हवा में लगातार आते रहने वाले विषैले पदार्थों से बचा जा सकता है, जैसे कि उस स्थान को अच्छी तरह बन्द करके, वेन्टीलेशन को और वायु को शुद्ध करना आदि।

(2) कारखानों और मनुष्यों व पशुओं के रहने वाले स्थान के बीच में पौधे लगावें जिससे वे हवा मे आने वाले प्रदूषकों को शीघ्र ही सोख कर वायुमण्डल से हटा सकें।

(3) कारखानो के 6 किलोमीटर परिधि तक किसी भी पशु को वहां होने वाले चारे को नही चरने दें और न ही इस क्षेत्र में किसी पानी के स्रोत से उन्हें पानी पीने देवें। कारखानो के 6 किलोमीटर क्षेत्र में उगने वाले घास को न तो इकट्ठा करावें और न ही उसको रख कर भविष्य मे जानवरो को खिलाने के उपयोग में लावें।

(4) कारखाने के मालिक को उसके कारखाने मे निकलने वाले वायु प्रदूषकों को रोकने के लिये, वायु और आकाश संबंधित विषयों का ज्ञान रखने वाले वैज्ञानिक,

रसायन शास्त्र जानने वाले और यन्त्रकार जैसे व्यक्तियों की सलाह लेनी चाहिये। वायु प्रदूषण रोकने के लिये तलछट बैठाने वाला बिजली का उपकरण, रगड़ने वाली मीनारें (Scrubbing Towers), चिमनी को काफी ऊंचाई तक ले जाना आदि विधियां अपनाई जा सकती हैं।

(5) पुरानी विधियों को छोड़ कर नई तकनीक अपनाई जा सकती है, जैसे कोयला और लकड़ी की जगह बिजली और गैस का उपयोग।

(6) जलाने वाली भट्टी में और गैस बनाने के लिये कारखानों में हवा की जगह आक्सीजन का उपयोग।

(7) वायु प्रदूषण रोकने के लिये भारत सरकार द्वारा बनाया गया पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम, 1986 को प्रभावी ढंग से लागू किया जाए।

(8) यंत्रों द्वारा वेन्टीलेशन को संचालित करके कृत्रिम अल्ट्रावायलेट किरणों की सहायता से और आयोनर (Ionaire) उपकरण का उपयोग करके किसी भी भवन में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या में कमी की जा सकती है।

(9) ट्राइ-इथाइलीन ग्लूकोल वाष्प (Triethylene glucol vapour) की सहायता से पानी के वाष्प के साथ तैरने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं और मिट्टी के कणों को वहां के वायुमण्डल से हटाया जा सकता है।

(10) वाष्प में परिवर्तित होने वाले द्रव्य और गैसों को बन्द नलों में पंपों द्वारा प्रवाहित करके ले जाना चाहिये। घुल सकने वाले और महंगे रसायन पदार्थों को कारखानों से निकलने के पहले ही रोककर फिर से काम में ले लेना चाहिये अन्यथा वे वायु में बेकार ही छोड़ दिये जायेंगे और उनसे वायु प्रदूषण भी बढ़ेगा। भट्टी से निकलने वाली सल्फर डाइआक्साइड गैस को पानी में से प्रवाहित करवाते हैं और इस तरह इससे हल्का सल्फ्यूरिक अम्ल और लवण प्राप्त करके वायु को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है। किसी कारखाने से निकलने वाली गैस दूसरे कारखाने को भी दी जा सकती है और इस प्रकार गैस का सही उपयोग करके वायु प्रदूषण को रोका जा सकता है।

(11) सीमेंट बनाने के कारखानों में कच्चे माल को तैयार करने के लिये उन्हें चक्कियों द्वारा सूखा ही न पीस कर गीला करके पीसने से वायु प्रदूषण को रोकने में सहायता मिलती है।

(12) कोयले के स्थान पर बिजली द्वारा चलने वाली रेल गाड़ी का उपयोग और मोटर गाड़ियों की जगह शहरों में बिजली की ट्रामों का उपयोग करने से वायुमण्डल में कार्बन मोनोआक्साइड के प्रदूषण को रोकने में सहायता मिलेगी।

नमूना लेने की विधि, लेबल लगाना और प्रयोगशाला में भेजना :

वायु प्रदूषण के कारण पशुओं के मरने पर, पशु चिकित्सक द्वारा शवों से नमूने

एकत्रित किये जाते हैं। नमूने साफ व स्टरलाइज पात्र में इकट्ठे किये जाते हैं। नमूने की मात्रा इतनी हो कि उससे रासायनिक परीक्षण आराम से हो सके और उसे खराब होने से रोकने के लिये कुछ रासायनिक पदार्थ जरूर मिलावें। नमूने को प्रयोगशाला मे निम्न सूचनाओ के साथ भेजना चाहिये :

(1) मालिक का नाम और पता ....

(2) पशु की जाति (Species) ....

(3) वंश (Breed) ....

(4) धातु के टुकड़े पर अंकित नम्बर या पशु पर किसी पहचान का निशान..........

(5) लिंग ....

(6) उम्र ....

(7) पशु बीमार रहा हो तो उसके बारे मे सूचनाएं..................................

(8) नमूने : ....

(ए) मूत्र : मूत्र को एक बड़े मुंह की शीशी में एकत्रित किया जा सकता है। पशु से 250 से 500 एम एल मूत्र 24 घंटों के दौरान इकट्ठा किया जाता है। मूत्र के इकट्ठा करने और परीक्षण होने के बीच तक उसे खराब होने से बचाने के लिए उसमे 2 बूंदें फार्मेलिन की प्रति 50 एम. एल. मूत्र के भाग के हिसाब से मिलाते हैं।

(बी) मल : मल को पोलीथीन के थैले मे या काच की बोतल मे इकट्ठा किया जाता है। नमूने को प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेजने के समय उसमे कुछ बूंदे फार्मेलिन की या एल्कोहल का थाइमोल के साथ बने घोल को मिलावें और उसे ठंडी अवस्था मे (4 से 8° सी.) प्रयोगशाला तक पहुंचावें।

(सी) रक्त और सीरम : परीक्षण के लिये 5 या 8 एम. एल. रक्त को ई डी टी. ए. के कुछ भाग के साथ मिलाकर इकट्ठा करते है। रक्त या सीरम में जीवाणुओ की वृद्धि को रोकने के लिये इसमें 2 से 5 बूंदें 0.5 प्रतिशत फीनोल या 1.1,000 मरथायोलेट घोल को मिलाते हैं। नमूने को इकट्ठा करने और परीक्षण के लिये प्रयोगशाला में पहुंचाने तक उसे ठंडे तापक्रम पर (4 से 8° सी) रखते हैं।

(डी) भोजन की नली के कुछ भाग, हृदय, यकृत, फेफड़ों, गुर्दे और हड्डियां : ये सभी काफी मात्रा में हों जिससे रासायनिक परीक्षण में कोई दिक्कत न होने पावे। किसी अंग को कितना लेवें इसके लिये उस अंग में हुए प्रदूषणों से नुकसान को ध्यान में रखा जाता है। हिस्टोपैथोलोजिकल परीक्षण के लिए मांस पेशी का ½" मोटा भाग काट कर उसे 10 प्रतिशत फार्मेलिन के घोल मे इकट्ठा

नमूना रखने और निकालने में आसानी रहे । फिर इस बोतल को सील करके प्रयोगशाला मे रासायनिक और हिस्टोपेथोलोजिकल परीक्षण के लिए भेजते हैं।

(इ) चारा या सूखा दाना . वायु प्रदूषण के दौरान वहा के संदूषित हुए पौधों और घास के ऊपरी 5 या 6" भाग को अलग-अलग स्थानो से काट कर इकट्ठा कर लेते हैं। फिर इन सभी को मिलाकर उसमें से कुछ भाग इकट्ठा कर लेते हैं। परीक्षण के लिए करीबन 50 या 60 ग्राम घास का नमूना लेकर प्रयोग–शाला में भेजना जरूरी होता है। नमूना इकट्ठा करते समय यह ध्यान रखें कि पौधो से नई पकी हुई पत्तियो और फूलों को ही इकट्ठा करें और वे भी सिर्फ पौधो के ऊपर 6" भाग से ही हो। नमूने इकट्ठा करते समय यह ध्यान में रखना चाहिये कि वहां किस जाति के पशुओं (ऊट, गाय, भेड़ और बकरी) पर प्रदूषण का असर हुआ है और उनके चारा चरने की क्या आदत है।

(एफ) पानी प्रदूषण के दौरान वहां उपस्थित पानी के स्रोतों का भी संदूषण होता है, इसलिए पानी के नमूने को भी इकट्ठा करना जरूरी होता है। इकट्ठा किये हुए पानी को प्रयोगशाला में उसमे पाये जाने वाले विषैले पदार्थों का पता लगाने के लिये भेजा जाता है ताकि प्रदूषण के स्रोत का पता लगाया जा सके।

(9) चिकित्सक के हस्ताक्षर : ....

वेन्टीलेशन

वेन्टीलेशन का अर्थ वह विधा है जिसमे किसी भवन के वायुमण्डल को इस तरह से सम्हाल कर रखा जाता है कि वहा पर रहने वाले प्राणी को किसी तरह की असुविधा का सामना नही करना पडे। यह भवन के वायुमण्डल मे से धीरे-धीरे अशुद्धिया हटाता है या उनका तनुकरण करता है। यह भवन से सास द्वारा, जलाने या किसी और कारणवश उत्पन्न गर्मी को हटाने में सहायक होता है। वेन्टीलेशन के माध्यम से दरवाजों और खिड़कियों से शुद्ध हवा अन्दर आती है और गन्दी हवा रोशनदान की सहायता से बाहर निकल जाती है। यह घरों की हवा को शुद्ध करने का बहुत ही प्रभावशाली तरीका है, इसलिए वेन्टीलेशन को ठीक से बनाये रखने के लिये इस पर पूरा ध्यान देना चाहिए। घर में शुद्ध हवा के आते रहने से वहां रहने वालो का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

घरो में हर जगह वेन्टीलेशन को अच्छी तरह सचालित करने के लिए, शुद्ध व ताजी हवा के अन्दर आने के लिए एक अच्छी खिड़की और गन्दी हवा निकालने के लिये एक अच्छे रोशनदान की जरूरत होती है। किसी भी भवन मे हवा के लिये पूरा स्थान होना चाहिये, जिससे कि जब भवन मे गन्दी हवा की जगह शुद्ध और साफ हवा का बदलाव हो तब वहा रहने वालो को किसी भी तरह की असुविधा का सामना नही करना पड़े। अगर भवन मे हवा का स्थान जरूरत से कम दिया गया

हो तो वहां की हवा बहुत ही जल्दी दूषित हो जायेगी। किसी भी भवन के वेन्टीलेशन को अच्छा होना तब कहेंगे, जबकि वहां की तमाम हवा एक घंटे में कम से कम 5 से 8 बार शुद्ध हवा से आदान-प्रदान करे।

किसी भी भवन में अच्छे वेन्टीलेशन बनाये रखने के लिए उसकी ऊंचाई 16' से ज्यादा नहीं होनी चाहिये, क्योंकि इस ऊंचाई से ज्यादा ऊंचाई पर पाई जाने वाली गन्दी हवा ठंडी होकर फिर से कमरे में ही गिरती है और इसके कारण वहां का वातावरण दूषित होता रहता है। ऐसी हवा सांस लेने के लिये ठीक नहीं रहती है। ऐसे वेन्टीलेटर को ठीक से बनाये रखने के लिये रोशनदान 16' की ऊंचाई से नीचे ही लगाने चाहिये। जिन भवनों मे रिज (Ridge) हो, उनका क्यूबिक हवा के स्थान का पता लगाने के लिए कमरे की लम्बाई×चौडाई×औसत ऊंचाई (जमीन से केव और रिज के बीच की ऊंचाई) का गुणा करते है। हवा द्वारा घेरी गई सही जगह का पता लगाने के लिये उस भवन में रहने वालों या रखे सामान द्वारा रोके गये स्थान को जोड कर, हवा के कुल स्थान में से घटा दिया जाता है।

वेन्टीलेशन के कार्य

(1) भवन में पाई जाने वाली आवश्यकता से अधिक नमी और गर्मी को हटाना।

(2) भवन की हवा मे कणों के रूप मे और घुली हुई अवस्था मे रहने वाली अशुद्धियों को हटाना।

(3) कुछ सीमा तक हवा के आगमन को बनाये रखना।

(4) हवा का आगमन बिना किसी बदलाव के हो और साथ ही यह इस तरह से हो कि सर्दी मे भवन का तापमान एकदम कम नही होने पावे। यह एक जाना माना सत्य है कि सांस द्वारा और अन्य स्रोतों द्वारा कार्बन डाइआक्साइड, कार्बन मोनो आक्साइड व अन्य गैसें, गर्मी, वाष्प, कार्बनिक व अकार्बनिक अशुद्धियां और सूक्ष्म जीवाणु वायुमण्डल में आते हैं और इनको भवन से एक अच्छे वेन्टीलेशन सिस्टम की सहायता से साफ हवा अन्दर लाकर हटाया या कम भी किया जा सकता है।

वेन्टीलेशन के तरीके।

(ए) प्राकृतिक वेन्टीलेशन (Natural Ventilation)

(बी) कृत्रिम या मशीनों द्वारा संचालित वेन्टीलेशन (Mechanical Ventilation)

(ए) प्राकृतिक वेन्टीलेशन

मनुष्यों के या पशुओं के रहने वाले घरों मे प्राकृतिक तरीके से बदलने रहने वाली हवा को प्राकृतिक वेन्टीलेशन कहते हैं। पशुओं के रहने वाले घरों मे ज्यादा-

तर इस तरह का प्राकृतिक वेन्टीलेशन का तरीका ही अपनाया जाता है। निम्न तीन प्राकृतिक शक्तियाँ वेन्टीलेशन के प्रतिनिधि का कार्य करती हैं।

(i) गैसों का फैलाव

(ii) हवा

(iii) एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने वाली हवा की शक्ति

(i) गैसों का फैलाव :

गैसों का सामान्य गुण यह है कि वे आपस में जल्दी ही मिलकर एक हो जाया करती है। किसी भी भवन में जहां पशु रहते हों और वहां यदि कार्बन डाइआक्साइड और मीथेन गैस निकलती हो तो वह पूरे भवन में सामान्य रूप से फैल जाती है और इस तरह वे पशुओं के आस-पास एकत्रित नही होती। इस तरह गैसों के स्वतः फैलाव की यह विधि प्राकृतिक वेन्टीलेशन सिस्टम में बहुत उपयोगी है जिसके कारण भवन में हवा का सामान्य मिश्रण सदा ही बना रहता है।

जिन घरो में पशु रहते हैं वहा के वायुमण्डल का तापमान शरीर के तापक्रम से कम होता है, इसलिये वहा की हवा शरीर की गर्मी से गर्म होती रहती है और हल्की होकर ऊपर की तरफ उठती है। इसलिये भवन में छत के पास रोशनदान देना जरूरी हो जाता है जिससे सास द्वारा निकली और शरीर के पास से गुजरने वाली गर्म व हल्की हवा कमरे के बाहर आसानी से निकल सके। इस तरह खाली हुए हवा के स्थान को भरने के लिये खिडकी द्वारा साफ हवा भवन के अन्दर जाती है। इसलिये पशुओं के रहने के भवन मे शुद्ध व ताजी हवा आने के लिये खिडकी उनके सिर के जितनी ऊंचाई पर बनाना ठीक रहता है या फिर उनके घास के खाने के स्थान के ठीक ऊपर यानी कि $1\frac{1}{2}$ से $2\frac{1}{2}$' जमीन से ऊंचाई पर बनानी चाहिये।

गर्मियो के मौसम में जब घरों के अन्दर का और बाहर के वायुमण्डल का तापमान एक सा होता है तब इस विधि द्वारा हवा का आदान-प्रदान बन्द हो जाता है और गैसों के फैलाव की इस सामान्य विधि द्वारा भवन मे ठोस कणो के रूप में पाई जाने वाली अशुद्धिया कम नही हो पाती है।

(ii) हवा :

हवा की सामान्य गति द्वारा भवन के आस–पास और उसके अन्दर पाई जाने वाली ठोस और गैस जैसी अशुद्धियां वहा से बराबर हटायी जाती रहती हैं। भवन में बाहर से आने वाली हवा वेन्टीलेशन के सिस्टम के लिए बहुत उपयोगी होती है और इससे दो फायदे हैं। एक तो भवन मे उपलब्ध किसी भी खिड़की द्वारा यह साफ और ताजी हवा अन्दर लाती है, वहा की उपलब्ध अशुद्ध हवा के साथ मिलकर उसका तनुकरण करती है और उसे भवन में उपलब्ध रोशनदान की तरफ धकेल कर बाहर वायुमण्डल में ले जाती है। इसे हवा का परफ्लेटिंग कार्य (Perflating action)

कहते हैं। कभी-कभी इसके कारण भवन का तापमान एक दम बदल जाता है और बाहर के वायुमण्डल से ठंडी हवा के झोंके तुरन्त भवन में आने लगते हैं।

हवा की दूसरी शक्ति से भवन की हवा को रोशनदान से बाहर की तरफ निकाला जाता है। जब हवा भवन के पास अपनी गति से चलती है तो रोशनदान के पास की हवा को भी अपने साथ लेती जाती है. इस तरह वहां उपलब्ध गर्म और अशुद्ध हवा बाहर निकलती है और इसका स्थान भरने के लिए भवन के नीचे के भाग से हवा ऊपर की तरफ उठती रहती है। जब भवन के नीचे के हिस्से में हवा की कमी होती है तो उस स्थान को भरने के लिये खिड़की या दरवाजे से ताजी हवा जल्दी ही भवन में प्रविष्ट होती है। इस प्रकार प्राकृतिक माध्यम द्वारा हवा अपनी सामान्य गति और गुणों के कारण वेन्टीलेशन का कार्य सुचारू रूप से चलाने में बहुत सहायक होती है।

(iii) एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने वाली हवा की शक्ति :

भवन में उपलब्ध हवा के तापमान में विभिन्नता होने के कारण उसमें कुछ गति बनी रहती है। गर्म हवा ठंडी हवा से हल्की होती है। भवन में जब हवा कुछ कारणों से गर्म होती है, जैसे कि सांस लेकर छोड़ने से, शरीर की गर्मी से, मल और मूत्र की गर्मी से या अन्य किसी कारण से, तब यह गर्म हवा फैलती है और हल्की होकर भवन में ऊपर की तरफ उठती है और ऐसे में अगर उस भवन में रोशनदान उपलब्ध हो तो यह गर्म हवा वहां से बाहर निकलती रहती है और इस हवा द्वारा खाली किये गये स्थान को भरने के लिए कमरे में खिड़की द्वारा ताजी व ठंडी हवा अन्दर आती रहती है।

वेन्टीलेशन के लिये कार्य करते हुए हवा का सबसे बड़ा अवगुण यह है कि उसकी गति का कुछ भी पक्का पता नहीं रहता है और इसको बनाये रखना बहुत ही मुश्किल होता है।

अगर हवा की गति नहीं हो तो इसका यह मतलब नहीं कि भवन में हवा का आगमन नहीं होगा। जब तक भवन के अन्दर का तापमान बाहर के वातावरण से ज्यादा रहेगा, तब तक भवन से गन्दी व गर्म हवा बाहर निकलती रहेगी और इसके स्थान पर ठंडी व ताजी हवा भीतर आती रहेगी। मगर यह सब काफी धीमी गति से ही होगा। सर्दी के मौसम में जब घर के अन्दर और बाहर के तापमान में काफी फर्क होता है तब वेन्टीलेशन का यह तरीका बहुत सुचारू रूप से कार्य करता है।

हवा अन्दर लेने वाले वेन्टीलेटर्स के नमूने

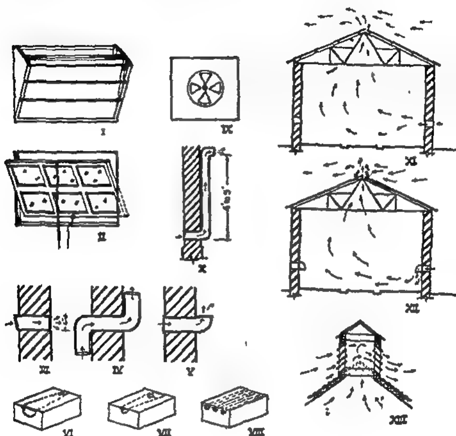
1. दीवार में लगने वाली खिड़कियां (**Wall windows**) : (ए) हापर खिड़की (**Hopper window**) (बी) क्षितिज धुरी पर घूमने वाली खिड़की (**Horizontally centre pivoted window**)

2. सीधे हवा अन्दर लाने के लिये नल और बक्से (Direct inlet pipe and boxes)

3 हवा अन्दर लाने के लिये ईंटें (Air bricks)

4. हिट-एण्ड-मिस खिड़की (Hit and Miss window)

5. हवा अन्दर लेने के लिये ट्यूब या फ्लू या टोबिन्स ट्यूब का उपयोग (Tube or flue inlet or tobins tube)



चित्र 4. हवा अन्दर लेने व बाहर निकालने वाले वेन्टीलेटर्स के नमूने। (I) हापर खिड़की, (II) क्षितिज धुरी पर घूमने वाली खिड़की, (III) चीनी मिट्टी के नल, (IV) मुड़े हुए नल, (V) बक्से, (VI से VIII) ईंटों की किस्मे, (IX) हिट-एण्ड-मिस खिड़की, (X) ट्यूब या फ्लू, (XI) छत की पूरी लम्बाई तक बीचों-बीच खुला हुआ रोशनदान, (XII) छत की पूरी लम्बाई तक बीचों-बीच खुला हुआ समयोजनशील रोशनदान और (XIII) लेवरे-बोर्ड रोशनदान।

1. दीवार में लगने वाली खिड़कियां

हवा अन्दर लेने वाले वेन्टीलेटर्स के नमूने मे हापर (चित्र 4.I) किस्म की

खिड़की सबसे ठीक रहती है। इसके द्वारा भवन में वायु के झोंके एक दम अन्दर प्रवेश नही कर पाते। इसके सामने की तरफ कांच लगा रहता है, जिससे कमरे मे रोशनी की कमी नही रहती है। सामने का काच एक फ्रेम में जड़ा रहता है, इसे कमरे में आगे की तरफ झुकाया जा सकता है जिससे कि खराब मौसम मे यानी कि बहुत गर्मी या बहुत सर्दी मे अन्दर आने वाली हवा सीधे ही पशु के सिर से नहीं टकरायेगी। यह हवा काच में 30 या 40° का कोण बना होने के कारण टकराकर कमरे मे पशु के सिर के ऊपर से प्रविष्ट होती है और उसके पीछे की तरफ चारों ओर उस तरह फैल जाती है जिस तरह कि पंखा चलाने पर हवा चारों ओर फैलती है। इस तरह की खिड़की के निचले भाग में कब्जे लगे होते हैं जिसके कारण यह भीतर की ओर खुलती है। इसके बाजू के दोनों किनारों पर रोधक तख्ते लगे होते है जिनसे यह खिड़की अन्दर की तरफ गिरने से बची रहती है। हवा अन्दर लेने के लिए यह खिड़की 9" × 3" तक खोली जा सकती है।

प्रति व्यक्ति के लिये भवन में हवा अन्दर लेने वाली खिड़की और खराब हवा बाहर निकलने के रोशनदान का कुल 24 वर्ग इच हिस्सा खुला रहना चाहिये, जबकि यह जगह घोड़े और गाय के लिये 36 वर्ग इच, सूअर के लिये 3 से 6 वर्ग इच और कुत्ते के लिये 1 से 2 वर्ग इंच निश्चित की हुई है। भवन के खुले हुए भागो के लिये हापर किस्म की खिड़किया बहुत ही उपयोगी है। लेकिन क्षितिज धुरी पर घूम कर खुलती रहने और बंद होती रहने वाली खिड़की (चित्र 4.11) इतनी उपयोगी नही है, क्योकि यह खिड़की भवन के खुले हुए भाग पर नही लगायी जा सकती है और जब हवा की गति तेज हो तब इसे भवन मे लाने के लिये नियन्त्रित नही किया जा सकता है। इन कारणों से इस प्रकार की खिड़कियां अधिकतर समय के लिये बंद रखनी पड़ती हैं।

2. सीधे हवा अन्दर लाने के लिये नल और बक्से

पशु भवन के लिये 4" व्यास के चीनी मिट्टी के बने नल (चित्र 4.III) दीवार मे उपयुक्त स्थान पर लगाये जा सकते हैं। एक नल दो पशुओं के बीच काफी होता है। जिन स्थानो पर हवा की गति हमेशा तेज बनी रहती हो, वहा पर मुड़े हुए नल (चित्र 4 IV) का प्रयोग किया जा सकता है। इस तरह के नल के कारण हवा की गति में रुकावट पैदा होती है। कुछ किस्म के बक्से (चित्र4. V) भी इस्तेमाल किये जाते हैं। इनमे हवा का रास्ता छोटा या बड़ा करने के लिये कपाट लगे रहते हैं। इन कपाटो की सहायता से निर्धारित गति से वायु को कमरे में आने दिया जाता है।

3. हवा अन्दर लाने के लिये ईंटें

इस किस्म के वेन्टीलेशन के लिये छिद्र युक्त ईंटें बनाई जाती हैं और फिर उन्हें दीवार के साथ चुन दिया जाता है। ये ईंटें विभिन्न आकार प्रकार की होती है। कुछ

किस्म की ईंटें इस तरह बनती है कि उनमें बनाये गये छिद्र बाहर दीवार की तरफ तो ईंट से कम ऊंचाई पर बनता है और ज्यों-ज्यों यह ईंट के अन्दर चलता है इसकी ऊंचाई बढ़ती जाती है और भवन के अन्दर की तरफ यह छिद्र काफी ऊंचाई पर खुलता है। इस तरह की किस्म के कारण हवा कमरे मे ऊंचाई की तरफ बढ़ती है। कुछ किस्म मे, ईंट के बाहरी हिस्से में छोटा छिद्र होता है और अन्दर की तरफ (चित्र 4.VI) यह बडा होता है, जिससे कि वायु का वेग कम पड़ता है। जिस स्थान पर वायु की गति कम हो वहां ईंट के बाहरी हिस्से का छिद्र बडा व अन्दर के भाग (चित्र 4.VII) का छिद्र छोटा रखा जाता है ताकि वायु की गति बढ़ सके।

समानान्तर छिद्र (चित्र 4.VIII) की किस्म वाली ईंटें भी बनाई जाती हैं और इनका उपयोग फर्श के ठीक ऊपर लगाकर किया जाता है जिससे कि फर्श धुलने के बाद जल्दी ही सूख सके। ईंटों के छिद्रों को समय-समय पर सफाई करते रहना चाहिये, क्योंकि इनके काफी समय तक लगे रहने के कारण धूल, कचरे और मकड़ी के जाले इत्यादि से छिद्र आंशिक रूप से बन्द हो जाते है और वायु जब तीव्र गति से इनमें से निकलती है तो इनमें से सीटी की सी आवाज आने लगती है। ऐसी आवाज से पशुओं को आराम के समय और दूध देने में काफी विघ्न भी पैदा होता है।

4. हिट-एण्ड-मिस खिड़की

हिट-एण्ड-मिस खिड़की (चित्र 4. IX) के द्वारा वेन्टीलेशन सुचारू रूप से रहता है और रोशनी की कमी नही रहती है। इस किस्म की खिडकी के दो भाग होते हैं। एक भाग तो स्थिर रहता है तथा दूसरा भाग घूमता रहता है। स्थिर भाग कांच का बना होता है और इससे रोशनी भी मिलती रहती है। घूमने वाला भाग धातु का बना होता है और इसको घुमाकर कमरे में लाने के लिये हवा की मात्रा कम या ज्यादा की जा सकती है। घूमने वाले भाग पर एक उभरा हुआ धातु का हिस्सा लगा रहता है, इसके साथ ही चार धातु की पत्तिया लगी रहती है। धातु के घूमने पर पत्तिया भी घूमती हैं और खिड़की के खुले भाग को इसके द्वारा कम या ज्यादा खोला जा सकता है। भवन मे तीव्र गति से आने वाली हवा को इस प्रकार की खिड़की द्वारा ठीक प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है।

5. हवा अन्दर लेने के लिये ट्यूब या फ्लू या टोबिन्सट्यूब का उपयोग

इस प्रकार के वेन्टीलेटर धातु के बने 4 से 5' ऊंचाई के एल (L) के आकार (चित्र 4.X) के नल होते है। इसके नीचे का लम्बा वाला भाग भवन के बाहर की तरफ रहता है तथा इस भाग द्वारा हवा ग्रहण की जाती है। नल के ऊपर वाला यानी कि वह भाग जिससे हवा निकलती है भवन के अन्दर की तरफ रहता है। ठंड के मौसम मे हवा बहुत ही ठंडी होती है, इस ठंडी हवा को एल के आकार वाले नल

द्वारा भवन में आने दिया जाता है। ज्यों-ज्यों हवा नल के ऊपरी भाग में जाती है यह गर्म होती जाती है। परन्तु ये नल कमरे की गर्म हवा के कारण शुद्ध गर्म होते तथा उसमें बहने वाली हवा भी कमरे के अन्दर गिरने से पहले काफी गर्म हो जाती है और इस तरह कमरे के वातावरण का तापमान एकदम नहीं बदलता है और वहां रहने वाले पशुओं को शुद्ध व ताजी हवा बराबर मिलती रहती है।

एल आकार के ये नल निम्न तरीके के वेन्टीलेशन में भी लगाए जाते हैं। इस विधि द्वारा नल में आने वाली हवा को कपड़े या रूई के द्वारा छान कर भवन के भीतर लिया जा सकता है। सर्दी के मौसम में जब लोग अक्सर अपने और पशु के घरों को ठण्डी हवा से बचाने के लिए खिड़कियां या दरवाजे बन्द रखते हैं, वहां इस तरह के एल आकार के नल लगाकर वेन्टीलेशन को सुचारु रूप से बिना किसी प्रकार की हानि से चलाया जा सकता है।

हवा बाहर फेंकने वाले वेन्टीलेटर्स के नमूने

(1) छत की पूरी लम्बाई तक बीचों-बीच खुला हुआ कुछ भाग (Continuous ridge opening)
(2) छत की पूरी लम्बाई तक बीचों-बीच खुला हुआ समायोजनशील भाग (Adjustable ridge opening)
(3) चीनी मिट्टी से बने रोशनदान (Fireclay ridge outlets)
(4) लेवरे-बोर्ड रोशनदान (Louvre board ventilators)
(5) लम्बे नलों वाला रोशनदान (Outlet Shaft)

1. छत की पूरी लम्बाई तक बीचों-बीच खुला हुआ कुछ भाग :

इस वेन्टीलेटर के नाम से ही साफ जाहिर होता है कि छत की पूरी लम्बाई तक कुछ खुला हुआ भाग मौजूद रहता है (चित्र 4.XI)। इस प्रकार के रोशनदान से गन्दी हवा की निकासी और रोशनी दोनों ही काम सुचारु रूप से होते रहते हैं। गायों के रहने वाले बाड़ों के लिये इस प्रकार का रोशनदान उपयुक्त रहता है। बाड़ों में जो गर्म और गन्दी हवा छत की तरफ बढती है, वह बाड़ो में बने रोशनदान के पास से गुजरने वाली हवा द्वारा बाहर की तरफ खिंचती रहती है। इस प्रकार के रोशनदान का उपयोग एक मंजिल के भवनों में ही सम्भव हो सकता है। यह रोशनदान काफी सस्ता और साथ में उपयोगी भी है, इसके लिए छत में 4 से 6" चौड़ा भाग खुला रखा जाता है, जिसमें से हर समय घर की गन्दी हवा बाहर की ओर निकलती रहती है।

2. छत की पूरी लम्बाई तक बीचो बीच खुला हुआ समायोजनशील भाग :

यह रोशनदान ऊपर दी गयी विधि का एक उन्नत रूप है। यह सिर्फ एक

मंजिल के भवन के लिए ही उपयोगी है। इसे फिण्डले (Findly) विधि भी कहते है। इस विधि में भवन की छत लम्बाई मे बीचो–बीच ऊपर की ओर खुलती है (चित्र 4 XII) और इसमें लकड़ी या धातु की पट्टी लगी रहती है। इसको छत पर कब्जों की सहायता से लगाया जाता है, जिससे लीवर द्वारा इनके कोण कम या ज्यादा किये जा सकते हैं। इस विधि में वेन्टीलेशन के लिए छत पर 1 फुट 8 इंच भाग खुला रखा जाता है। इस रोशनदान द्वारा गन्दी हवा बाहर निकलती रहती है और साथ ही रोशनी भी मिलती है। लकड़ी या धातु की पट्टी में कोण रहने के कारण जब बाहर की हवा इससे टकराकर ऊपर उठती है तब वह अपने साथ रोशनदान के मुंह पर रहने वाली अशुद्ध व गर्म हवा को साथ खींचकर ले जाती है।

3 चीनी मिट्टी से बने रोशनदान :

चीनी मिट्टी से कुछ किस्म के रोशनदान बनाये जाते है। ये काफी सरल होते हैं और किसी भी पुराने ढंग के बने मकान के लिए ही उपयुक्त रहते है। ये सीधे या टी (T) के आकार की चिमनी के समान होते हैं। रोशनदान के लिये इस किस्म के वेन्टीलेटर उपयोगी नही रहते है।

4. लेवरे-बोर्ड रोशनदान :

यह रोशनदान एक प्रकार का ढका हुआ फ्रेम या बक्सा (चित्र 4.XIII) होता है जो छत पर उचित स्थान पर लगाया जाता है। बक्से के दोनों ओर एक के ऊपर एक ढलुआ तख्ते या धातु या काच की पट्टिया बराबर फासले पर इस प्रकार लगा दी जाती है कि इससे गन्दी हवा तो बाहर जा सके किन्तु वर्षा का पानी इसके द्वारा भवन के अन्दर नही आ सके। इन लेवरे–तख्तों को क्षितिज तल से 50 या 60 अंश के कोण बनाते हुए लगाना चाहिये। हाथ से लेवरों का कोण बदल सकने वाले लेवरों का उपयोग नही करना चाहिये क्योकि हर बार वायु की गति बदलते रहने पर इसके उपयोग मे असावधानी रह सकती है और इस कारण ये अनुपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

5. लम्बे नलों वाला रोशनदान :

इस रीति द्वारा धातु के बने आयताकार या गोल आकार के नलो द्वारा घरो से दूषित हवा बाहर निकाली जाती है। यह दो मंजिले भवन के लिये या ऐसे भवन के लिये जिसमें किसी दूसरे प्रकार का रोशनदान न लगाया जा सके, काफी उपयोगी होता है। इस विधि मे नल की लम्बाई ज्यादा रखनी ठीक रहती है। नल मे कहीं भी मोड आ जाने के कारण उसमें हवा का प्रवाह कम पड जाता है, और इसे सुधारने के लिए मोड़ पर नल का व्यास अधिक कर देना उचित रहता है। छत के ऊपर खुली हवा में नल का सिर्फ 2 फुट भाग ही खुला रहना चाहिये, अगर यह भाग इससे ज्यादा होगा तो ठंड के मौसम मे नल की हवा ठंडी हो जाने के कारण भारी होकर फिर से भवन मे लौट आयेगी।

(पी) कृत्रिम या मशीनों द्वारा संचालित वेन्टीलेशन :

किसी भी भवन में जब प्राकृतिक वेन्टीलेशन ठीक ढंग से काम नहीं करता वहां कृत्रिम वेन्टीलेशन का उपयोग किया जाना चाहिये। इस वेन्टीलेशन की दो विधियां हैं। एक विधि प्लिनम (Plenum) है, जिसमें ठंडी या गर्म हवा किसी भी भवन में नलों की सहायता से पंखों द्वारा प्रवाहित की जाती है। दूसरी विधि जिसमें किसी भवन से हवा को पंखों द्वारा खींच कर (Vacuume or extraction) बाहर निकाली जाती है और इस खाली स्थान को भरने के लिए साफ हवा भवन में प्रवेश करती है। यह विधि पहले दी गई विधि से ज्यादा उपयोगी है। कृत्रिम वेन्टीलेशन विधि खानों (Mines), कुक्कुट पालन की अन्तःगृह प्रणाली (Intensive Poultry farming), पशुघरों और पशुओं को ले जाने वाले जलयानों के लिए बहुत उपयोगी है। जलयानों की खिड़की में हवा अन्दर लेने के लिए एक पंखा लगाया जाता है तथा दूसरा पंखा रोशनदान पर गन्दी हवा को बाहर निकालने के लिए लगाया जाता है। एक अच्छे वेन्टीलेशन के लिए यह जरूरी है कि किसी भी भवन में साफ हवा लगातार आती रहे और अशुद्ध हवा लगातार बाहर निकलती रहे, लेकिन साफ हवा के लिये स्वच्छ वातावरण का होना भी जरूरी है।

खराब वेन्टीलेशन के कुप्रभाव

जो घर प्रायः बंद रहते हैं, वहा पर रहने वाले लोगो में रोगो से प्रतिरोध करते रहने की शारीरिक क्षमता पर बुरा असर पडता है और इस कारण उनमें बीमारी होने की सम्भावनाएं बनी रहती हैं। खराब वेन्टीलेशन के कारण नवजात शिशुओं की सेहत पर बुरा असर पड़ता है और उनमें मृत्यु दर भी अधिक होती है। खराब वेन्टीलेशन वाले भवन में या जिस भवन में जगह से ज्यादा लोग इकट्ठे हो तो वहा उन लोगों में उल्टी होना, चक्कर आना, बेहोशी और सिर दर्द आदि की शिकायत रहती है। जब ऐसे भवन में कोई ज्यादा समय तक ठहरता है तब उसमें भूख न लगना, सुस्ती आना, अपच और शरीर का तापक्रम बढ़ना आदि की शिकायत रहती है। इसके कारण शरीर की बीमारियों से सामना करने की क्षमता क्षीण होती है और उन्हें शीघ्र ही जुकाम, कफ, न्युमोनिया, एन्थ्रैक्स और क्षय आदि रोग घर दबाते है।

प्रकाश

दिन मे मिलने वाला प्राकृतिक प्रकाश मनुष्य तथा पशु दोनों के स्वास्थ्य और समृद्धि के लिये फायदेमंद होता है। कम उम्र के पशु विटामिन डी (D) का संश्लेषण कर सकें इसलिये उन्हे धूप की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध करानी चाहिये। जिन छोटी उम्र के पशुओं को अंधेरे और ज्यादा आर्द्रता वाले भवनो मे रखा जाता है उनमे बीमारी और मृत्यु की दर ज्यादा रहती है। ठीक से देखने के लिये अच्छी रोशनी की जरूरत रहती है।

प्राकृतिक और कृत्रिम प्रकाश के असर :–

1. कारखानों में अक्सर यह देखा गया है कि मनुष्यों में प्राकृतिक प्रकाश की अपेक्षा कृत्रिम प्रकाश मे कार्य करने की क्षमता ज्यादा रहती है, यद्यपि दोनों विधियों में प्रकाश की तीव्रता लगभग सामान्य रहती है।

2. प्राकृतिक प्रकाश की दूरी और तीव्रता का पशुओं और पक्षियों के प्रजनन चक्र से काफी सबंध रहता है। प्रकाश की जितनी मात्रा मुर्गियो को मिलती है, उससे उनके अण्डा-उत्पादन पर काफी असर पडता है। प्रकाश की किरणो के कारण मुर्गियो में पीटूटरी ग्रन्थि (Pituitary gland) से फोलिकल (Follicle) पैदा करने वाला हार्मोन (Harmone) उत्पन्न होता है जिससे अंडों का उत्पादन बढ़ता है। ऊट, बकरी और भेड़ को दिन का प्रकाश कम मिलने के कारण उनमें मैथुन-ऋतु (Sexual Season) का प्रारम्भ होता है।

3. सर्दी के मौसम मे अधिकतम अंडों के उत्पादन के लिये मुर्गियो को कुल 13 या 14 घण्टों तक प्रकाश की जरूरत रहती है, यह समय दिन के प्रकाश और उसके बाद कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था करके पूरा किया जाता है।

4. प्रकाश के कारण भवन को साफ सुथरा रखने मे सुविधा रहती है। भवन में प्रकाश और अच्छी साफ-सफाई बनाये रखने के लिये छत और दीवार को सफेद रखना चाहिये।

5. सूर्य के प्रकाश में सूक्ष्म जीवाणुओ को मारने की शक्ति रहती है जो कि उसमे रहने वाले अल्ट्रा वायलेट किरणो और गर्मी के कारण जीवाणुओं के अन्दर से पानी को उड़ा सकने की क्षमता के कारण होती है। क्षय रोग, स्ट्रेप्टोकोकाई तथा स्टेफिलोकोकाइ जीवाणु, सूर्य के प्रकाश की किरणो के सीधे असर के कारण कुछ ही घटों में समाप्त हो जाते हैं।

6. प्रकाश का सीधा असर शरीर का तापक्रम बनाये रखने, शारीरिक कार्य क्षमता और भूख पर होता है।

पशुशालाओं के लिये प्रकाश की व्यवस्था

पशुशालाओं को इस ढंग से बनाया जाना चाहिये कि वहा दिन का प्राकृतिक प्रकाश ज्यादा से ज्यादा समय तक उपलब्ध हो। गायो के बाड़े मे दूध निकालने के लिये प्रकाश की मात्रा का पूरा होना बहुत आवश्यक है। छत पर रोशनदान बना कर पशुघरों के लिये प्राकृतिक प्रकाश का पूरा उपयोग किया जा सकता है। जिन बाडों मे गायों को दो कतारो मे रखा जाता है तथा उनके मुंह खिडकियो की तरफ हो तो, ऐसे मे दीवार पर प्रकाश का किया गया प्रबन्ध बिल्कुल ठीक नहीं रहता है, इसलिये ऐसे भवनो में छत पर रोशनदान बना कर प्रकाश की व्यवस्था करनी चाहिये। भवन मे खिड़किया या तो उत्तर या पूरब दिशा में लगानी ठीक रहती

है। इसके कारण सूर्य की रोशनी पशुओं पर सीधी नही गिरेगी। प्रकाश की अच्छी व्यवस्था के लिये हर पशु गृह मे हापर किस्म की खिड़की लगानी ठीक रहती है।

पशुशालाओं में प्रकाश के लिये लगाये जाने वाले कांच का न्यूनतम क्षेत्रफल -

गौशालाएं :– प्रत्येक गाय के प्रकाश के लिये छत मे 4 वर्ग फुट का स्थान होना चाहिए।

बछड़ों के घर के लिये :– $4 \times 3'$ जगह प्रति बछड़ा घर के लिये होनी चाहिये यह व्यवस्था हापर खिड़की द्वारा या फिर छत पर 50×60 वर्ग इंच जगह करके की जा सकती है।

अस्तबल :– दो घोड़ों के लिए छत में 4 वर्ग फीट कांच लगाकर प्रकाश की व्यवस्था करें अथवा दीवार में 12 वर्ग फीट की खिड़की लगावें।

सूअर के लिये :– एक सूअर के लिये 50 वर्ग इंच छत द्वारा प्रकाश दिया जाये या फिर एक वर्ग फीट आकार की खिड़की दीवार मे लगावें।

कुक्कुटशालाएं :– प्रति मुर्गी 0.5 वर्ग फीट स्थान द्वारा प्रकाश की व्यवस्था करें।

कृत्रिम प्रकाश की व्यवस्था

कृत्रिम प्रकाश की अच्छी व्यवस्था के लिये निम्न विशेषताएं होनी चाहिये।

(ए) वह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो।

(ब) प्रकाश मे स्थिरता हो और वह सभी जगह एक समान फैला हुआ होना चाहिये।

(सी) वह आंखो को चकाचौंध न करे।

(डी) प्रकाश की व्यवस्था ऐसी जगह हो जिससे कार्य करने के स्थान पर परछाई न पड़े।

बिजली के प्रकाश का उपयोग पशुघरो के लिये बहुत उपयुक्त रहता है। यह साफ होता है क्योकि इस के द्वारा वायुमण्डल मे कुछ भी बदलाव नही आता है और प्रकाश के स्रोत को सुविधा के अनुसार किसी भी स्थान पर लगाया जा सकता है। ऐसे प्रकाश के कारण कार्य क्षमता मे वृद्धि होती है और पशुगृह साफ सुथरा रहता है। जिस पशुघर मे 12 गायें हों, वहां दो बल्ब सामने की दीवार पर और तीन बल्ब पीछे की दीवार पर लगाने चाहियें। इसके लिये 60 या 100 वाट का बल्ब लगाना ठीक रहता है। फ्लोरेसेन्ट (Fluorescent) प्रकाश की व्यवस्था करनी ठीक रहती है, क्योकि इसमे खर्च कम आता है। यह गर्मी पैदा नही करती है और इससे उपलब्ध होने वाले प्रकाश का रंग दिन के प्राकृतिक प्रकाश के रंग जैसा ही होता है। कोल गैस (Coal gas) का प्रकाश काफी उपयोगी रहता है, मगर इससे गर्मी

निकलना, गैसों की उत्पत्ति, और आग लगना जैसे अवगुण होने के कारण उसे ज्यादा काम में नही लिया जा सकता है।

ऊपर दी गयी दोनो सुविधाओ के उपलब्ध नही होने पर एसिटिलिन गैस, पेट्रोल गैस या पेराफिन तेल के लेम्पों का उपयोग किया जा सकता है। दूध उत्पादन के स्थानो पर लालटेन को काम में लेना ठीक नही रहता है। इससे दूध की स्वच्छता बनाये रखने मे विघ्न होता है। दूसरी कोई व्यवस्था उपलब्ध न होने पर पेराफिन का लैम्प काम में लेना ठीक रहता है।

स्वच्छता

स्यूऐज इकट्ठा करना, हटाना और उसका निस्तारण करना

पानी, हवा और खाने की वस्तुओं का प्रदूषण मनुष्यों, पशुओं और [illegible] के स्यूऐज के कारण होता है और भारत जैसे देश के लिये यह विषय विशेष [illegible] रखता है । जब तक स्यूऐज को ठीक तरह से इकट्ठा नही किया जायेगा और [illegible] उसे वहां से हटा कर सही ढंग से निस्तारित नही किया जायेगा तब तक [illegible] तथा पानी आदि का प्रदूषण होता रहेगा और इसके कारण मनुष्यों और [illegible] मे बीमारियां फैलती रहेंगी । स्यूऐज का ठीक ढंग से निस्तारण नही होने के [illegible] पीने के पानी के स्रोतो का संदूषण होता है और प्रदूषण की समस्या गांवो से [illegible] और शहरो से गांवों में पहुंचती रहती है । भारत में पानी के प्रदूषण के कारण [illegible] शहरो और गावों मे रहने वाले लोग दूषित पानी पीने पर एक प्रकार के [illegible] से पीड़ित होते रहते हैं । घरों और कारखानों से निकलते रहने वाले स्यूऐज [illegible] सही ढंग से निस्तारण नही हो सकने के कारण इनमें पायी जाने वाली बीमारी [illegible] जीवाणु और विषैले पदार्थ मनुष्यों और पशुओं के खाने की वस्तुओं, पानी [illegible] तक पहुंच कर उनका संदूषण करते हैं । वैसे तो सूर्य की किरणों में जीवाणुओं को मारने की क्षमता होती है, लेकिन किन्ही कारणों से कुछ जीवाणु सूर्य की [illegible] बचे रह जाते हैं और वे उसकी किरणों से नही मरते हैं । इस कारण से [illegible] कर मरने वाले जीवाणु हवा, पानी और खाने की वस्तुओं द्वारा फैल कर [illegible] और पशुओं मे रोग पैदा करते रहते हैं ।

किसी भी नगर, शहर या गांव को प्रदूषण की समस्या से तब तक दूर [illegible] कराया जा सकता है जब तक कि वहां के घरों और कारखानों के स्यूऐज और [illegible] पदार्थों की सफाई का ढंग अपनाते हुए और सही वैज्ञानिक तरीके से इकट्ठा [illegible] हटाकर और फिर ठीक ढंग से उनका निस्तारण न कर देवें । स्यूऐज का [illegible] से उपचार करने के पश्चात् किसान उसे खेती के काम में ले सकता है और [illegible] प्रयोग करने से फसलें भारी तादाद में बहुत उत्पन्न होती है । यदि बिना उपचार [illegible] हुए स्यूऐज से खेती की जाय तो उससे किसान के रोग की संभावना होती है और [illegible] पशुओं और पौधों आदि को हानि पहुंच जा सकती है ।

स्वच्छता

वातावरण की स्वच्छता आसपास की सफाई के बारे में ज्ञान कराती है। यह स्वास्थ्य पर नियंत्रण रखती है। अस्वच्छता के कारण बीमारी या कुछ भी गड़बड़ उत्पन्न हो सकती है। स्वच्छ वातावरण के कारण मक्खियो और शरीर पर रहने वाले बाह्य परजीवियों जैसी जटिल समस्याओ पर भी काबू पाया जा सकता है। स्वच्छता के कारण पशुओं से उत्पादित मांस, अण्डे और दूध आदि को संदूषिण होने से बचाया जाता है और बाजार मे इनके अच्छे दाम मिलते है।

स्वच्छता का उद्देश्य यह है कि निरर्थक पदार्थों का जल्दी और सही तरीके से निस्तारण हो, जिसके कारण बीमारिया सीधे सम्पर्क या किसी मध्यवर्ती परपोषी द्वारा नही फैलने पाए। पानी के प्रदूषण के कई कारण हो सकते हैं। अत: यह सबसे जरूरी है कि नालियों का रखरखाव और उसमे बहने वाले गन्दे पानी का निस्तारण सही तरीके से हो। किसी एक घर से गंदा पानी नल द्वारा ले जाया जाये तो उसे नाली कहते है, जबकि जो नल दो या उससे ज्यादा नलों का गदा पानी ले जाये तो उसे स्यूवर (Sewer) कहते हैं।

मनुष्यों या पशु आवासगृहों से गंदे पानी की निकास-प्रणाली के लिये कुछ सिद्धान्त :—

1. नल वांछनीय पदार्थ का बना हुआ होना चाहिये। गदे पानी से फैलने वाले प्रदूषण को रोकने के लिये नल से किसी प्रकार का रिसाव न हो और उसके जोड से पानी, गैस या हवा नही निकलनी चाहिये। नल इतना मजबूत होना चाहिये कि उसमे होने वाले रिसाव का पता लगाने के लिये उस पर पानी, हवा और गैस का परीक्षण सही ढग से किया जा सके।

2. नल का व्यास 4" होना चाहिये जबकि नल बिछाते समय हर 60" लम्बाई तक 1" के ढलान का प्रावधान रखना चाहिये।

3. नल को सीधी लाइन मे ही बिछाएं और मोड पर समकोणीय जोड डालें। नल को मुख्य स्यूवर लाइन से जोडते समय ख्याल रखें कि उसके जोड़ का कोण इस तरह हो कि उसमें से मुख्य स्यूवर मे मिलने वाला पानी कुछ भी रुकावट न डालने पाये। नलों के जंक्शन पर परीक्षण कक्ष जरूर होना चाहिये।

4. भवन के नीचे से पानी के निकास की व्यवस्था के लिये नल उसके नीचे से नही ले जाने चाहिये। अगर नल बिछाने की कोई दूसरी व्यवस्था न हो तो उन्हे सीधा बिछावें तथा वे ढलाऊ लोहे के होने चाहिये। इसकी सुचारु व्यवस्था के लिये नल के चारो और सीमेट और कंकरीट की 4" की तह बनावें।

5 वर्षा के पानी की निकासी हेतु अलग से नल की व्यवस्था करें।

6. नाली और स्यूवर के बीच मे ट्रेप (Trap) की व्यवस्था करें।

7. जिस नाली द्वारा स्यूऐज का पानी ले जाया जा रहा हो उसमें वेन्टीलेशन के लिये नल जरूर लगाना चाहिये जिससे कि उसमें उत्पन्न होने वाली खराब गैस वायुमण्डल में प्रवाहित हो सकें।

8. गंदे पानी को ले जाने वाले नल की भीतरी सतह समतल होनी चाहिये जिससे उसमें बहने वाले ठोस पदार्थ बिना रुकावट के बह सकें।

नलों की किस्में, ढाल और आकार (Pipes-Materials, Gradient and Size) :–

किसी भी भवन से गंदे पानी की निकासी के लिये ढलवां लोहे, पत्थर, मिट्टी, सीमेंट, कंकरीट तथा चीनी मिट्टी के अग्निसह द्वारा तैयार किये गये या किसी अन्य पदार्थ के बने नल काम में लिये जा सकते हैं। उनकी लम्बाई 2 से 6' तक हो सकती है। नलों की मोटाई कम से कम $\frac{3}{16}$ से $\frac{1}{2}$" होनी चाहिये। ये नल मजबूत होने चाहिये, उनसे पानी नहीं रिसना चाहिये और उनकी अन्दर की सतह समतल होनी चाहिये। नल पर अम्ल और क्षारयुक्त गंदे पानी का कुछ भी असर नहीं होना चाहिये। नल के मुंह का और पिछला हिस्सा बिना पालिश का तथा खुरदरा हो तो उनको जोडने में बहुत सुविधा रहती है क्योंकि ऐसे नलों में सीमेंट लगाने पर जोड़ मे से पानी का रिसाव बिल्कुल नही होता।

नल भूमि में बिछाते समय ढाल उसके व्यास से दस गुणा ज्यादा देना ठीक रहता है, जैसे कि यदि नल एक चौथाई भरे हुए चलते हों तो 4" के पाइप मे 40" पर एक इंच का ढाल होना चाहिये और 6" के पाईप मे 60" पर एक इंच का ढाल होना चाहिये। स्यूवर को समय-समय पर पानी प्रवाहित करके साफ रखना चाहिये जिससे कि उसमे कचरा जमा न हो सके। गायो के बाडे के लिये 4" व्यास का नल लगाना ठीक रहता है। नलो मे प्रवाहित होने वाले पानी की गति 2 से 3' प्रति सैकण्ड पर्याप्त होती है।

जहां तक संभव हो नल सीधी लाइन में ही बिछवाना चाहिये किन्तु जब मोड़ आ जाये और नल को सीधा ले जाना सभव न हो तब ऐसी स्थिति में मुड़े हुए नल 'बैण्ड' का उपयोग करना चाहिये। जंक्शन भी ठीक ढंग से बनाना चाहिये जिससे उसमे आने वाला स्यूऐज का पानी बिना किसी रुकावट के बड़े स्यूवर नल मे मिलकर प्रवाहित हो सके। समकोण पर बनाये गये स्यूवर, नल मे कभी भी रुकावट पैदा कर सकते हैं। इसके कारण पानी आपस मे टकराता है और बहाव मे रुकावट पैदा होती है जिससे नल में कचरा इकट्ठा होने लगता है और कुछ समय बाद नल बिल्कुल अवरुद्ध हो जाता है। जंक्शन पर हमेशा निरीक्षण कक्ष बनाना जरूरी होता है।

ट्रैप (Trap)

यह एक प्रकार का ऐसा साधन है जिससे स्यूवर नलों में बनी हुई गैसें फिर से घरों के नल में प्रविष्ट नहीं हो पाती हैं। इसे घरों के नल और स्यूवर नल के बीच में लगाया जाता है। ट्रैप की कार्य-क्षमता उसके मुड़े हुए भाग या लिप (Lip) पर आधारित रहती है और यह भाग हमेशा पानी में डूबा हुआ रहता है। लिप पानी में कम से कम 2" तक डूबा रहना चाहिये। इसके कारण पानी की एक पूर्ण सील बन जाती है जिससे स्यूऐर नलों से लौट कर आने वाली गैसें आगे प्रवाहित नहीं हो पाती और बाह्य परजीवी तथा चूहे आदि घर में प्रवेश नहीं कर पाते। ट्रैप की रचना सरल होनी चाहिये तथा उसमें भीतर की ओर उठे हुए भाग या कहीं भी किनारे निकले हुए न हों। ट्रैप स्वयं ही साफ होता रहता है जिससे जल का सामान्य प्रवाह भी ट्रैप में रुके हुए जल को बदलता रहता है और पीछे कुछ भी कचरा नहीं बचता। इसका आधार वर्गाकार होना चाहिये जिससे इसे जमीन पर आसानी से लगाया जा सके। इसके सभी भाग पूर्णत: जुड़े हुए होने चाहिएँ। नल में पानी पर पूर्ण दबाव रहे इसलिये उसमें घर की तरफ वाले हिस्से में हवा आने के लिये कुछ भाग खुला हुआ होना चाहिये। स्यूवर के नल की तरफ भी एक छेद वेन्टीलेशन के लिये खुला रहना चाहिये। यह पानी पर दबाव कायम रखता है और साथ ही उसके द्वारा नल में आयी हुई रुकावट को भी किसी तार या बांस-पट्टी के द्वारा दूर किया जा सकता है।

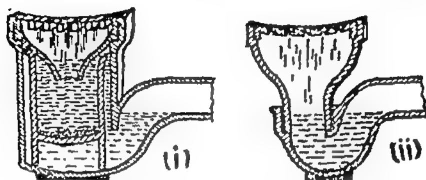
बूकन रोधक साइफन ट्रैप (Buchan's Intercepting Syphon Trap)

यह एक अत्यन्त प्रभावशाली ट्रैप है। इसके अन्दर की सतह एकदम समतल होती है और इसमें किसी भी तरह की रुकावट पैदा नहीं होती है। इस ट्रैप की सील बहुत सक्षम होती है तथा इसमें ताजी हवा और वेन्टीलेशन का प्रावधान रहता है। इस ट्रैप में पानी और मल तेजी से प्रविष्ट होता है, लेकिन निकासी धीरे-धीरे होती है। इसका उपयोग मनुष्यों के लिये उनके घरों में उनके स्वास्थ्य की सुरक्षा के लिये अत्यन्त लाभदायी है। क्योंकि इसके द्वारा मल-मूत्र और गंदा पानी बिना किसी बाधा के हटा दिया जाता है।

गुली ट्रैप (Gully Trap)

पशु शालाओं के लिये गुली ट्रैप का उपयोग किया जाता है। पशुओं के मल-मूत्र आदि किसान के लिये काफी कीमती होते हैं और खेती-बाड़ी संबंधी अधिकांश सफलता एक सीमा तक इनके समुचित उपयोग पर निर्भर करती है। इन दोनों का एक ही नल द्वारा निकास नहीं किया जा सकता। क्योंकि मल द्वारा नलों में शीघ्र ही रुकावट उत्पन्न हो जाती है। मल को घर की मुख्य नाली से समय-समय पर हटाया जाता है। मगर कभी-कभी मल का कुछ भाग मूत्र के साथ या फर्श को धोते समय

पानी के प्रवाह के साथ स्यूवर नाली में भी आ सकता है। इसलिये गुली ट्रैप लगाकर स्यूवर में प्रवाहित होने वाले पशुओं के मल को ट्रैप की जाली या फिर उसमें रखे बर्तन मे इकट्ठा करके समय-समय पर हटा लिया जाता है। सामान्य किस्म के गुली ट्रैप जैसे दुहरी सील वाले गुली ट्रैप (Double Seal Gully Trap) और लिण्टन गुली ट्रैप (Linton's Gully Trap) हैं जो कि चित्र 5 में दर्शाये गये हैं।



चित्र 5. गुली ट्रैप। (i) दुहरी सील ट्रैप और (ii) लिण्टन गुली ट्रैप।

स्यूवर नालियों की जांच

स्यूवर नलो द्वारा भूमि और पीने के पानी के स्रोतों को प्रदूषित होने से बचाने के लिये उसके निर्माण होने के तुरन्त बाद उसकी कार्य-कुशलता या फिर समय-समय पर उसमें से होते रहने वाले रिसाव के लिये जांच करते रहना चाहिये। कभी-कभी पानी में बाढ आने या स्यूवर के पानी का पीने के पानी के स्रोतो मे मिलने से पानी में रोगों के जीवाणु आ जाते हैं और इस कारण बहुत से रोग तेजी से फैलते हैं। ऐसे पानी से फैलने वाले रोगो से बचने के लिये नालियों की जांच नीचे दी गयी विधियो द्वारा की जाती है :—

1 जल-शक्ति द्वारा जांच

यह विधि बहुत संतोषजनक है। नाली के आखिरी छोर पर रबर के थैले को बांध दिया जाता है और नालियो के बाकी सभी छोरो को डाट लगा कर बन्द कर देते हैं। परीक्षण स्थल के पास लगी नाली को भूमि से 8' ऊंचाई तक ले जाते हैं और उसमें 6' तक पानी भरते है। इस पर निशान लगा कर 2 से 3 घंटे के लिये छोड़ दिया जाता है। इसमे पानी भरते समय यह ख्याल रखा जाता है कि नल मे कही भी हवा रुकी हुई न रह जाये। पानी के दबाव से रबर का थैला फूल जाता है और कही भी रिसाव न हो तो पानी के स्तर मे कुछ भी कमी नही आती है।

2 हवा और धुएं द्वारा जांच

नालियो और वेन्टीलेटर के खुले हुए सभी नलों को डाट लगा कर बन्द करके उसमें निश्चित दाब तक की हवा भरते हैं जिसे दाबमापक की सहायता से मापा

जाता है। अगर दावमापक मे दाव स्थिर न रह कर गिरने लगे तो यह स्यूवर नल में रिसाव का होना दरसाता है। नल में रिसाव को धुए की विधि द्वारा भी जांचा जाता है। इसके लिये नल में गहरे सफेद धुएं को भरा जाता है। नल को डाट द्वारा बन्द करके उस पर दवाव डाला जाता है। नालियों और ट्रैप सील की जांच के लिये ½ औंस प्रति वर्ग इंच वायु दवाव उत्पन्न करने वाले पम्प की सहायता ली जाती है। यदि नालियों में कही भी रिसाव हो तो वहा से धुआ निकलने लगेगा और इस प्रकार नल के उस स्थान को ठीक करके भूमि और पानी को प्रदूषित होने से बचाया जा सकता है।

3. रंगीन पानी द्वारा जांच

इस विधि द्वारा गदे पानी की नालियो मे पैदा होने वाली त्रुटि और पानी को प्रदूषित करने वाले स्रोत आदि का पता बड़ी ही निपुणता से लगाया जाता है। पानी में फ्लोरेसिन (Fluorescein) पदार्थ मिलाकर नालियों मे भरा जाता है। इस पदार्थ को पानी में मिलाने पर उसका रंग हरा चमकीला हो जाता है। नालियो के रिसाव के कारण वहां यह हरा चमकीला रंग आसानी से नजर आ जाता है और इस तरह नाली में उत्पन्न हुई खराबी को शीघ्र ही ठीक किया जा सकता है।

4. रसायनों द्वारा जांच

एक बाल्टी में पानी लेकर उसमें पिपरमिन्ट का तेल मिलाते हैं। इस तैयार किये गये घोल को मुख्य नाली मे डालते हैं। अगर किसी जगह नल मे छेद होगा तो पानी वहां से रिस कर बाहर निकलेगा और उस स्थान पर पिपरमिन्ट की गन्ध आने लगेगी।

गन्दे पानी के नल में फास्फोरस और हींग एक साथ डालते हैं। इनके मिलने पर विस्फोट होता है और नल मे सफेद धुआं पैदा होता है। जिसमे हींग की तीव्र गंध होती है। इस धुएं को नल मे प्रवाहित होने दिया जाता है और नल मे कही भी छेद आदि होने पर उस स्थान से धुआ बाहर निकलने लगेगा और वहा हींग की गंध आने लगेगी।

भूमि पर पानी और मैले की निकास-प्रणाली

इस विधि को अपनाने में खर्च कम आता है। ज्यादातर इसे गांवो में अपनाया जाता है, क्योंकि वहा पर भूमिगत स्यूवर का इन्तजाम नही होता है। लेकिन यह ख्याल रहे कि भूमि के ऊपर बनायी गयी मोरियां पानी के स्रोतों से दूर होनी चाहिए। अक्सर यह विधि उस जगह अपनायी जाती है जहां पर पानी कम उपलब्ध हो और मैले की मात्रा ज्यादा हो। इस प्रणाली मे कोई खास सामान की जरूरत नही रहती है लेकिन इसमे मोरिया खुली रहती हैं इसलिये इस विधि को स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माना जाता है। भूमि पर नालियों में बहने वाला पानी जमीन द्वारा सोख लिया जाता है और इसके कारण हवा, भूमि और भूमिगत पानी का संदूषण

होता रहता है। नालियां हमेशा पक्की ही बनाई जानी चाहिये जिससे कि पानी का रिसाव न होने पावे। मोरी की चौडाई भी जरूरत के मुताबिक पूरी होनी चाहिये जिससे गन्दा पानी बिना रुकावट बहता रहे और भूमि का संदूषण नही होने पावे।

हर घर से निकलने वाले गन्दे पानी को मोटे पदार्थों की परत बिछाकर छाना जाता है। अगर कही पर मोरियां नही हो तो स्यूलेज (Sullage) को खाई में भर कर साफ किया जाता है। इसके लिये एक ठीक आकार की खाई बनायी जाती है और उसके पैदे को पत्थरो के टुकडों से भरा जाता है तथा उसके ऊपर रेत रखी जाती है। इस खाई मे सबसे ऊपर 6" तक महीन रेत भरी जाती है। सबसे ऊपर डाली गयी रेत को जमाये रखने के लिये उस पर पत्थर के टुकड़े जमाते हैं या फिर उस पर एक छिद्रयुक्त धातु का ढक्कन रख देते हैं। खाई की गहराई 18" से ज्यादा नही रखनी चाहिये और अगर जरूरत हो तो उसकी चौड़ाई बढ़ाई जा सकती है। स्यूलेज के पानी को साफ करने के लिये उसे मोरी द्वारा खाई पर लाया जाता है। खाई से साफ होकर निकलने वाले पानी को खेती बाड़ी के काम मे लिया जा सकता है।

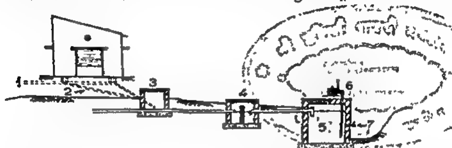
पशुशालाओं के लिये भूमि और भूमिगत मोरियां

पशुओ का मल बहुत कीमती होता है इसलिये उसे नालियो मे नही बहाया जाना चाहिये और उसे खुली नालियों मे समय-समय पर इकट्ठा कर लिया जाना चाहिये। नालियो में प्रवाहित होने वाला मूत्र ओर फर्श आदि के धोने से प्राप्त होने वाले गन्दे पानी को भूमिगत नालियो द्वारा बहने दिया जाता है। अगर भूमिगत नालियों मे बहने वाले इस गन्दे पानी का तनुकरण नही किया जाय तो ऐसी नालियों की कुछ भी उपयोगिता नही रहती है। इसलिये अगर पानी की मात्रा कम हो तो भूमि पर ही नालिया बनाकर गन्दे पानी की निकासी की जानी ठीक रहती है। स्वास्थ्यवर्धक बातो को ध्यान मे रखते हुए यह सोचा गया है कि अगर मोरियां ज्यादा खुली रखी जायेगी तो वहा उत्पन्न होने वाली गैसों का तनुकरण होता रहेगा और ऐसे पशुशालाओ मे रहने वाले पशुओ को बहुत आराम मिलेगा।

दूध देने वाली गायो के घरो का फर्श दुर्भेद्य होना चाहिये। इसमें फर्श के प्रति 60" लम्बाई पर 1" का ढाल होना चाहिये। पशु के खडे होने के पीछे की तरफ 3' चौडी नाली बनानी होती है जिससे इसमे पशु का मल और मूत्र बिना किसी रुकावट के सम्भाला जा सके। यह नाली पशु के पिछले हिस्से की तरफ करीब 7" गहरी और रास्ते (Passage) की तरफ 2 या $2\frac{1}{2}$" गहरी होनी चाहिये। ऐसी नाली शुद्ध दूध उत्पादन के लिये काफी लाभदायक होती है और पशु बिना किसी रुकावट के आराम से आ-जा सकते हैं। नाली की चौडाई 18" भी की जा सकती है मगर इसके कारण नाली से मल और मूत्र के छींटे आस-पास फैलते रहते हैं।

नाली की ज्यादा से ज्यादा लम्बाई 70' तक रख सकते हैं, फिर वहां पर इसमे दूसरी तरफ के नाली भी लाकर मिलाई जा सकती है। इस नाली को पशुशाला के बाहर तक निकाल कर बाहर लगे गुली ट्रैप के साथ जोड़ दिया जाता है।

घुड़शालाओं के लिये नाली 8" चौड़ी व 6 से 7" गहरी बनायी जाती है। इस नाली द्वारा केवल मूत्र और पानी को ही प्रवाहित होने दिया जाता है। दौड़ के लिये रखे गये घोडों के लिये ये नालिया भूमिगत होनी चाहिये। सूअर के बाडों के लिये बनने वाली नालियां 4 से 5" चौड़ी और 6" गहरी होनी चाहिये। गायो के लिये दोहरी गुली ट्रैप (चित्र 6) प्रणाली अपनायी जाने से पशुओ के मूत्र और उनके घर



चित्र 6. पशुघर से मूत्र ले जाने के लिये दोहरी गुली ट्रैप प्रणाली। (1) पशुघर के फर्श धुलाई वाले पानी को ले जाने वाली नाली (2) पशुघर से मूत्र ले जाने वाली नाली (3) निरीक्षण कक्ष (4) तलछट कक्ष (5) मूत्र संग्रह कुड (6)पम्प और (7) नल।

व नाली के धोने पर वहा से निकलने वाला पानी अलग-अलग ट्रैप द्वारा इकट्ठा करके आगे ले जाया जा सकता है। पशु-घर से बाहर लगाया गया पहला ट्रैप नाली से आने वाले मूत्र को इकट्ठा करता है, जबकि दूसरा ट्रैप कुछ दूरी पर लगा रहता है और फर्श व नाली को धोने पर आने वाला गन्दा पानी इस ट्रैप के द्वारा आगे स्यूवर नलो मे आता है। मूत्र निरीक्षण कक्ष से आगे बढ कर तलछट कक्ष मे रुकता है। इस कक्ष के बीच मे छिद्रयुक्त प्लेट लगी रहती है जिससे कचरा आदि दूसरे भाग मे जाने से रोक दिया जाता है। यह कक्ष सीमेंट व कंक्रीट से बनाया जाता है। मूत्र इस कुण्ड से छन कर आगे संग्रह कुण्ड मे जाकर एकत्रित होता रहता है। सग्रह कुंड से निकलने वाला नल इस कक्ष मे नीचे की ओर झुका रहता है और एक अच्छी सील बनाता है, जिससे कि आगे के कुण्ड से गैसें इसमे न आने पाएं। ऐसा होने से अमोनिया गैस तरल अमोनिया मे परिवर्तित हो जाती है। इन दोनों कक्षो के ढक्कन हवा रोधक होने चाहिये। एक गाय के मूत्र को इकट्ठा करने के लिये 3 घन फुट का कक्ष बनाया जाता है और यह हर मौसम के लिये उपयुक्त रहता है। इस कुण्ड को सप्ताह में एक बार खाली किया जाता है। इस विधि द्वारा मूत्र से होने वाले प्रदूषण पर नियन्त्रण किया जा सकता है। भारत मे गौ पशु की संख्या बहुत है और अगर

राका मूत्र सही वैज्ञानिक तरीके से इकट्ठा करके रखें तो पशुओं और मनुष्यों में नसे फैलने वाले रोगों को नियंत्रित करने में बहुत सहायता मिलेगी। इसलिए वास्थ्य के लिये और खाद बनाने की दृष्टि से इसका निस्तारण किसी सोक पिट, ाई, खड्डे, जमीन पर बहाकर, तालाबों या नदियों में मिलाकर कतई स्वीकारा ही जा सकता है। इसका निस्तारण ठीक ढंग से नही किया जाये तो इसके द्वारा बिमारियां फैलने का अंदेशा बना रहता है। इसलिए सभी फार्म पर पशुओं के मूत्र ो ठीक ढग से इकट्ठा करके काम में लिया जाना चाहिये। मूत्र को इकट्ठा करके खने पर, इसे जरूरत हो तब काम में लिया जा सकता है और साथ ही इसकी ेतो में फसल के वास्ते उपयोगिता भी बढती है।

यूऐज का निस्तारण

मनुष्यों, पशुघरों और कारखानों से निकलने वाले निरर्थक पदार्थों को स्यूऐज हते हैं। अगर स्यूऐज का निस्तारण ठीक ढग से नही किया जाये तो इससे भूमि ौर पानी के स्रोतो का सदूषण हो सकता है। स्यूऐज द्वारा लाये गये सूक्ष्म जीवाणुओं ौर विषैले पदार्थों से मनुष्यो, पशुओं और पौधों को काफी हानि होती है। इसका ठीक से निस्तारण नही करने से खाद्य पदार्थों, दूध से बने पदार्थों और मांस ादि का भी सदूषण होता है। स्यूऐज का खुले में निस्तारण करना बहुत ही नुकसान-ेह विधि है। स्यूऐज की किस्म के बारे मे ठीक से जानकारी रखनी चाहिये जिससे इसका निस्तारण सही तरीके से हो सके तथा भोजन, पानी और हवा को दूषित होने से बचाया जा सके। घुले हुए लवण पदार्थों का मिश्रण और मिट्टी, कंकड़ तथा खनिज पदार्थों की कुछ मात्रा के साथ कचरे के रूप में तैरती एवं घुली अवस्था में ाइट्रोजन तथा कार्बनयुक्त कार्बोनिक पदार्थों का गन्दे पानी में होना स्यूऐज कहलाता है।

स्यूऐज, मनुष्यों व पशुओं के मल-मूत्र, रसोई व स्नानघर व वर्षा के पानी, सड़क से आये पानी और कारखानों से निकलने वाले पदार्थों के मिश्रण से बनता है। स्यूऐज की दो किस्मे होती हैं :

(अ) घरेलू स्यूऐज
(ब) कारखानो का स्यूऐज

(अ) घरेलू स्यूऐज

घरेलू स्यूऐज मनुष्यो व पशुओं के मल-मूत्र, रसोईघर व स्नानघर के पानी आदि के मिश्रण से बनता है। घरेलू स्यूऐज ज्यादा नुकसानदेह नही होता, क्योंकि घर से निकलने से पूर्व ही इसका तनुकरण हो जाता है और साथ ही निस्तारण से पहले अक्सर इसका उपचार भी कर दिया जाता है। मनुष्यों के लिये स्यूऐज प्रणाली को सुचारु रूप से चलाने के लिये प्रतिदिन प्रति व्यक्ति के हिसाब से

गैलन पानी नालियों से प्रवाहित करते रहने की सिफारिश की गयी है । स्यूऐज को समुद्र, नदी या किसी अन्य स्रोत मे छोड़ने से पूर्व उसे उपचारित करके साफ करना जरूरी होता है। स्यूऐज को अगर 20° सी तापमान पर पाच दिनों के लिए रखें तो उसमें रहने वाले बीमारी के सूक्ष्म जीवाणु प्रायः मर जाते हैं। मल के ठोस पदार्थ हल्के होकर पानी मे तैरने लगते है और साथ ही उनमें आक्सीजन की एकदम कमी हो जाती है।

स्यूऐज का निस्तारण दो विधियों द्वारा किया जाता है।

(I) मल संचय विधि (Conservatory method)

जहां जनसंख्या कम हो वहां इस विधि का उपयोग किया जाता है । इस विधि में ठोस और द्रव पदार्थों को अलग–अलग इकट्ठा किया जाता है। मनुष्यो के मल को एकत्रित करके उसे शहर से दूर ले जाकर जमीन मे गड्ढा खोद कर दबा दिया जाता है। इस विधि से दूध उत्पादन मे साफ-सफाई रहती है और वहा मक्खियो को टाइफौयड और दूसरे जीवाणुओं को दूध तक ले जाने का मौका नही मिल पाता है। मल का ठीक तरीके से निस्तारण करने के लिये उसे इकट्ठा करने के पश्चात् लकड़ी के बुरादे, राख या रेत से ढक कर ले जाया जाता है। इस तरह ले जाने से मल पर मक्खियां भी नही भिनभिनाती और न ही दुर्गन्ध फैलती है। निस्तारण के बाद जीवाणुओं और कीड़ों को मारने के लिये इसमें कुछ भी रासायनिक पदार्थ नही मिलाते हैं, क्योंकि इसमे पैदा होने वाली सड़ान्ध से ये दोनों प्रकार के जीव खुद ही समाप्त हो जाते हैं। घर से निकलने वाले द्रव पदार्थों को कुंड या खाई में इकट्ठा कर लिया जाता है। यह जगह पानी के स्रोतों और रहने के घरो से कुछ दूरी पर होनी जरूरी है। ये कुंड पक्के या कच्चे भी बनाये जा सकते हैं, मगर पक्के कुंड हमेशा ठीक रहते हैं, क्योंकि उनमें सीमेंट का प्लास्टर होने से गन्दे पानी के रिसाव द्वारा भूमि के संदूषण का डर नही रहता।

इस कुंड को सप्ताह मे दो बार खाली किया जा सकता है और यह बेकार जाने वाला पानी बगीचों के उपयोग मे लाया जा सकता है ।

(II) पानी द्वारा ले जाने वाली प्रणाली

इस प्रणाली द्वारा घर से निकलने वाला स्यूऐज सार्वजनिक स्यूवर के नलो द्वारा स्यूऐज साफ करने के संयत्र तक ले जाया जाता है। गन्दे पानी का सयत्र मे उपचार किये जाने के बाद वह हानिकर नही होता और उसे किसी भी भूमि पर सिंचाई के लिये काम में लिया जा सकता है या नदी अथवा समुद्र मे भी बिना किसी नुकसान के विसर्जित किया जा सकता है। पानी साफ करने की यह प्रणाली काफी खर्चीली रहती है, लेकिन साथ ही यह विधि स्यूऐज निस्तारण के लिये बहुत ही स्वास्थ्यकर है। स्यूऐज को साफ करने के पश्चात् निम्न तरीको द्वारा उसका

निस्तारण किया जा सकता है–

(1) तनु करके निस्तारण करना
(2) भूमि पर निस्तारण करना
(3) स्यूऐज का उपचार और निस्तारण करना

(1) तनु करके निस्तारण करना

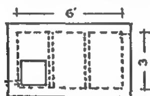
भारत मे तनुकरण विधि द्वारा कलकत्ता, मद्रास और बम्बई जैसे शहरों में उत्पादित स्यूऐज को वहां के समुद्र मे निस्तारित किया जाता है। कई नदियों मे भी स्यूऐज का पानी छोड़ दिया जाता है। स्यूऐज को या तो वैसे ही या फिर उसमे होने वाले बड़े और ठोस पदार्थों को अलग करके निस्तारित करते हैं।

स्यूऐज के पानी को कभी भी नहाने के पानी के स्थान पर या जहां मछलियां हो वहा नही छोडा जाना चाहिये। स्यूऐज में कुछ रोग पैदा करने वाले जीवाणु हो सकते हैं, जो मनुष्यो, जानवरो और मछलियों के लिए नुकसानदेह होते हैं तथा इसमे पाये जाने वाले विषैले पदार्थों से चमड़ी के रोग भी हो सकते हैं। इन खतरो से बचने के लिए स्यूऐज को नलों द्वारा समुद्र मे किनारे से काफी दूर तक ले जाकर छोडना चाहिये। जिन नदियों मे पानी का बहाव काफी तेज हो वहां पर भी स्यूऐज को ट्रीट करके ही छोड़ा जाना चाहिये और जितना स्यूऐज का पानी छोड़ा जाय उससे 500 गुणा तेज बहाव उस नदी मे होना चाहिये।

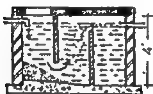
आज के युग में नदियों क पास शहर और गांवो की आबादी तेजी के साथ बढ रही है और वहा कारखानो का भी तेजी से विकास होता जा रहा है। इसके कारण काफी तादाद मे स्यूऐज का पानी बिना उपचार ही नदियो मे प्रवाहित किया जा रहा है, जिससे शहरों और गांवो में रहने वाले पशुओं और मनुष्यो के जीवन को ऐसे पानी के प्रदूषण से बहुत बड़ा खतरा पैदा हो गया है। इसके कारण भारी तादाद में मनुष्यो, जानवरो और मछलियों में बीमारियां और मृत्यु तक हो सकती है। इसलिये जो शहर और गांव नदी के किनारे पर बसे है उनमे स्यूऐज उपचार के सयत्र लगाने चाहिये तथा कई तरह के सेप्टिक कुड बनवाने चाहिये जिससे स्यूऐज को उपचारित करके उसका निस्तारण ठीक ढग से किया जा सके। सेप्टिक कुड का काम सुचारू ढग से चले इसके लिए उसकी कार्यप्रणाली पर सावधानीपूर्वक नजर रखनी जरूरी है। ताकि नदियो और अन्य स्रोतों के पानी को प्रदूषित होने से बचाया जा सकेगा।

स्यूऐज का उपचार उसे धीरे-धीरे सेप्टिक कुंड (चित्र 7) द्वारा पूर्णतया निकास करवाकर किया जाता है और इस विधि में मल के ठोस पदार्थ द्रव रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। इसके कारण कार्बनिक पदार्थ जो कुण्ड के पैंदे मे इकट्ठे होते है, घुलनशील अवस्था मे परिवर्तित हो जाते हैं और थोड़ा या बिल्कुल भी ठोस पदार्थ सेप्टिक कुंड के पैंदे मे नही बचता है। स्यूऐज को एक बंद कुड (हवा और

प्रकाश रहित) से होकर प्रवाहित कराया जाता है और इसके लिए कम से कम 24 घंटे का समय दिया जाता है। इस तरह के कुंड को सेप्टिक कुंड कहते हैं। स्यूऐज, सेप्टिक कुंड से, उसमें ऊपर लगे नल द्वारा बहकर बाहर निकलता रहता है और नीचे पड़े हुए मैले में कोई बाधा उत्पन्न नही होती है। मैले को सेप्टिक कुंड से कभी-कभी हटाया जाता है। कुंड में 20 से 40 प्रतिशत कार्बनिक पदार्थों मे कमी पड जाती है और मीथेन गैस भी बनती है। इस तरह के सेप्टिक कुंड हरेक मकान या छोटे समुदाय या पशुशालाओ के लिए बहुत उपयुक्त रहते हैं। सेप्टिक कुंड मे स्यूऐज दो चरणों मे साफ होता है। पहले चरण मे सूक्ष्म जीवाणुओ द्वारा कुंड मे रहने वाले कार्बनिक पदार्थों का अनॉक्सीय पाचन होता है और इस तरह आक्सीडेसन के कारण रोग पैदा कर सकने वाले जीवाणुओं की मृत्यु हो जाती है। दूसरे चरण में इस गंदे पानी के साफ होने की क्रिया कुंड के बाहर एरोबिक आक्सीडेसन द्वारा हुआ करती है,



चित्र 7. सेप्टिक कुंड।



इसमें भूमि की सतह के कुछ ही नीचे या परकोलेटिंग फिल्टर में आक्सीजनीय जीवाणुओं द्वारा पानी साफ होता रहता है। इस तरह से साफ किया गया पानी किसी भी बहते हुए पानी मे बिना किसी हानि के छोड़ा जा सकता है या उसका निस्तारण किसी भी भूमि पर सिचाई द्वारा भी किया जा सकता है। भूमि में रहने वाले जीवाणु कार्बनिक पदार्थों को नाइट्रेट, कार्बन डाइआक्साइड और पानी में परिवर्तित करते रहते हैं। सेप्टिक कुंड में इकट्ठा होते रहने वाले मैले को हर दो वर्षों के बाद एक बार हटाया जाता है।

(2) भूमि पर निस्तारण करना

यह कुंड से निकलकर आने वाले पानी के उपचार की एक अच्छी विधि है, जिससे हल्की, संरन्ध्र मृदा सर्वोत्तम होती है, जिसके नीचे कंकड़ और रेत की परत होती है। इसके लिए अपनायी जाने वाली विधियां निम्न हैं–

(ए) विस्तीर्ण-सिंचाई (Broad irrigation)

इस विधि में स्यूऐज को किसी ऊंची ढलान वाली जगह से बहाया जाता है। इस प्रकार बहने से स्यूऐज जमीन द्वारा सोख लिया जाता है। इस तरह के क्षेत्र पानी के स्रोतों से दूर होने चाहिएँ। गन्दे पानी में रह जाने वाले मल के कुछ पदार्थ भूमि पर ही रोक लिये जाते है और उनका भूमि के जीवाणुओं द्वारा विघटन होता रहता है।

(बी) भूमिगत सिंचाई (Sub-soil irrigation)

पानी को जल्दी सोख सकने वाली समतल भूमि इस विधि के लिये अति-उपयुक्त रहती है। गदा पानी निकलने के लिये नलो पर खुले हुए भाग बनाये जाते है और उनसे निकल कर पानी भूमि पर फैलकर उसमे रिसता रहता है। ऐसी भूमि का उपयोग खेती के लिये भी किया जा सकता है।

(सी) भूमि द्वारा निथरना

स्यूऐज के पानी को नलों से प्रवाहित करवा कर उपयुक्त बनी हुई नालियो मे इकट्ठा कराया जाता है। इसके लिये भूमि समतल या ढलुआ होनी चाहिये। स्यूऐज निथरकर भूमि मे 3" से 6" गहराई तक पहुंचना चाहिये। निथरने के दौरान भूमि में स्यूऐज का आक्सीडेसन होता है। इस तरह की भूमि पर फसल उगाई जा सकती है। मेडों पर पौधे उगाये जा सकते है। ऐसी भूमि पर कुछ समय के अंतराल पर पानी छोडा जाता है ताकि भूमि के निथारने की शक्ति पर विपरीत प्रभाव न होने पाये।

स्यूऐज द्वारा भूमि का अनुपयोगी होना (Sewage sickness of land)

लगातार स्यूऐज के पानी को भूमि पर छोडते रहने के कारण उसकी पानी छनने की शक्ति मे रुकावट उत्पन्न हो जाती है इसलिये उस पर कुछ समय तक पानी नही छोडा जाता। ऐसी भूमि का चूने की विधि द्वारा उपचार किया जा सकता है। भूमि मे पाये जाने वाले कई किस्मो के जीवाणुओ द्वारा स्यूऐज का पानी साफ होता रहता है जिनमे मुख्यतः हवा मे और अनॉक्सीय स्थिति मे रह सकने वाले और नाइट्रिफाइंग जीवाणु सम्मिलित हैं। स्यूऐज पानी के साथ जो भी व्यक्ति काम करे उसे कुछ सावधानिया जरूर बरतनी चाहिये, जैसे काम करते समय हाथ और पाव पर तेल लगाना। ऐसे व्यक्तियो को विटामिन की गोलिया भी लेते रहना चाहिये ताकि उनके शरीर की शक्ति बनी रहे।

(3) स्यूऐज का उपचार और निस्तारण (Sewage treatment and Disposal)

स्यूऐज उपचार का उद्देश्य यह रहता है कि इसमे पाये जाने वाले ठोस और निलम्बित पदार्थो को और मुख्यत- रोग पैदा करने वाले जीवाणुओं को इससे अलग करे जिससे यह हानिरहित हो जाये और इसका निस्तारण भूमि पर, नदी या समुद्र मे बिना रुकावट के किया जा सके।

(ए) प्राथमिक उपचार (Preliminary treatment)

(i) बजरी कुंड द्वारा उपचार (Grit tank treatment)

इस विधि के लिये दो या तीन कुंड बनाये जाते है और इनका आकार आवश्यकता के अनुसार बनाया जाता है। एक समय मे दो कुंड एक साथ काम में लिये जाते हैं और तीसरा कुंड वैसे ही रहने दिया जाता है। तीसरे कुंड का उपयोग तब करते हैं जब कि पहले दो मे से एक कुंड की सफाई चालू की जाती है। इस कुंड के उपयोग द्वारा कांच, पत्थर, बजरी और ईंट के टुकड़े जैसे अकार्बनिक पदार्थों को हटाया जाता है। इस कुंड में नालियो द्वारा स्यूऐज का पानी आकर गिरता है और भारी कचरों द्वारा कुंड भरता रहता है और पानी कुंड के ऊपर से बहता हुआ उपचार हेतु आगे बने कुंड में पहुंचता है।

(ii) छानना (Screening)

इस कक्ष द्वारा गंदे पानी मे तैर कर आने वाले पदार्थों को हटाया जाता है जो मुख्यतया मल के ठोस पदार्थ, कपड़े, कागज और लकडी व पोलीथीन के टुकड़े आदि के रूप मे होते हैं। इस प्रक्रिया के दौरान इन्हे मोटी व महीन छलनी से छाना जाता है। छलनी लोहे की प्लेट पर 1 से 2" दूरी पर सलाखें लगा कर बनायी जाती है। इसके द्वारा कुल 10 प्रतिशत ठोस पदार्थ हटाया जा सकता है। इसके आगे दूसरी छोटे छिद्रों वाली छलनी लगी रहती है जिसमे 0.1 से 0 2" आकार के छिद्र होते हैं। इन पर इकट्ठे होने वाले पदार्थों को समय-समय पर हटाया जाता रहता है और छलनी के सुराखों को खुरच कर या बड़े ब्रुश से अथवा तेज फव्वारे की धार द्वारा साफ किया जाता है।

छलनी के कक्ष से निकलने वाले पानी को तंग रास्ते से गुजारा जाता है जिससे स्यूऐज के पानी का वेग बढ़ता है और इसके कारण कार्बनिक पदार्थों के कुंड के तल में बैठने में कमी होती रहती है। इस कक्ष से इकट्ठे किये गये पदार्थों को जमीन में गाड़ दिया जाता है या फिर उन्हें जला देते हैं।

(iii) तलछट या रसायनों द्वारा अवक्षेपण के लिये कुण्ड (Sedimentation or Chemical precipitation tank)

ये कुंड 7 से 8' लम्बे होते हैं तथा सीमेंट व कंकरीट को मिलाकर बनाये जाते हैं और इनके पैंदे मे ढार दिया जाता है। इसमें स्यूऐज के तापमान और गति को जरूरत के मुताबिक बनाये रखा जाता है। हल्के व भारी कण पैंदे में बैठते हैं और उनको समय-समय पर हटाते रहते है। स्यूऐज इस कुंड से आगे के कुंड में जाने के लिये कुंड के ऊपर से बहकर निकलता रहता है। इस विधि द्वारा स्यूऐज से 60 प्रतिशत कण वाले पदार्थ बिना किसी बाधा के हटाये जाते हैं।

इस कुंड से स्यूऐज में पाये जाने वाले कणों को रसायनों द्वारा अवक्षेपण करा कर भी हटाया जाता है। अवक्षेपण के लिये पानी मे चूना और फेरस सल्फेट, फिटकरी व खड़िया या एल्यूमिनियम सल्फेट आदि में से कोई भी एक रसायन काम में लिया जाता है। पानी के तापमान और गति को नियंत्रित रखा जाता है। इस विधि द्वारा स्यूऐज से 80 प्रतिशत ठोस कणों वाले पदार्थों और 40 प्रतिशत जीवाणुओं को हटाया जा सकता है।

इस कुण्ड से प्राप्त स्लज को या तो समुद्र मे फेंक दिया जाता है या फिर खेतो मे पौधों के लिये खाद के रूप मे काम में लेते है, क्योंकि यह फलों और सब्जी के बगीचों के लिए बहुत उपयुक्त रहता है।

स्लज को कुओं मे इकट्ठी करके इससे मीथेन गैस भी प्राप्त की जाती है और उसके पश्चात् इसी स्लज से कारखानों में कृत्रिम खाद बनाई जाती है।

(बी) आक्सीजनीय जैविक उपचार (Aerobic biological treatment)

(i) परकोलेटिंग, ट्रिकलिंग फिल्टर (Percolating, Trickling Filters)

ट्रिकलिंग फिल्टर बनाने के लिये सीमेंट व कंकरीट के बने खुले कुण्ड काम मे लिये जाते है। कुण्ड को ईंट या पत्थर के टुकड़ो से 2 या 3' ऊंचाई तक भरते हैं और फिर उसमें से स्यूऐज को गुजारा जाता है। कुछ समय पश्चात् टूटे हुए पत्थरो पर जिलेटिन की परत बन जाती है जो आक्सीजन की उपस्थिति में हवा में जिन्दा रह सकने वाले जीवाणुओ को स्थान (Nidus) प्रदान करती है। इस दशा मे यह परिपक्व (Ripened) कहलाती है। फिल्टररेशन के बाद पैंदे से साफ-द्रव साईफन की विधि द्वारा हटाया जाता है।

(ii) सम्पर्क परतें (Contact beds)

यह परकोलेटिंग फिल्टर जैसा ही होता है। फिल्टर मे नाइडस बनते है और उन पर जीवाणु रहते हैं। जब भी कार्बनिक पदार्थ इसके सम्पर्क मे आते हैं तब जीवाणु इसका उपयोग करते हैं। इस विधि मे स्यूऐज का पानी कुण्ड मे 8 या 9 घण्टे के लिये भर कर ठहरने देते हैं और स्यूऐज को 4 या 5' ऊंचाई तक भरा जाता है। कुंड को उचित समय पश्चात् खाली करके 3 घंटे का विश्राम दिया जाता है जिससे फिल्टर में पत्थर पर बने नाइडस में रहने वाले जीवाणुओ को आक्सीजन प्राप्त हो सके। इस विधि द्वारा स्यूऐज से ठोस पदार्थ पूर्णतया नही हटाये जा सकते।

(iii) ह्यूमस कुंड (Humus tanks)

इस कुंड द्वारा परकोलेटिंग या सम्पर्क परत से निकलने वाले स्यूऐज के पानी में रह जाने वाले कार्बनिक पदार्थों को हटाया जाता है। फिल्टर हुए पानी को कुछ घंटों के लिये रोक कर रखा जाता है जिससे उसमे रहने वाले कार्बनिक पदार्थ नियर

कर पैंदे में बैठ जाते हैं और फिर ऐसे पानी को बिना किसी हानि के नदियों या भूमि पर छोड़ दिया जाता है।

(iv) सक्रियकृत स्लज या हवा देने की विधि (Activated Sludge or Bioaeration)

इस विधि में 30 प्रतिशत पुराने और 70 प्रतिशत ताजे स्यूऐज को हवा वाले कुंड मे मिलाया जाता है। इन्हे लगातार हिलाते रहते हैं ताकि पैंदे मे कुछ भी पदार्थ नहीं जम सकें। इस कारण स्यूऐज के पुराने जीवाणुओ को कार्बनिक पदार्थों के सम्पर्क में आने का पूरा मौका मिलता है। इस प्रकार इनको 8 घटों तक लगातार सम्पर्क में रखा जाता है। इससे उनकी बी.ओ.डी में कमी आती है। जीवाणु ठीक ढग से कार्य करें इसके लिये उस पानी में छिद्रयुक्त नलों द्वारा आक्सीजन गैस छोडी जाती है। इस विधि द्वारा स्यूऐज मे कणों के रूप मे पाये जाने वाले पदार्थ और बी.ओ.डी. में 90 प्रतिशत कमी आ जाती है। रोग पैदा कर सकने वाले जीवाणुओं की सख्या में 98 प्रतिशत कमी हो जाती है। पानी के सभी जीवाणुओं को समाप्त करने के लिये सुपर क्लोरीनेसन की विधि अपनाई जाती है। स्लज इकट्ठा करने के पहले और आखिरी (Presettlement and final settlement) कुड के बीच मे हवा (Aeration tank) का एक कुंड भी बनाया जाता है।

(सी) रसायनो द्वारा स्यूऐज स्टरलाइज कराना (Chemical sterilization of sewage)

स्यूऐज के ट्रीट किये हुए पानी में बीमारी पैदा कर सकने वाले जीवाणुओं के होने की पूरी सम्भावना बनी रहती है। जब पानी से फैलने वाली बीमारियों की तेजी से वृद्धि होने लगे तब स्यूऐज को 10 से 15 पी पी एम के हिसाब से क्लोरीन से ट्रीट करके ही पानी के स्रोतों मे छोड़ा जाना चाहिये।

(ब) कारखानों का स्यूऐज (Industrial sewage)

मांस उद्योग, वधशाला, चर्म उद्योग, डेयरी, तेल शोधक कारखानों, खाद बनाने वाले कारखानों, रसायन उद्योग, कपडा उद्योग और दूसरे कई कारखानों से निकलने वाला स्यूऐज अक्सर स्वास्थ्य से संबंध रखने वाले अधिकारियो का ध्यान आकर्षित करता है। क्योंकि इन उद्योगो से निकलने वाला स्यूऐज अक्सर कोई न कोई बीमारी पैदा करता ही रहता है। ऐसे बिना ट्रीट किये हुए स्यूऐज को भूमि पर छोड़ने से पानी के मुख्य स्रोतो और भूमि का प्रदूषण होता रहता है। इसके कारण मनुष्यो, पशुओं, मछलियो और पानी के और भी कई तरह के जीवों के जीवन को खतरा बना ही रहता है। इसके अतिरिक्त पौधो, जमीन और फसलो को भी यह स्यूऐज का पानी काफी नुकसान पहुंचाता रहता है।

एन्थ्रैक्स जीवाणु स्पोर बना सकता है और यह बहुत वर्षों तक समाप्त नही होता, जिसके कारण यह डेयरी, चर्म उद्योग और हड्डियों के चूर्ण बनाने वाले कारखानों मे काम करने वाले लोगों के लिये भारी दुविधा खड़ी करता रहता है।

ऊन, बाल और चर्म किसी भी व्यक्ति को काम के लिये दें उससे पहले इनका विसंक्रमण (Disinfection) जरूर कर लेना चाहिये। बेकार द्रव्यों का विधिवत उपचार करके विसर्जित करना चाहिये। डेयरी, चर्म उद्योग और दूसरे उद्योगों से निकलने वाले पानी को छानने (Screening) के बाद तलछट (Sedimentation) की विधि द्वारा साफ करना चाहिये। तलछट के लिये पानी में कुछ रसायनों, जैसे चूना या फिटकरी या फेरस सल्फेट का उपयोग किया जा सकता है। पेंदे मे इकट्ठे हुए तलछट को हटा दिया जाता है और पानी कुंड के ऊपर से बह कर निकल जाता है। फिर स्यूऐज को फिल्टर की सतह से गुजरने दिया जाता है। स्लज मे पाये जाने वाले जीवाणुओं को 2 प्रतिशत हाइपोक्लोराइट द्वारा समाप्त किया जाता हैं या स्लज को सड़ने के लिये अलग से कुंड में लिया जाता है जिससे मीथेन गैस प्राप्त की जाती है।

कपड़ा उद्योग से निकलने वाले स्यूऐज का उपचार (Textile effluent treatment) :

पानी के प्रदूषण पर नियंत्रण के लिये कपड़ा रंगाई और छपाई उद्योग से निकलने वाले स्यूऐज को उपचार संयंत्र में, शारीरिक रासायनिक (Physiochemical) क्रियाओं और जीव विद्या सम्बन्धी (Biological) उपचारों द्वारा ट्रीट किया जाता है। ऐसे स्यूऐज मे कार्बनिक प्रदूषक होते हैं और ये कपड़ा उद्योग में विभिन्न कार्यवाही जैसे रंगाई व छपाई आदि के दौरान उत्पन्न होते हैं। यदि यह पानी सीधे ही पानी के मुख्य स्रोतो मे छोड़ दिया जाये तो इससे मुख्य पानी की आक्सीजन मे कमी उत्पन्न हो जाती है और उसमें रहने वाले जीवों की तुरन्त मृत्यु हो जाती है। इससे भूमि मे क्षारीयता उत्पन्न हो जाती है जिससे वह खेती करने के योग्य नही रह पाती है। ट्रीटमेन्ट संयंत्र के द्वारा पानी के प्रदूषण की समस्या का काफी हद तक समाधान होता है और उससे कपडा उद्योग से निकलने वाले स्यूऐज मे से ज्यादातर प्रदूषकों को हटा लिया जाता है। फिर स्यूऐज बिना किसी हानि के विसर्जित किया जा सकता है।

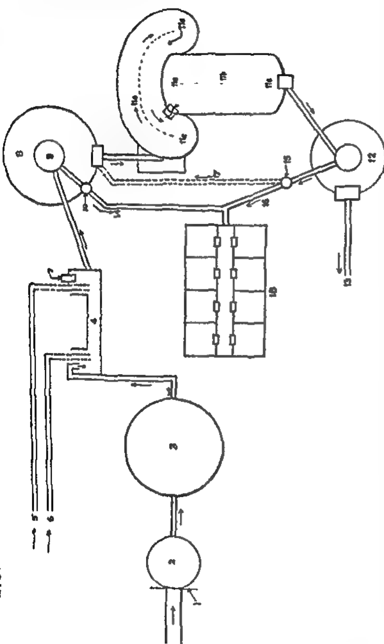
नक्शे का सार (Principles of design)—

इस संयंत्र (चित्र 8) में निम्नलिखित विधिवत खण्ड होते है :—

(i) छानना (Screening)

स्यूऐज को संयत्र के प्रथम खण्ड में ही छान लिया जाता है जिससे कुछ पदार्थ जैसे पत्थर, बजरी, कागज, लकड़ी और पोलीथीन के टुकड़े आदि हटा दिये जाते हैं।

स्यूऐज नालियों द्वारा यहां लाया जाता है। छानने वाले इस खण्ड की सफाई हर रोज दिन में एक बार की जाती है।



चित्र 8 कारखानों से निकलने वाले स्यूऐज के उपचार के लिये संयंत्र। (1) छानना (2) सम्प कुआं (3) समन्वित कुंड (4) वेंच्यूरी फ्लूम् (5) फेरस सल्फेट (6) सल्फ्यूरिक अम्ल (7) पी एच. मीटर (8) क्लारिफायर भाग (9) कचरा एकत्रित होने का स्थान (10) एक ओर खुलने वाला कपाट (11, a और b) वायु वितरण के प्रथम व द्वितीय चरण के कुंड (11,c) वायु वितरण के लिये पंखे (12) द्वितीय क्लारिफायर (13) उपचारित स्यूऐज पानी के निस्तारण का मार्ग (14) रासायनिक स्लज (15) एक ओर खुलने वाला कपाट (16) स्लज (17) जीवाणुयुक्त स्लज को पुनः ले जाने वाला नल और (18) स्लज सुखाने की क्यारियां। →=बहाव के लिये मार्ग दर्शाने वाला चिह्न।

(ii) सम्प कुआं (Sump well)

स्यूऐज, छनने वाले खण्ड से सम्प कुएं में आता है। इस कुएं में से स्यूऐज को तीन पम्पों की सहायता से बाहर प्रवाहित किया जाता है। एक समय में सिर्फ

दो ही पम्प काम में लिये जाते हैं और तीसरे पम्प को जरूरत के समय ही काम में लिया जाता है। हर पम्प 10 अश्वशक्ति क्षमता का होता है। पम्पों द्वारा स्यूऐज समन्वित कुंड (Equalisation tank) में प्रवाहित किया जाता है।

(iii) समन्वित कुंड (Equalisation tank)

विभिन्न उद्योगों से आये स्यूऐज के गुणों में भी फर्क होता है। इसलिये इन उद्योगों के स्यूऐज को इस कुंड में मिलाकर एकसार कर लिया जाता है। इस कुंड में स्यूऐज को 16 घंटों तक रोक कर रखा जाता है और इसे 3 महीनों में एक बार साफ किया जाता है।

(iv) वैन्च्यूरी फ्लूम् (Ventury flume)

समन्वित कुंड से स्यूऐज को पम्प की सहायता से वैन्च्यूरी फ्लूम् में लिया जाता है। वहा उसे एक पतले रास्ते से गुजारा जाता है और उसके एक हिस्से से इसमें सामान्य दर्जे का सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाया जाता है। स्यूऐज को लगातार हिलाकर अम्ल को उसमें अच्छी तरह मिलाया जाता है। अम्ल द्वारा इसका पी.एच. 11.5 से 8.0 तक लाया जाता है। यहां के संकरे रास्ते के दूसरे छोर पर स्यूऐज में लगातार 10 प्रतिशत फेरस सल्फेट मिलाया जाता है। इसे फ्लेस मिक्सर की सहायता से अच्छी तरह मिश्रित किया जाता है। स्यूऐज को यहां से प्राथमिक क्लारिफायर कुंड में लिया जाता है।

(v) प्राथमिक क्लारिफायर (Primary Clarifier)

यह कुंड कुछ निचाई पर स्थित होने के कारण इसमे स्यूऐज वैन्च्यूरी फ्लूम् से खुद-ब-खुद आता रहता है। कणों के रूप में पाया जाने वाला कचरा, रसायनों द्वारा आपस मे जुडता रहता है और ये पदार्थ भारी होकर इस कुंड मे तल पर इकट्ठे होते रहते है। इस विधि द्वारा स्यूऐज के बी. ओ डी. मे और उसमें फैले हुए कणो वाले ठोस पदार्थो में कुछ कमी आती है। इस कुंड मे स्यूऐज को कम से कम 3 घंटो की अवधि के लिये रोक कर रखा जाता है।

इस कुंड मे लोहे का एक पुल क्लारिफायर घेरे के चारो ओर लगातार धीमी गति से घूमता रहता है। इस पुल के साथ पैंदे पर इकट्ठे हुए कचरे को साफ करते रहने के लिये एक औजार जुडा रहता है। क्लारिफायर कुंड मे दो भाग होते है। एक भाग बीचो-बीच बना होता है जिसमे कचरा इकट्ठा होता रहता है और दूसरा भाग इस भाग के बाहर की तरफ गोलाई में होता है जिसे क्लारिफाइंग भाग कहते हैं। पुल के नीचे लगे औजार द्वारा क्लारिफाइंग भाग से कचरा हटाकर बीच वाले (Flocculating Zone) भाग मे पहुंचाया जाता है। प्राथमिक क्लारिफायर मे नीचे एक तरफ खुलने वाले कपाट के द्वारा समय-समय पर इकट्ठे हुए स्लज को हटाया जाता है। उपचारित स्यूऐज इस कुंड के ऊपर से बहता हुआ वायु वितरण कुंड में पहुंचता है।

(vi) वायु मिलाने वाला कुंड (Aeration tank)

वायु वितरण कुंड में स्यूऐज के उपचार की प्रक्रिया दो चरणों में पूरी होती है। इस कुंड के पहले चरण के हिस्से में स्यूऐज प्राथमिक क्लारिफायर कुंड से स्वतः ही बहकर आता रहता है। स्यूऐज यहा हवा के दोनो कुंडों में आक्सीडेसन की प्रक्रिया द्वारा साफ होता है। स्यूऐज मे कार्बनिक पदार्थ, रंग, मोम, कलफ तथा रंगाई और छपाई उद्योग के काम में ली जाने वाली अन्य कई प्रकार की अशुद्धियां होती हैं। ये अशुद्धियां जीवाणुओं द्वारा आक्सीडाइज होती रहती हैं और इस स्यूऐज के पानी को उसकी ऊपरी सतह से ताजी आक्सीजन लगातार मिलती रहती है। स्यूऐज को हवा मिलती रहे इसके लिये 40 अश्वशक्ति क्षमता के पंखे लगाये जाते हैं जिनके चलने से पानी हवा में ऊपर तक उछलता व गिरता रहता है और इस दौरान उसमें आक्सीजन घुलती रहती है। रसायनों द्वारा उपचारित स्यूऐज मे बी ओ डी. और सी.ओ डी. की कमी हो जाती है।

यहां स्यूऐज के पानी मे जीवाणु तथा पानी की कई प्रकार की अशुद्धियां 4,000 मि.ग्रा. प्रति लीटर रहती हैं। रसायनों द्वारा उपचारित स्यूऐज का जीवाणुओं की क्रिया द्वारा आक्सीडेसन होता है, जो कि आक्सीजन (सतह की हवा द्वारा) की उपस्थिति मे अमोनिया, कार्बन डाइआक्साइड और ऊर्जा देते हैं तथा जीवाणुओ की संख्या में भी वृद्धि होती है। वायु वितरण के इन प्रथम और द्वितीय चरण के कुंडो मे स्यूऐज को क्रमशः 7.5 और 6.5 घंटो तक रोके रखा जाता है।

(vii) द्वितीय क्लारिफायर (Secondary Clarifier)

स्यूऐज का पानी पहले और दूसरे चरण के वायु वितरण कुंडों से होकर इस कुंड में आता है। स्यूऐज से जीव संबंधी ठोस पदार्थ क्लारिफायर के पैंदे मे बैठते रहते हैं। इसमें लोहे के घूमते रहने वाले पुल के नीचे रबड़ का फर्श साफ करने का बड़ा टुकड़ा (Scraper) लगा रहता है जिसके घूमते रहने से पैंदे का कचरा क्लारिफायर के बीच वाले हिस्से की तरफ सरक कर इकट्ठा होता रहता है। स्लज को क्लारिफायर के एक तरफ खुलने वाले दरवाजे द्वारा बाहर निकालते रहते हैं। स्यूऐज का उपचारित पानी इस कक्ष के ऊपर से बहकर आता रहता है और उसको ठीक तरह से निस्तारित कर दिया जाता है। द्वितीय क्लारिफायर से निकले स्यूऐज का कुछ भाग पुनः प्राथमिक क्लारिफायर में मिलाकर जीवाणुओं द्वारा आक्सीडेसन की क्रिया में तेजी लाई जाती है।

(viii) स्लज सुखाने की क्यारियां (Sludge drying beds)

स्लज को प्राथमिक व द्वितीय क्लारिफायर से इकट्ठा करके स्लज सुखाने वाली क्यारियों मे लाकर बिछाया जाता है। सूखने के बाद स्लज का भार काफी कम हो जाता है इसलिये इसको आसानी से किसी उपयुक्त स्थान पर ले जाकर निस्तारित किया जा सकता है।

कपड़ा उद्योग के रॉ (Raw) और उपचारित स्यूऐज के पानी के विशिष्ट गुण :–

	रॉ स्यूऐज का पानी	उपचारित स्यूऐज का पानी
1. पी. एच	10–11.5	8.5–9
2. सी. ओ. डी. (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	900–1,500	180–250
3. बी ओ डी. 5 दिनों तक 20° सी. पर (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	400–800	15–25
4. तैरते हुए ठोस कण (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	250–500	50–100
5. क्षारीयता (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	2,000–3,000	–
6. घुले हुए कुल ठोस पदार्थ (मि. ग्रा. प्रति लीटर)	10,000–12,000	10,000–12,000

निष्कर्ष

भारत मे खेती योग्य और बंजर भूमि की बहुतायत है। इसके साथ ही यहां की जनसंख्या भी बहुत है। लोग अपने और कारखानों के लिये बहुत सारा पानी उपयोग मे लाते है जो कि स्यूऐज के रूप में परिवर्तित होकर नालियों मे आता है, लेकिन इसमे से पानी का ज्यादा भाग बेकार ही चला जाता है। भारत मे कई स्थानों पर तापमान 80° एफ. रहता है जिससे स्लज का उपचार ठीक ढंग से होने मे मदद मिलती है और स्यूऐज के निस्तारण मे कोई बाधा नही आती। ऐसी स्थिति मे स्यूऐज निस्तारण के लिये कोई उपयुक्त विधि आसानी से अपनाई जा सकती है। इसके लिये स्यूऐज का प्राथमिक उपचार करने के बाद जीवाणु आक्सीडेसन की क्रिया करते है और खेती के उपयोग में लाने से पहले उसे अच्छी तरह निथरने देते हैं। इससे पानी के प्रदूषण पर नियन्त्रण रखने में सहायता मिलती है और साथ ही किसानों को स्यूऐज का साफ किया हुआ पानी और ऊर्जा के रूप में गैस भी मिलती है जिससे उनकी माली हालत में अच्छा सुधार होता है। भारत के गांवो मे खेती के लिये पानी, खाद और ऊर्जा की काफी कमी रहती है, ऐसे मे स्यूऐज का साफ किया हुआ पानी, स्लज से प्राप्त ऊर्जा और खाद ये सभी बेकार जाने के बदले उसे उपहार में प्राप्त होते हैं।

निम्नांकित पौधे जिन पर लवण और क्षारीयता का असर नही होता और इस कारण उन्हें घर और कारखानों से निकले स्यूऐज के पानी से उगाया जा सकता है :–

1. रूडेन्टी 2. लाना 3. सपारी 4. हरमल 5. लूनि 6. अंग्रेजी बावलिये

7. खारा जाल 8. मीठा जाल 9. लूनियो 10. कंटीली 11. लुनकी 12. सफ़ेद पुनसवा 13. लूनवो 14. मोथा और 15. घोड़ा दूब।

गोबर की खाद तथा उसे ऊर्जा के स्रोत के रूप में सुरक्षित रखना :

भारत में गोबर को अधिकांश मात्रा में जलाया जाता है और खाद के रूप मे उसे बहुत कम मात्रा में लिया जाता है। गोबर का स्वास्थ्यकर और सही तरीके से निस्तारण करके उससे मनुष्यों और पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है और मक्खियों तथा बीमारियों को भी नियंत्रित किया जा सकता है। गोबर, ऊर्जा (गोबर गैस) का बहुत अच्छा स्रोत बनता है तथा इससे उच्च किस्म की खाद की प्राप्ति होने से भूमि की उपजाऊ शक्ति में बढ़ोतरी होती है। मल व मूत्र को पशुघरों से ही अलग-अलग करके उनका सही ढंग से निस्तारण कर देना चाहिये। खाद में कई तरह के हारमोन होते हैं जो पौधों के लिये बढोतरी मे सहायक होते हैं तथा उससे भूमि की उर्वरा शक्ति में भी बढ़ोतरी होती है। इनसे भूमि में जीवाणुओं की संख्या मे बढोतरी होती है और ये नाइट्रोजन पदार्थों को विभक्त करते हैं जिससे पौधों को बहुत फायदा होता है।

पशुओं की विभिन्न जातियों से प्राप्त होने वाले गोबर की औसत मात्रा :—

पशुओं की जातियां	गोबर की मात्रा/प्रतिदिन पौण्ड में
घोड़ा	24
गाय	78
भेड़ व बकरी	2 – 6
सूअर	3 – 6
सौ मुर्गियां	6 – 8

गोबर उठाना व संग्रह करना

(i) **गोबर को उठाना**

पशुघरों से ठोस खाद गाड़े द्वारा दिन में दो बार इकट्ठी की जाती है। गाड़े पर धातु की चद्दर लगी रहनी चाहिये जिससे उसे काम मे लेने के बाद रसायनों द्वारा जीवाणुओ से मुक्त किया जा सके।

खाद को पशुघर के बाहर या किसी गड्ढे में इकट्ठा किया जा सकता है। बड़े फार्म पर इसे सीधे ही ट्रक पर लादा जा सकता हैं। बड़ी डेयरी मे गोबर को मशीनों की सहायता से उठाकर ले आया जाता है। गोबर ले जाने के लिये एक टब का उपयोग किया जाता है जो कि डेयरी में बंधे तार पर पुली की सहायता से चलाया जाता है और इसके द्वारा खाद संग्रह के लिये गड्ढे तक ले जाई जाती है इस विधि को अपनाये जाने से श्रम की काफी बचत होती है। टब लोहे का बना होता है जिस पर

जस्ता चढ़ा रहता है और उसकी लम्बाई × गहराई और चौड़ाई क्रमशः 48" × 22" × 27½" होती है।

(ii) गोबर का संग्रहण

(ए) इकट्ठे किये हुए गोबर को उठाकर ले जाने में सुविधा रहती है।

(बी) संग्रह करके रखने से गोबर में सड़ांध पैदा होती है और उससे उसकी उर्वरक शक्ति में बढोतरी होती है।

(सी) इसके द्वारा बीमारी के खतरनाक जीवाणुओं के जीवन चक्र को पूरा होने से रोका जाता है।

गोबर इकट्ठा करने के लिये बनाया गया गड्ढा पशुघर से कम से कम 200 से 300' दूर होना चाहिये। इसे जमीन की सतह से ऊपर बनाना ठीक रहता है। गड्ढे का स्थान ऐसी जगह पर हो जिससे कि फार्म के किसी भी हिस्से से वहां पहुंचने मे कोई रुकावट न आये। यह पानी के स्रोतों से दूर होना चाहिये। इसे बनाते समय वहा की वायु-प्रवाह की दिशा का ध्यान भी रखें जिससे मक्खियां और दुर्गन्ध जैसी कठिनाइयां खड़ी न हो सकें। मक्खियो के कारण पशुओं को काफी परेशानी होती है और उससे दूध उत्पादन की क्षमता में कमी हो जाती है। डेयरी फार्म, जहां खाद्य और दूध से बने पदार्थ इकट्ठे किये जाएं, हवा की गति के विपरीत दिशा में होने चाहियें।

गड्ढे को बनाना.-

(1) यह जमीन की सतह से ऊपर होना चाहिये।

(2) इसकी फर्श अभेद्य होनी चाहिये।

(3) फर्श की ढलान सही ढग से होनी चाहिये।

(4) गड्ढे की दीवारों की ऊंचाई कम से कम 4' होनी चाहिये।

(5) गड्ढे में गोबर इकट्ठा करने के कारण मक्खियां उसमे प्रजनन नही कर पाती, जीवाणुओं व स्ट्रान्जाइल्स और दूसरे कीडों के लार्वो की मृत्यु हो जाती है।

(6) गड्ढे पर छत उसकी दीवार से चार फुट ऊंचाई पर बनानी चाहिये। इससे गोबर को हवा और सूर्य की रोशनी पूर्णतया मिलेगी। यह गोबर को वर्षा के पानी से खराब होने से बचाता है।

गोबर को गड्ढे में कम से कम 60 दिनों तक इकट्ठा करके रखे रखना चाहिए। अगर गोबर में घास के रेशे ज्यादा हों तो यह समय कुछ दिनों के लिए और बढ़ा देना चाहिए। प्रत्येक गाय का गोबर इकट्ठा करने के लिए 2 घन फुट जगह की आवश्यकता रहती है। अगर 20 गायो का गोबर 60 दिनों के लिये इकट्ठा करना हो तो 30' लम्बा × 20' चौड़ा × 4' ऊंचा एक आयताकार गड्ढा बनाना चाहिये।

पशुघरों से गोबर को कुछ परिस्थितियों के कारण संग्रह न करके सीधा ही खेतों पर डाला जा सकता है। इस विधि में कोई भी आपत्ति नही है, मगर गोबर डालने के बाद उन जगहों पर पशुओं को चारा चरने के लिए नही जाने देना चाहिये।

गोबर के निस्तारण की विधियां

गोबर के निस्तारण करने की अनेक विधियां है और इन सभी से मक्खियों के प्रजनन को रोकने में सहायता मिलती है। इसके लिए निम्नलिखित विधियां है —

(1) भौतिक

(i) जलाने की विधि

इस विधि का उपयोग पशुओं में बीमारियों के फैलने के समय किया जाता है। यह विधि काफी नुकसानदेह है मगर साथ ही यह स्वास्थ्यकर भी है। गोबर को धूप में सुखाया जाता है लेकिन यह ध्यान रखना जरूरी है कि उस समय वहां मक्खियां आकर्षित न होने पाये। सूखे हुए गोबर को जलाकर राख में परिवर्तित कर लिया जाता है।

(ii) गाड़ने की विधि

गोबर का निस्तारण जरूरत के मुताबिक खाइयां बना कर किया जाता है। इसके पास पानी का कोई भी स्रोत नही होना चाहिये। गोबर को खाई में रखने के पश्चात् उस पर 2' से 3' मिट्टी की परत चढाते हैं। खाई काफी गहरी होनी चाहिये जिससे कि स्ट्राग्जाइलस और मक्खियो के लार्वा खाई से बाहर नही निकल सके।

(2) रासायनिक पदार्थों का इस्तेमाल

जहां गोबर को खाद के लिए इस्तेमाल करना हो और जहां पर खाद बनाने के दूसरे तरीके काफी महगे हो, वहां यह विधि उपयोग में लाई जाती है। अगर गोबर में बीमारी पैदा करने वाले जीवाणु हों तो यह विधि खाद बनाने के लिए उपयोगी नही रहती है। इस विधि द्वारा मक्खियों के प्रजनन में रुकावट पैदा होती है और उसमें पाये जाने वाले अन्य परजीवियों पर नियंत्रण में आसानी रहती है। रासायनिक पदार्थों में पौधो और सब्जियों के लिये विषाक्तता नही होनी चाहिये और साथ ही उनमें कीड़ों और मक्खियों को मार सकने की क्षमता भी होनी चाहिये। इस पर खर्चा ज्यादा न आने पाए इसलिये उन्हे गोबर की ऊपरी परत (4 से 5") में ही मिलाया जाता है।

मक्खियों को नियत्रण में रखने के लिये रसायन :–

(i) हेलीबोर (Hellebore)

इस्तेमाल के लिए $\frac{1}{2}$ पौण्ड हेलीबोर पाउडर 10 गैलन पानी में मिलाकर 24 घंटे तक छोड़ देना चाहिये। यह घोल 10 घन फुट खाद के उपचार के लिये

पर्याप्त होता है। घोल छिड़कते वक्त गोबर की ऊपरी सतह पलटते रहना चाहिये जिससे कि वह रसायन उसमें पूरी तरह से घुल जाये।

(ii) सुहागा (Borax)

यह 16 घनफुट खाद में एक पौण्ड की दर से सूखा ही मिलाया जाता है और बाद में पानी मिला दिया जाता है, लेकिन उसमें इतना ही पानी मिलायें कि खाद इसे पूरी तरह से सोख ले। एक पौण्ड सुहागे को 6 गैलन पानी में घोल कर 12-16 घनफुट खाद के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है।

(iii) सोडियम फ्लोसिलिकेट (Sodium Fluosilicate)

एक पौण्ड सोडियम फ्लोसिलिकेट को 15 गैलन पानी में घोलकर खाद के ऊपर तब तक छिड़का जाता है, जब तक वह पूरी तरह सोख न लिया जाय।

(iv) बेन्जीन हैक्साक्लोराइड (बी. एच. सी.) और डाइक्लोरो डाइफिनाइल ट्राईक्लोरोइथेन (डी. डी. टी.) Benzene Hexa Chloride or Dichloro-Diphenyl Trichloroethane)

गोबर के प्रति वर्ग फुट सतह पर 200 मिलि ग्राम बी. एच. सी. या डी. डी. टी. का घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है तथा उसे 2 से 6 सप्ताह के अंतराल से दोहराया जाता है।

(v) दूसरी विधियों द्वारा नियंत्रण

मूत्र में अमोनिया की अत्यधिक मात्रा होने के कारण यह गोबर में पाये जाने वाले कीडों और लार्वाओं को समाप्त करने में सक्षम रहता है। विशेषतः घोड़े का मूत्र इस कार्य के लिए काम में लिया जाता है और यह ताजे गोबर के साथ उसके भार के हिसाब से 30 से 40 प्रतिशत मात्रा में मिलाया जाता है। इसे गोबर के ऊपरी भाग के साथ ही मिलाया जाता है। शुद्ध अमोनिया को भी गोबर के साथ उसके भार के हिसाब से 1 से 5 प्रतिशत मात्रा में मिलाया जाता है। ताजे मल के साथ यूरिया भी मिलाया जाता है जो इसके भार के हिसाब से केवल 0.75 प्रतिशत मिलाने पर उसमें होने वाले स्ट्रन्आइलों को नष्ट करने की क्षमता रखता है।

(3) जैविक विधि :

यह विधि बहुत कम खर्चीली है। गोबर को इस तरह संग्रहीत किया जाता है कि उससे मक्खिया और बाह्यपरजीवी आकर्षित नहीं हो पाते। सडने की क्रिया के कारण, एकत्रित गोबर में तापक्रम बढ़ता है और उससे कुछ गैसें बनती हैं जो कि उसमें रहने वाले जीवाणुओं को मारने में सक्षम होती हैं। इसके लिये उपयोग में लाई जाने वाली विधियां निम्न हैं—

(i) गोबर को फैलाना या सुखाना (By spreading or drying the manure)

पशुओ के मल को खुले में पूर्णतया सूखने दिया जाता है। यह विधि ज्यादा फायदेमंद नही है, क्योंकि सुखाने के कारण मल की कुछ न कुछ उर्वरक शक्ति क्षीण होती है। सूखने के कारण मक्खियां आकर्षित नही होती तथा उसमें होने वाले कुछ जीवाणुओं की मृत्यु हो जाती है। सुखाने की विधि से मल से आने वाली दुर्गन्ध भी समाप्त हो जाती है।

(ii) गोबर को पलटना और दवा कर भरना (Turning over the surface and close packing of manure)

गोवर को एक घिरे हुए भाग मे ही संग्रहीत करके दवाकर भरा जाता है। इसमें सड़ांध क्रिया होने से इसके तापमान मे वढ़ोतरी होती है। यह तापमान अलग-अलग गहराई पर वदलता रहता है, जैसे एक इंच नीचे 97° एफ, 4" नीचे 145 से 115°एफ. और सतह से 10" नीचे 160° एफ. होता है। इससे यह विदित होता है कि संग्रहीत खाद में गहराई तक सतह के मुकाबले तापमान अधिक होता है। सभी तरह के लार्वा और ज्यादातर जीवाणु (विना स्पोर के) 165° एफ. पर समाप्त हो जाते हैं। एकत्रित गोवर की ऊपरी सतह पर तापक्रम कम होने से यहां रहने वाले जीवाणु लम्बे समय तक जीवित रह सकते हैं, इसलिये खाद को कुछ समय बाद पलटते रहें तो ये जीवाणु भी समाप्त हो जाते है। पशुओं के मल को बेवर गोवर गड्ढे मे इकट्ठा करते है। इसके चार कक्ष होते है जिनमें से प्रत्येक इतना बड़ा होता है कि उसमें एक सप्ताह का उत्सर्जित मल पदार्थ समा सके। इसे फर्श पर निर्मित लोहे के मजबूत खम्भो और तार की जाली से घेर कर बनाया जाता है जिससे गोवर भीतर ही रुक जाता है। इस विधि में जाली लगी होने के कारण खाद को दवा कर भरने में सुविधा नही रहती है। इसके चारों ओर एक नाली बना कर उसमें रसायन भरा जाता है, जिससे गोवर के अन्दर से निकलने वाले मक्खियों व दूसरे जीवों के लार्वे बाहर निकलकर आने पर रसायन में गिरकर मर जाते है। आलनट गोवर गड्ढे का उपयोग भी इसके लिए किया जा सकता है। इस विधि मे तीन तरफ सीमेंट और ईंटो की दीवार वनी हुई होती है तथा इसकी ऊंचाई 4' होती है। गड्ढा दो बराबर हिस्सो में बंटा हुआ होता है। चारों ओर की दीवारों और विभाजन-दीवार के अन्दर की ओर ऊपरी सिरे के कुछ इंच नीचे, अन्दर की ओर झुके हुए मार्गरोधक या टॉड लगा दिये जाते है, जो रेंगकर दीवारों पर चढ़ते हुए लार्वाओं को ऊपर से निकलने से रोकते हैं। इसमें टॉड की ऊंचाई तक खाद नही भरी जानी चाहिये। इसके चारों ओर भी नाली बनाई जाती है और यह ठीक वेबर विधि की नाली जैसे ही बनाई जाती है। दोनों कक्षों के आगे सीधे ऊपर की ओर खिसकने वाला एक अवरोधक (Shutter) लगा रहता है जो मल पदार्थ को नली में गिरने से रोकता है।

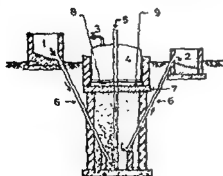
(iii) बायो-गैस प्लान्ट या गोबर-गैस प्लान्ट (Bio-gas plant or Gobar-gas plant)

जब भी पालतू पशुओं को रखा जाये और अगर उनके मल-मूत्र का ठीक विधि द्वारा निस्तारण नहीं हो, तो वे मनुष्यो व पशुओं में खतरनाक रोग पैदा करते हैं और साथ ही पानी, हवा और खाद्य पदार्थों को भी प्रदूषित करते हैं। इस तरह के प्रदूषण व बीमारियों को नियंत्रण मे रखने के लिये और मनुष्यों तथा पशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि पशुओं के मल-मूत्र का निस्तारण सही ढंग से हो। ऐसे में बायो-गैस प्लान्ट का उपयोग एक सही तरीका है जिससे मल-मूत्र से फैलने वाली बीमारियों को नियंत्रित किया जा सकता है और इससे मक्खियों को प्रजनन कर सकने में बिल्कुल ही सहायता नही मिलती।

कई स्थानों पर मल को सुखा कर जलाने के काम में लाया जाता है। लेकिन अगर एक भाग मल को चार भाग पानी की मात्रा के साथ मिलावें और बायो-गैस प्लान्ट का उपयोग करें, तो इससे जलाने के लिये गैस और उच्च कोटि की खाद दोनो ही प्राप्त होते है। इससे बनी गैस का उपयोग रसोईघर के लिये, बिजली के उपकरण चलाने के लिये तथा प्रकाश को व्यवस्था के लिये भी किया जा सकता है। इसके कारण मिट्टी के तेल, लकड़ी और कोयले की खपत कम हो जाती है तथा वायुमण्डल में होने वाले प्रदूषण को रोकने मे सहायता मिलती है। गोबर से उत्पन्न होने वाली गैस से डीजल इंजिन चला कर कुओं से पानी तथा आटा पीसने की चक्की आदि भी चलाई जा सकती है। इस विधि मे गैस से आंखो तथा फेफड़ों मे किसी किस्म का रोग उत्पन्न नही होता है, जो कि गोबर आदि के जलाने से प्रायः हो जाता है।

इस विधि से दीमक (White ant) और दूसरे कीडो को नियन्त्रित किया जा सकता है जो कि गोबर मे जिन्दा रह कर आसानी से प्रजनन कर सकते हैं। यह विधि बहुत ही लाभदायक है, क्योकि इससे पशुपालकों की माली हालत मे सुधार होता है और उनके स्वास्थ्य पर भी बुरा असर नही पड़ता।

सामान्यतः खादी ग्रामोद्योग का बायो-गैस प्लान्ट (चित्र 9) का उपयोग गैस बनाने के लिये किया जाता है और इसके दो भाग होते हैं।



चित्र 9. गोबर-गैस प्लान्ट। (1) गोबर भरने का कक्ष (2) पाचित स्लरी के लिये कक्ष (3) गैस की निकासी का मार्ग (4) टंकी (5) टंकी को सीधा रखने के लिये पाइप (6) स्लरी के निकासी के लिये पाइप (7) दीवार (8) गैस और (9) स्लरी।

(ए) डाइजेस्टर (Digester)

यह एक छोटा कुआं है जो भूमि के नीचे बनाया जाता है। इसकी दीवारें ईंट या पत्थर की बनती है जिन पर सीमेंट का प्लास्टर किया जाता है ताकि कुएं से गोबर का पानी भूमि में नही रिस सके। इसकी गहराई 3.5 से 6 मीटर व चौड़ाई 1.2 से 6 मीटर तक रखी जाती है। कुएं के बीच में एक दीवार खड़ी की जाती है जो इसे दो बराबर भागों में विभक्त करती है। यह कुआ भूमि के नीचे बनाया जाता है जिससे कि वायुमण्डल के तापक्रम में एकाएक होने वाले परिवर्तन का इस पर असर न पड़ सके। कुएं के दोनों भाग मे सीमेंट का एक-एक नल लगाया जाता है। नल का कुएं के अन्दर के भाग का मुह ऊपर की तरफ रहता है, इसके कारण द्रव गोबर कुएं मे नल से आने के बाद इसमें अच्छी तरह मिल जाता है। कुएं के दूसरी तरफ लगे नल से जीवाणुओ द्वारा पाचित (Digested) स्लरी कुए से बाहर निकलती रहती है। इस नल का कुए के बाहर की तरफ का भाग, गोबर भरने वाले पहले नल के भाग की अपेक्षा थोड़ा नीचाई पर रखा जाता है जिससे कि दूसरे भाग से स्लरी स्वतः ही निकलती रहती है।

(बी) गैस संग्रहण (Gas holder)

यह लोहे की बनी एक गोलाकार टंकी होती है जिसमे बनी हुई गैस इसमे आकर एकत्रित होती रहती है। टकी पत्थर की शिला पर ठहरी रहती है जिस पर थोड़ा पानी व मोबिल तेल भर कर रखा जाता है, जिससे टंकी खराब नहीं हो पाती। अगर पत्थर की शिला नही लगायी जाये तो टकी सीधे ही गोबर के संपर्क में रहती है और इसके कारण इसमें जंग लगता है और यह शीघ्र ही खराब हो जाती है। पत्थर की शिला के बीचों-बीच एक छेद होता है तथा इसमें एक नल लगा रहता है जो कुएं और टकी को जोडता है और इसके द्वारा गैस कुए से टंकी में आकर एकत्रित होती रहती है।

विधि

अच्छी गैस बनने के लिये पशुओ या मनुष्यों के मल को एक जगह इकट्ठा करके 10 दिनों तक सड़ने दिया जाता है। मल व पानी को 1 : 4 के अनुपात में मिला कर बायो-गैस के भरण वाले कक्ष मे उडेला जाता है। अगर पानी की मात्रा ज्यादा रख दी जाये तो गैस के उत्पादन में कमी आ जाती है। गैस का उत्पादन ठीक से हो इसके लिये स्लरी का पी. एच. 6 से 8 तथा तापमान 30° सी. से 40° सी. के बीच में होना चाहिये। अगर कुएं में गोबर का तापमान 10° सी. से नीचे गिर जाये तब गैस बननी बंद हो जाती है और ऐसा अवसर सर्दी के मौसम मे होता है। तापमान बनाये रखने व गैस के सामान्य उत्पादन के लिये सर्दी के मौसम में स्लरी को गर्म पानी मे तैयार करके कुएं में भरा जाना चाहिये। अगर गोबर की स्लरी काम मे नही ली जाये तो शुरू-शुरू में गैस बनाने मे 20 से 30 दिन का समय लगता है। काफी दिनो

बाद स्लरी बायो-गैस प्लान्ट के दूसरे भाग में पहुँचती है जो कि उसमें लगे दूसरे नल द्वारा बाहर निकल जाती है। बाहर निकली हुई स्लरी को सीधे ही खेतों में डाल दी जाती है या इसे उपयोग में लेने तक गड्ढे में भर कर रखा जाता है। इस स्लरी को सुखा कर भी रख सकते हैं ताकि जरूरत के समय खेतों के लिये इसका उपयोग किया जा सके या फिर इसको जलाने के लिये भी काम में लिया जा सकता है।

बायो-गैस प्लान्ट के ऊपर वाले भाग में उल्टी अवस्था में रखी टंकी में गैस एकत्रित होती रहती है जिसे रसोई बनाने या फिर कोई मशीन चलाने के काम में ली जा सकती है। शुरू में टंकी में गैस व हवा दोनों का मिश्रण रहता है जिसे हवा में छोड़ दिया जाता है ताकि बाद में इसमें सिर्फ गैस ही इकट्ठी हो पाये। गैस का चूल्हा ठीक से कार्य करे इसके लिये यह ख्याल रखना चाहिये कि गैस ले जाने वाली नली में इकट्ठे हुए पानी को 10 दिनों में एक बार जरूर निकालते रहना चाहिये।

बायो-गैस में कई किस्म की गैसें होती हैं, मगर जलाने के लिये सिर्फ मीथेन गैस ही उपयोगी होती है, जिसकी मात्रा 65 प्रतिशत तक रहती है। मीथेन के अलावा इसमें 30 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड, एक प्रतिशत हाइड्रोजन सल्फाइड और अंश मात्र आक्सीजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और कार्बन मोनो-आक्साइड आदि गैस होती है। मीथेन गैस पैदा करने में कुछ तरह के जीवाणुओं का दायित्व रहता है। ये जीवाणु स्लरी में उपयुक्त तापमान और पी. एच. में ही वृद्धि करते हैं। अगर स्लरी का पी. एच. अम्लीय हो और तापमान बहुत कम या बहुत ज्यादा हो तो गैस बनने में बाधा उत्पन्न हो जाती है। करीब 4.5 कि. ग्रा. गोबर से 195 क्यू. से. मी. गैस बनती है और 1480 क्यू. से. मी. गैस एक लीटर पेट्रोल के बराबर होती है।

मल में निम्न मक्खियां प्रजनन किया करती हैं :—

(i) मस्का डामेस्टिका (घरेलू मक्खी) (ii) मस्का सॉर्बेन्स (iii) फेनिया केनीकुलेरिस (नहीं काटने वाली) (iv) स्टोमोक्सिस केल्सीट्रान्स (अस्तबल-मक्खी) (v) हीमाटोबिया जाति की (काटने वाली मक्खी) और (vi) लाइपेरोसिया जाति की (काटने वाली मक्खी)।

घरेलू मक्खी

पशु चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य है कि पशुओं में रोग फैलाने वाली मक्खियों के प्रजनन की रोकथाम करे और ये मक्खियां अक्सर पशुशालाएं, कसाईखाने, निकास-नालियां, कूड़े के ढेर, मल-मूत्र एकत्रित करने के स्थान और डेयरी में अत्यधिक संख्या में रहती है, जहां इनके कारण टाइफोयड ज्वर और अन्य रोग महामारी का रूप धारण कर सकते है। इसलिये मस्का डामेस्टिका के पूर्ण जीवन-वृत्त की जानकारी रखना बहुत जरूरी है और यह अनुकूल परिस्थितियों में 8-9 दिनों में

पूरा हो सकता है। घरेलू मक्खी काटा नहीं करती है और ये अपना प्रजनन घोड़े, गाय, सूअर और मुर्गों के मल में किया करती है। ये अंधेरी जगहों पर अंडे दिया करती हैं और इनके लार्वा रोशनी से दूर रहते हैं तथा विकास के दौरान अगर वायु-मण्डल का तापमान ज्यादा हो तो ये मर जाते हैं। अंडे, गोबर की सतह के नीचे की दरारों मे 120 से 150 की संख्या के छोटे-छोटे गुच्छों में जमा कर दिये जाते हैं। एक मादा घरेलू मक्खी अपने जीवन काल मे 5 या 6 बार अंडे देती है और कुल मिलाकर 600 से 900 या इससे भी ज्यादा अंडे दे सकती है। लार्वा के विकास की स्थिति दो चरण में पूरी होती है, जैसा कि पहला और दूसरा चरण। दूसरे चरण के विकास के दौरान लार्वा मल से निकलकर दूर तक चला जाता है, मगर यह दूरी 3 से 20' तक हो सकती है और यह फिर से जमीन में 4" गहराई तक जाकर प्यूपा मे परिवर्तित हो जाता है। कभी-कभी ये जमीन में 2' अन्दर तक चले जाते है। इनको अपना जीवन-चक्र पूरा करने के लिये भूमि में सही तापमान और गीलेपन की जरूरत होती है। ये अपना जीवन-चक्र 2 से 3 सप्ताह मे पूर्ण कर लेते है। *मक्खी खुले आकाश में 15 मील की दूरी तक जा सकती है।*

मक्खी से फैलने वाले रोग

(1) गर्मी के मौसम में मक्खियां पशुओं व मनुष्यों को आराम के समय तंग करती रहती है।

(2) मक्खियां बीमारी के जीवाणु एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है और इससे मनुष्यों व पशुओं की सेहत के लिये बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न हो जाता है। ये दस्त, हैजा, टाइफोयड जैसे खतरनाक रोगों के जीवाणुओं को अपने साथ लिये रहती है। बच्चों में दस्त का रोग मक्खियों द्वारा प्रदूषित किया गया दूध पीने के कारण उत्पन्न होता है। दूध न देने वाली गायों और बछड़ों मे ग्रीष्म थनैला रोग (Summer Mastitis) उत्पन्न करने वाले जीवाणु (**Corynebacterium pyogenes**) मक्खियों द्वारा ले जाये जाते हैं। पक्षी–फीताकृमि (Avian tape-worm) और एन्थ्रैक्स स्पोर भी मक्खियों द्वारा स्वस्थ पशु–पक्षियों तक ले जाये जाते हैं।

पशुओं के मल में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवाणु

पशुओं के मल से जीवाणु मक्खियों, मनुष्यों, पशुओ और पक्षियो द्वारा एक जगह से दूसरे जगह ले जाये जा सकते है और इससे पानी हवा और खाद्य पदार्थों का संदूषण होने से ये निम्नलिखित रोग मानव समाज और पशुओं के लिये बहुत बड़ा खतरा उत्पन्न करते हैं :

संक्रामक रोगों के कारण	सूक्ष्म जीवाणुओं की किस्में	रोग
वाइरस	रिन्डरपेस्ट वाइरस	पशु प्लेग या रिन्डरपेस्ट
	सूअर ज्वर वाइरस	सूअर ज्वर (Swine Fever)
बैक्टीरिया	बैसिलस एन्थ्रेसिस	एन्थ्रेक्स
	क्लोस्ट्रीडियम वेलशाइ	गैस गैंग्रीन
	माइकोबैक्टीरियम-पैराट्युबरक्युलोसिस	जोने रोग
	साल्मोनेला ग्रुप	टाइफोयड
	माइकोबैक्टीरियम-ट्युबरक्युलोसिस (गाय, मनुष्य और मुर्गी में क्षय रोग के जीवाणुओं की किस्में)	क्षय रोग
	ई. कोलाई	ग्रेस्ट्रोएन्टराइटिस
प्रोटोजोआ	आइमेरिया की किस्में	पशु–पक्षियों में कावसीडीयोसिस का रोग
हेल्मिन्थ	स्ट्रान्जाइलस की किस्में (घोड़ा और गाय की)	स्ट्रान्जाइलोसिस
	डिक्टियोकाउलस विवीपेरस	गायों के फुप्फुस कृमि
	हेब्रोनिमा किस्म (घोड़े में)	फीता कृमि रोग
	फीताकृमि किस्में (पक्षियों में)	फीता कृमि रोग

दूध

दूध का प्रदूषण

दूध एक लेक्टल स्राव है जो एक या उससे अधिक स्वस्थ व अच्छी तरह से खिलाई गयी गायों को दुहने से प्राप्त किया गया द्रव है। यह दूध बछड़ा होने के 15 दिनों पूर्व या 5 दिनो पश्चात् तक का नहीं होना चाहिये तथा इसमे दूध की वसा की मात्रा 3.25 प्रतिशत से कम नही होनी चाहिये। दूध कई जाति के पशुओं से प्राप्त किया जा सकता है और उन्हें उनकी किस्म द्वारा पुकारा जाता है जैसे—गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँटनी, घोड़ी आदि का दूध। ताजे व बिना किसी तरह की मिलावट वाले दूध को पूर्ण दूध (Whole milk) कहा जाता है और अगर इसमें एक से ज्यादा किस्मों के पशुओं का दूध मिलाया गया हो तो इसे मिश्रित दूध कहते है। पॉसद्यूराइज्ड (Pasteurised) दूध वह दूध है जिसे भिन्न-भिन्न तापक्रम पर अलग-अलग समय तक उबलने वाले तापमान से नीचे तापमान पर गर्म किया जाता है जिससे उसमें होने वाले ज्यादातर जीवाणु मर जाएँ और फिर दूध को कम तापमान पर ठंडा किया जाता है। स्टरलाइज दूध वह दूध है जिसे उबलने तक या उससे ज्यादा तापमान पर गर्म किया गया हो ताकि उसमे पाये जाने वाले सभी जीवाणु मर जाये।

दूध अपनी बनावट के कारण बहुत ही पौष्टिक तथा आराम से पच सकने के कारण भोजन का मुख्य भाग है। यह नवजात शिशु के लिये ही नही बल्कि बच्चों और बड़ों के लिये भी एक खास भोजन है। दूध की जरूरत व उपयोगिता से सभी लोग वाकिफ है लेकिन आम लोगो को इसकी शुद्धता के बारे में ज्ञान नहीं रहता है। जब इसके उत्पादन के समय या बाद में रख-रखाव व बांटते समय अगर इसकी स्वच्छता का ठीक से ध्यान नही रखा जाय तो इससे आम आदमी के स्वास्थ्य पर उसमें बढ़ने व वृद्धि करने वाले बीमारी के जीवाणुओ के कारण काफी बुरा असर पड़ता है। भारत मे स्वच्छ दूध उत्पादन एक जटिल समस्या है। क्योंकि यहां आम जनता, दूध उत्पादन करने वाले, उन्हे बेचने वाले आदि को इसके वैज्ञानिक तौर-तरीके से रख-रखाव का ठीक से ज्ञान नहीं होता है। दूध का संदूषण व उसमें मिलावट इसके उत्पादन के बाद उपभोक्ताओं तक पहुंचने तक होती ही रहती है और इन्हीं कारणों से उनकेस्वास्थ्य को भारी खतरा बना रहता है। यह खतरा मनुष्य के

लिये तब और भी बढ़ जाता है जब दूध देने वाला पशु खुद किसी बीमारी से पीड़ित हो और दूध में आने वाले जीवाणु मनुष्यों के लिये भी बीमारी पैदा कर सकने में सक्षम हों। ऐसा दूध जब किसी अच्छे दूध के साथ मिला दिया जाता है तब यह सारा दूध उपभोक्ताओं के लिये बीमारी का कारण बन जाता है। इस प्रकार फैलने वाली कुछ बीमारियां हैजा, टायफोयड बुखार, सोर थ्रोट, दस्त आदि हैं, जिनसे लाखों लोग हर साल ग्रसित होकर मरते हैं। प्रदूषित दूध वह दूध है जिसमें कचरा घुली हुई व तैरते रहने वाली अवस्था में या इसके पेंदे में दिखाई दे तथा इसमें मनुष्यों व पशुओं में रोग पैदा करने वाले जीवाणु हों और साथ ही रोग नहीं पैदा कर सकने वाले जीवाणुओं की संख्या भी बहुत ज्यादा होवे। इसलिये दूध के प्रदूषण को रोकने के लिये आम व्यक्ति और दूध उत्पादन व उससे संबंधित व्यवसाय वाले व्यक्ति को 'साफ दूध के उत्पादन के तरीकों के बारे में तथा उसके रख-रखाव, वितरण व संग्रहण के बारे में' भी पूर्ण ज्ञान अर्जित करना चाहिये ताकि मनुष्यों को शुद्ध व आरोग्यप्रद दूध वितरित किया जा सके। दूध की स्वच्छता पशुओं के स्वास्थ्य और उनके ठीक से रख-रखाव, दूध व उनके काम में आने वाले बर्तनों और पशुओं को किस तरह की खुराक व पानी दिया जा रहा है आदि सभी बातों पर निर्भर करता है।

दूध पानी, खनिज तत्वों (Mineral matter), प्रोटीन, दूध की शक्कर या लैक्टोज और वसा के मिश्रण से बनता है। दूध का ख्याल हमेशा इसलिये रखा जाना जरूरी है क्योंकि इसमें किसी न किसी प्रकार के जीवाणु हमेशा ही रहते हैं और दूध ऐसा माध्यम है जिसमें जीवाणु आसानी से बढ़ोतरी कर सकते हैं। इसमें पाये जाने वाले जीवाणु दूध पीने पर किसी में भी रोग उत्पन्न कर सकते हैं। कुछ किस्मों के जीवाणुओं के कारण दूध गाढा हो जाता है तथा ये उसके स्वाद, गन्ध, और पौष्टिक तत्वों आदि पर भी असर करते हैं। इसलिये दूध को अगर एक अच्छे खाद्य पदार्थ के रूप में काम में लाना हो तो उसे जीवाणुओं से मुक्त रखना ही होगा। मनुष्यों में दूध से फैलने वाले रोगों का बहुत ही महत्व है क्योंकि प्रदूषित पानी के बाद दूध ही ऐसा तरल पदार्थ है जो प्रदूषित होने पर मनुष्यों में अधिक रोग फैलने का माध्यम है। जब तक दूध को ठीक ढंग से नहीं निकाला जाता, उसमें जीवाणु आते रहेंगे। मगर जब पशु खुद ही बीमार हो तो उसके दूध में जीवाणु आते रहेंगे। कुछ दूसरे कारण भी होते हैं जिनसे दूध में जीवाणु मिलते रहते हैं जैसे दूध निकालते समय पशु के थन, चमड़ी पर से जीवाणु दूध में गिर जाय या घास व बिछावन से उड़ी मिट्टी के साथ लगे जीवाणु दूध के बर्तन में हवा द्वारा गिर जाए। जो व्यक्ति दूध निकालता है उसके हाथ और कपड़ों पर से, गन्दे बर्तन या फिर दूध एक जगह से दूसरी जगह ले जाने या ठीक से संग्रहण करके न रखने से भी जीवाणुओं के द्वारा दूध संदूषित हो जाता है। इस तरह दूध निकालते वक्त से लेकर उपभोक्ता के पास पहुंचने तक दूध हर जगह जीवाणुओं द्वारा संदूषित होता रहता है। दूध का प्रदूषण

सिर्फ जीवाणुओ के उसमें गिरने तक ही सीमित नही रहता है, लेकिन यह बढता ही रहता है क्योंकि दूध में वे सभी तत्व रहते हैं जिसके कारण जीवाणु अपनी बढोतरी कर सकते हैं। इन सभी से बचने का एक अच्छा उपाय है कि दूध को निकालने के तुरन्त बाद से उपभोक्ता तक पहुंचाने तक उसे ठडी अवस्था में ही रखा जाये ताकि उसमे रहने वाले जीवाणु अपनी बढोतरी नही कर सकें। भारत मे दूध से फैलने वाली बीमारियों की संख्या में कमी का कारण है कि इसे उपयोग मे लेने मे पहले उबाला जाता है और इस कारण इसमें होने वाले जीवाणुओ की संख्या मे कमी हो जाती है या वे सभी पूर्णतया समाप्त हो जाते है। मगर कुछ जीवाणु दूध उबालने पर भी नही मरते हैं और उनसे उपभोक्ताओ मे बीमारियां फैलती रहती हैं।

दूध से फैलने वाले रोग

दूध से फैलने वाली बीमारियों को निम्न तीन वर्गों मे बांटा जा सकता है :—

I. दूध द्वारा मनुष्यों में फैलने वाले पशुओं के रोग :

निम्न रोगों के जीवाणु तथा विषैले तत्व मुख्यत: पशुओं के द्वारा दूध में आते हैं और प्रदूषित दूध पीने के कारण मनुष्यों मे ये रोग उत्पन्न होते रहते है।

संक्रामक जीवाणु/ अन्य कारण	जीवाणुओ की किस्म/ अन्य कारण	बीमारी
वायरस	खुरपका-मुहपका रोग की वायरस	खुरपका-मुंहपका रोग
	गायों मे चेचक रोग की वायरस	गायो में चेचक रोग
	रैबीज वायरस	रैबीज
बैक्टीरिया	बेसीलस एन्थ्रेसिस	एन्थ्रैक्स
	स्टैफिलोकोकस ओरियस	बाट्राइओमाइकोसिस
	ब्रूसेला एबार्टस	ब्रूसेल्लोसिस
	ब्रूसेला सुइस	ब्रूसेल्लोसिस
	ब्रूसेला मेलिटेंसिस	ब्रूसेल्लोसिस
	माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस (गायो की किस्म)	क्षय रोग
	स्ट्रैप्टोकोकाइ किस्म	थनैला रोग
	स्टैफिलोकोकाई किस्म	थनैला रोग
	कार्नीबैक्टीरियम पायोजिनिज	थनैला रोग
	बैक्टीरियम कोलाई	थनैला रोग
	डिप्थीरोइड किस्म	थनैला रोग
	सालमोनीला एन्टरीटिडिस	पाचन क्रिया में विघ्न उत्पन्न होना

	सालमोनीला वार डबलिन	पाचन क्रिया में विघ्न उत्पन्न होना
	सालमोनीला टाइफीमूरियम	,,
रिकेटसिया	रिकेटसिया बर्नेटी	क्यू ज्वर
फंगस	एक्टीनोमाइकोसिस बोविस	एक्टीनोमाइकोसिस
विषैले पौधे	सफेद स्नेक रूट	ट्रेम्बलस
	जीम्मीवोड	ट्रेम्बलस

II. दूध द्वारा रोगी मनुष्यों से स्वस्थ मनुष्यों में फैलने वाले रोग :

किसी बीमार व्यक्ति या बीमारी के केरियर व्यक्ति के कारण सीधे सम्पर्क से दूध संदूषित हो सकता है या फिर डेयरी के काम आने वाले पानी और बर्तन इन लोगों द्वारा सदूषित हो सकते हैं या इनके द्वारा वायु भी दूषित हो सकती है और दूध जब भी इनके सम्पर्क में आता है तो वह भी दूषित हो जाता है। इस प्रकार दूध के माध्यम से एक बीमार मानव से स्वस्थ मानव तक जीवाणु आसानी से पहुंचकर उनमें रोग पैदा करते रहते हैं।

संक्रामक जीवाणु	जीवाणुओं की किस्म	बीमारी
वायरस	पोलियोमायलाइटिस रोग की वायरस	पोलियो
बैक्टीरिया	विब्रियो कोलेरा	हैजा
	बैसिलस डिप्थीरिया	डिप्थीरिया
	बैसिलस डिसेन्ट्री	डिसेन्ट्री
	स्टैफिलोकोकस ओरियस	आहार विषायण
	बैसिलस टायफोसस	टायफॉयड ज्वर
	साल्मोनीला पैराटायफी	पैराटायफॉयड ज्वर
	स्ट्रेप्टोकोकस हिमोलिटिकस	स्कारलेट ज्वर
	माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस (मानवीय प्रकार के जीवाणु)	मानवीय प्रकार का क्षय रोग

III. दूध से मनुष्यों में फैलने वाली अन्य बीमारियां :

(1) अमाशय व आंत्र की बीमारियां

(2) दूध विषायण या गेलक्टो विष

I दूध द्वारा मनुष्यों में फैलने वाले पशुओं के रोग :–

(i) खुरपका-मुंहपका रोग (Foot and Mouth Disease)

यह रोग एक अति सूक्ष्मदर्शी वायरस के कारण होता है। सभी खुर वाले पशुओं और खासकर गो-पशुओं, सूअरों तथा भेड़ व बकरियों में होने वाली यह एक

उग्र अति संक्रामक बीमारी है। इस बीमारी में मुंह तथा पैरों में छालेदार घाव बन जाते हैं। मादा पशुओं में अयन व थनों पर छाले निकल आते हैं तथा ये दूध दुहने पर फट जाते हैं। अयन प्राय: सूजा हुआ रहता है। थननली मे वायरस के पहुचने पर दूध दूषित हो जाता है।

इस बीमारी से ग्रसित हुए पशु का दूध पीने से यह रोग मनुष्यो में भी उत्पन्न हो जाता है। बड़ों की अपेक्षा यह रोग बच्चों मे ज्यादा असर करता है। इससे पेट व आंतों की बीमारी उत्पन्न होती है, गले में सूजन आना, ग्रीवा ग्रंथी (Cervical gland) मे वृद्धि और कभी-कभी मुह में, हाथों, कानों, सीने और भुजा पर छाले हो जाते है। कभी-कभी इसके कारण उल्टी व दस्त भी होती हैं। इस बीमारी के पशु का दूध बिना उबाले या फिर कच्चा उपयोग किया जाये तो मनुष्यों मे भी यह रोग हो जाता है।

इस रोग के कारण बीमार पशु मे दूध के उत्पादन में कमी हो जाती है तथा दूध बहुत ही पतला होता है। यह दूध लिसलिसा होता है तथा इसे अगर कुछ देर के लिये रख दिया जाये तो दूध के पैंदे मे कुछ पदार्थ इकट्ठे हो जाते हैं और गर्म करने पर यह जम जाता है।

बीमार पशु के दूध में इस बीमारी की वायरस नही होती है, मगर जब ऐसे पशुओं का दूध निकाला जाता है तब उनके थन पर होने वाले फफोले फट जाते है। इन फफोलों के द्रव में वायरस होती है जो बडी आसानी से दूध निकालते समय उसमें मिल जाती है।

खुरपका-मुहपका रोग को मनुष्यों में फैलने से रोकने के लिये बीमार पशुओं का दूध बिना उबाले काम में नहीं लेना चाहिये। ऐसे दूध को अन्य स्वस्थ पशुओं के दूध मे नही मिलाया जाना चाहिये। दूध को पॉसट्यूटराइज करने से इस बीमारी की वायरस प्राय: मर जाती है। अगर दूध मे इस बीमारी की वायरस हो तो दूध को 50° सी. पर 15 मिनट या 70° सी. पर 10 मिनट तक रखने पर या दूध का 85° सी. तापमान होते ही यह वायरस तुरन्त समाप्त हो जाती है।

(ii) गायों की चेचक (Cow-pox)

यह गायों में धीमी गति से फैलने वाला वायरस रोग है जिसमे शरीर की चमड़ी पर फुन्सियां हो जाती हैं। यह गायों में ग्वालों के हाथो द्वारा फैलता है। पशु के आयन व थनों पर जब फुन्सियां होतो हैं तब दूध निकालते समय रगड़ के कारण ये फूट जाती हैं और इससे दूध दूषित हो जाता है। इस बीमारी के कारण पशु का दूध पतला हो जाता है तथा वह जम जाता है। यह दूध बच्चो और बड़ों के लिये ठीक नहीं रहता है। दूध मे इस वायरस के रहने के कारण बच्चों व बडों में बुखार व

शारीरिक कष्ट पैदा होते हैं। यह खासकर उनको होता है जिनके चेचक (Small-pox) का टीका नहीं लगाया गया होता है।

इस बीमारी से बचने के लिये बीमार गाय का दूध पीने के काम मे नही लेना चाहिये। दूध को जब 48° सी. पर गर्म किया जाता है तो गायों के चेचक रोग की वायरस प्रायः नष्ट हो जाती है।

(iii) रैबीज (Rabies)

रैबीज मूलतः कुत्तों आदि का रोग है और उन्ही के द्वारा फैलता है। गायें और दूसरे दूध देने वाले पशुओं मे यह रोग रैबीड कुत्ते के काटने के कारण फैलता है। रैबीज वायरस बीमार कुत्ते की लार में मौजूद रहती है। जब रैबीज वायरस रोग-ग्रस्त दूध देने वाले पशु के केन्द्रीय नाड़ी मण्डल तन्त्रिका में उपस्थित हो तो वह उस पशु के दूध व शरीर से दूसरे निकलने वाले स्राव मे भी पाई जाती है। दूध में इस वायरस का पाया जाना शायद इतना खतरनाक नही है क्योंकि यह वायरस मुंह और पाचन संस्थान की सामान्य अवस्था मे रहने वाली श्लेष्मा झिल्ली को पार करके शरीर में प्रविष्ट नहीं कर सकती। अगर मुंह या पाचन संस्थान में किसी भी जगह कोई घाव हो तो यह वायरस शरीर में रोग पैदा कर सकती है। इसलिये रैबीज बीमारी से पीडित पशु का दूध कभी भी उपयोग में लेने के योग्य नही माना जाता है।

(iv) एन्थ्रैक्स (Anthrax)

एन्थ्रैक्स तीव्र संक्रामक रोग है जो बेसीलस एन्थ्रैसिस नामक सूक्ष्म जीवाणु के कारण होता है। इस रोग से बीमार पशु के दूध में भी ये जीवाणु पाये जाते हैं। मगर मुख्यतः ऐसा पशु के मरने के कुछ समय पहले ही होता है। वैसे मरने से पहले पशु में दूध आना प्रायः रुक जाता है इसलिये दूध द्वारा इस रोग के फैलने का प्रतिशत काफी कम है। फिर भी इस रोग से पीडित पशु के दूध को काम मे नही लेना चाहियें क्योंकि खून से जीवाणु दूध मे आते है। एन्थ्रैक्स से पीड़ित पशु के दूध को बिल्कुल ही काम मे नही लेना चाहिये और न ही ऐसे दूध को अन्य पशुओं के दूध मे ही मिलाएँ। ऐसे पशु को अलग जगह पर रखें और उसके मल व मूत्र का वैज्ञानिक तरीके द्वारा निस्तारण करें ताकि इस रोग के जीवाणु किसी भी माध्यम द्वारा दूध तक नही पहुंच सकें।

(v) बॉट्राइओमाइकोसिस (Botriomycosis)

स्टैफिलोकोकस औरियस के कारण दुधारू गायो में थनैला रोग दीर्घ-स्थायी श्रेणी का होता है जिसके कारण बहुत अधिक आर्थिक क्षति होती है। इस जीवाणु द्वारा उत्पन्न रोग को बॉट्राइओमाइकोसिस कहते हैं। इस जीवाणु के कारण विषैले लक्षण उत्पन्न होते हैं। आमतौर पर इस रोग की उत्पत्ति के कारण स्तन-

ऊतक का काफी भाग जीवाणुओं के आक्रमण के कारण बेकार हो जाता है। इस रोग के कारण अयन में दानेदार दीर्घ-स्थायी विकार हो जाते हैं। ये जीवाणु दूध में होने पर यह मनुष्यों में भी बीमारी उत्पन्न करते हैं।

जो गायें बॉट्राइओमाइकोसिस रोग से पीड़ित हों उनका दूध काम में नही लेना चाहिये। दूध को अगर उपयोग में लेना हो तो उसे पॉसटयूराइज करके ही काम में लिया जाना चाहिये।

(vi) ब्रूसेल्लोसिस (Brucellosis)

ब्रूसेल्लोसिस बीमारी मनुष्यों, बकरियों, सूअरो तथा अन्य कई पशुओ मे भी होती है। इस जीवाणु की तीन किस्में मुख्यतः पाई जाती हैं जो **ब्रूसेला एबार्टस, ब्रूसेला सुइस और ब्रूसेला मेलिटेंसिस** है। ये तीनों तरह के जीवाणु मनुष्यों मे बीमारी पैदा कर सकते हैं। ब्रूसेल्लोसिस बीमारी भारत मे भी पाई जाती है और इसके जीवाणु दूध द्वारा मनुष्यों तक पहुंच कर उनमें बीमारी पैदा करते हैं। बीमार पशु के दूध में इस बीमारी के जीवाणु काफी बड़ी तादाद में होते हैं।

यह मनुष्यो मे दीर्घ-स्थायी श्रेणी का रोग है जिसमे उनमे सिर दुखना, जोड़ो में गंठिये की बीमारी की तरह ही दर्द रहना, कब्ज व रक्त की कमी आदि लक्षण प्रायः देखे जा सकते हैं। इस रोग से मृत्यु तक हो सकती है। यह रोग बीमार पशुओ के सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों में भी हो जाता है जिनमे मुख्यतः पशु चिकित्सक, ग्वाले, दूध, मांस व चर्म उद्योग मे लगे लोग आदि है।

इस रोग से पीड़ित पशुओं के दूध को काम मे नही लेना चाहिये। अगर दूध काम में लेना हो तो दूध को पॉसट्यूराइज करना चाहिये। बीमार पशु का पता लगाकर उसे अन्य पशुओ से अलग रखना व उचित उपचार करना चाहिये। ऐसे पशु का दूध स्वस्थ पशुओं के दूध मे नहीं मिलाना चाहिये। बीमार पशुओ का दूध उनके बच्चो को भी नही पिलाना चाहिये।

(vii) क्षय रोग (Tuberculosis)

यह एक संसर्गी रोग है जो **माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्युलोसिस** के कारण उत्पन्न होता है। यह रोग मनुष्यों और पशुओं में पाया जाता है। उष्ण रक्त वाले पशुओं में क्षय रोग के तीन किस्म के जीवाणु पाये जाते हैं, यथा मानव, गाय और पक्षी। गायों की किस्म का क्षय जीवाणु इनमे से सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे मनुष्य भी संक्रमित हो सकते है। यही कारण है कि आज गायों के इस रोग के संक्रमण पर अधिक ध्यान दिया जा रहा है और दूध के संभरण मे इस रोग का बहुत महत्व है। भारत में करीब सत्तर लाख व्यक्ति क्षय रोग से ग्रसित हैं। इस रोग से होने वाली वार्षिक मृत्यु दर दस लाख तक है। भारत मे प्रति मिनट एक व्यक्ति इस रोग से मरता है एवं इस रोग से ग्रसित कमजोर हुए लोगो की शारीरिक अक्षमता के

कारण हमारे देश को प्रतिवर्ष अनुमानतः दो हजार करोड़ रुपये की हानि होती है। गायों में क्षय रोग आमतौर पर चिरकालीन होता है और पशुओं मे यह रोग धीरे-धीरे बढ़ता है। यह रोग अधिक मात्रा में दूध देने वाली गायों में ज्यादा पाया जाता है। क्षय रोग के पशुओं मे यह बीमारी कभी भी उग्र रूप धारण कर सकती है जैसे कि मौसम में अचानक परिवर्तन, ब्याने के कारण शारीरिक शक्ति की कमी होना, इन सभी के कारण पशु के प्राकृतिक प्रतिरोधक्षमता में एक दम कमी आ जाती है जिससे क्षय रोग के जीवाणु पशु के शरीर के अन्य भागों मे पहुंच कर उग्र रूप धारण कर लेते हैं तथा ऐसे पशु कुछ सप्ताहों में ही मर जाते हैं। क्षय रोग ज्यादा उम्र की गायों में अधिक होता है।

क्षय रोग के जीवाणु प्रश्वसन द्वारा शरीर में प्रविष्ट होते हैं। सांस की वायु और कफ में ये जीवाणु फेफड़ों के क्षय रोग के कारण अधिक मात्रा में होते हैं। ये संक्रमण के सक्षम स्रोत होते हैं। क्षय रोग के जीवाणुयुक्त कफ को निगलने पर आन्त्रायोजनी ग्रन्थियां और यहां तक कि आंत की भित्तियां भी इसके कारण रोग-ग्रस्त हो जाती है। ऐसे पशु के मल में भी क्षय रोग के जीवाणु पाये जाते हैं। गाय के गुर्दे भी इस रोग से ग्रसित हो जाया करते हैं और इसी कारण मूत्र के साथ ये जीवाणु शरीर से निकलते रहते हैं। जब यह रोग गाय के गर्भाशय में हो तो इस रोग के जीवाणु पशु की योनि के स्राव में भी पाये जाते हैं।

क्षय ग्रस्त अयन वाली गायों के दूध से उनके बछड़े और ऐसा दूध पीने पर बच्चे और बड़े भी रोग-ग्रस्त हो जाते हैं।

अगर गाय का अयन क्षय रोग से ग्रस्त न हो तो उसके जीवाणुयुक्त मल-मूत्र या योनि के स्राव से भी दूध संदूषित हो सकता है, इसलिये ऐसे पशुओं का पूरा ख्याल रखना चाहिये ताकि वे दूध को संदूषित न कर पाएं। इस रोग के कारण दूध देने वाली गाय के अयन में काफी सूजन रहती है, तथा सूप्रा अयन लसग्रन्थि (Supra mammary lymph gland) मे सूजन आने के कारण वह फूल जाती है। इसका दूध दिखने मे तो सामान्य होता है मगर वह पतला व पानी की तरह होता है। कुछ अवस्था में यह पीले रंग का हो जाता है तथा इसमें दाने नजर आते हैं। दूध क्षारीय हो जाता है। काफी समय पश्चात् अयन से दूध आना बन्द हो जाता है तथा उससे पूरूलेन्ट द्रव्य निकलता है।

डा सोपारकर के अनुसार भारत में 16 से 20 प्रतिशत गायें और भैंसे क्षय रोग से ग्रसित हैं। लेकिन भारत मे इस रोग की प्रतिशत कम होने का कारण शायद यहां की तेज धूप और दूध को उबाल कर फिर काम में लेना है, जिनके कारण मल-मूत्र और दूध में होने वाले क्षय रोग के जीवाणु शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। क्षय रोग से ग्रसित गायों को निम्न तीन श्रेणियों में बाटा जा सकता है :—

1. जिन गायों की अयन क्षय रोग से ग्रसित हो, ऐसी गायों का दूध अगर स्वस्थ गायों के दूध में मिला दिया जाये तब भी यह सारा दूध क्षय रोग फैला सकता है।

2. जिन गायों की अयन एकदम ठीक हो लेकिन शरीर के दूसरे अंग क्षय रोग से ग्रसित हों तब भी उन पशु के दूध में क्षय रोग के जीवाणु पाये जा सकते है। ऐसी गायों का दूध भी खतरनाक होता है।

3. जिन गायो में क्षय रोग के लक्षण जरा भी नजर नही आएँ मगर ट्यूबरकुलिन परीक्षण करने पर क्षय रोग का पता चले तब ऐसी गायो के दूध को शक की निगाहों से देखा जाता है और ऐसा दूध पीने वाले को क्षय रोग हो सकता है।

क्षय रोग की रोकथाम के लिये ऊपर लिखे गये सभी प्रकार की क्षय-ग्रस्त गायों के दूध का उपयोग नहीं करना चाहिये। इन गायों को डेयरी से निकाल देना चाहिये ताकि स्वस्थ पशुओं और बछड़ों में यह रोग नही फैलने पाए। इसके लिये निम्न तरीके अपनाये जा सकते हैं—

1. गायो की समय-समय पर पूर्ण शारीरिक जाच करना। उनकी अयन, सूप्रा अयन और अन्य ग्रन्थियों की जांच करना। पशु की नाक, योनि के स्राव, दूध, मल-मूत्र की क्षय रोग के जीवाणुओं के लिये सूक्ष्मदर्शी परीक्षा या जैविक परीक्षा करना।

2. दूध को पॉसट्यूराइज (85° सी. पर बीस मिनट तक रखना) करके जीवाणुओं को समाप्त करना।

3. उस गाय का दूध बेचना अपराध करार दें जिसके दूध में क्षय रोग के जीवाणु मौजूद हों या अयन क्षय रोग से ग्रस्त हो।

4. ट्यूबरकुलिन परीक्षण की अभिक्रिया करने वाले और न करने वाले पशुओं को पृथक करें और बीमार पशुओ की सर्वथा अलग से व्यवस्था करें।

5. नये पशु डेयरी में लाने से पहले उसकी क्षय रोग के लिये जाच करें।

6. पशुघर खुले हों ताकि पशुओं को हर समय ताजी हवा मिलती रहे।

7. क्षय रोग से ग्रस्त पशु को डेयरी से हटा कर उसके मालिक के लिये मुआवजे की व्यवस्था करनी चाहिये।

(viii) थनैला रोग (Mastitis)

थनैला रोग दूध देने वाले पशुओं में उनके स्तन-ऊतक पर जीवाणु के आक्रमण के कारण होता है, किन्तु कुछ अन्य कारणो से भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है। इस रोग के कारण दूध खराब होने और अयन के ऊतकों को हानि होने के कारण बहुत अधिक आर्थिक क्षति होती है व इसके जीवाणुयुक्त व जीवविषों के कारण

मनुष्यों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस रोग के कारण प्रारम्भिक अवस्था में दूध मे कोई खास परिवर्तन केवल आख से दिखाई नही देता, मगर दूध में छोटे थक्के बनने लग जाते हैं, जो ध्यान से देखने पर कभी-कभी केवल आरम्भ के दूध की कुछ धारों में ही नजर आते हैं। कुछ समय पश्चात् जीवाणुओं के कारण अयन सूज जाता है और दूध थक्केयुक्त मट्ठे जैसा हो जाता है। इस रोग के कारण दूध का स्वाद, रंग, पी एच और उसके संघटन के पदार्थों की प्रतिशत में भी बदलाव हो जाता है और अनुचित दुर्गन्ध भी उत्पन्न हो जाती है। जैसे-जैसे बीमारी बढ़ती है पशु का दूध गाढ़ा लिसलिसा या फिर पानी के जैसा पतला और नमकीन स्वाद वाला एवं अरुचिकर हो जाता है। उसमे बने मक्खन मे गंध होती है और पनीर बनाने मे कठिनाई होती है। थनैला रोग कई किस्मों के जीवाणुओं द्वारा होता है, लेकिन मुख्यत: यह स्ट्रैप्टोकोकाई, स्टैफिलोकोकाई, कार्नीबैक्टीरियम पायोजिनिज, बैक्टीरियम कोलाई एवं डिप्थीरोइड जीवाणुओ द्वारा होता है।

थनैला रोग के पशु का दूध पीने पर मनुष्यों मे प्राय: चक्कर, उल्टी, दस्त, बुखार, मूर्छा जैसे लक्षण देखे जा सकते हैं। अत: इस रोग से पीड़ित पशुओ का दूध उबाले बिना पीने के उपयोग में नही लेना चाहिये क्योकि ऐसे दूध मे अक्सर जीवाणुओं के होने की संभावना बनी रहती है। संदूषित दूध द्वारा बच्चों व बड़ों मे स्कारलेट ज्वर एवं पूति-गलदाह (Septic sorethroat) जैसी बीमारियां फैलती हैं।

थनैला रोग की रोकथाम के लिये पशुओं के अयन का समय-समय पर मुआयना करते रहना चाहिये। इसके लिये अयन को थपथपा कर और दूध के आसान परीक्षण करके इस रोग का निदान करना चाहिये। अगर जरूरत हो तो प्रयोगशाला में दूध की परीक्षा करानी चाहिये, ताकि पशु के इस रोग का सही उपचार किया जा सके।

पशु मालिक या ग्वालो को गायों में थनैला रोग के लक्षण की जानकारी देनी चाहिये।

इस रोग का सही समय पर पता लगाने के लिये सभी गायों या दूध देने वाले पशुओं का दूध एक काले रग की उथली तश्तरी में लेकर उसमें सूक्ष्म थक्कों की मौजूदगी के लिये निरीक्षण किया जाना चाहिये।

संक्रमित गायों का दोहन सबसे बाद मे करना चाहिये।

ग्वालों को अपने हाथों को प्रत्येक गाय के दोहन से पूर्व धोते रहना चाहिये। ग्वालो को दूध द्वारा अपने हाथों को नम नही करना चाहिये।

थनो या अयन पर लगी चोट की तुरन्त व उचित चिकित्सा करनी चाहिये।

अयनों से निकले संक्रामक दूध या स्राव को जमीन पर नही दुहना चाहिये, बल्कि उन्हें इकट्ठा करके उपयुक्त विधि द्वारा नष्ट कर देना चाहिये। ऐसे दूध को पीने या अन्य काम के लिये उपयोग मे नही लाना चाहिये।

हाल ही में ब्यायी गयी तथा खरीदी गयी गायों के दूध की परीक्षा करनी चाहिये ताकि इस रोग का शीघ्र ही पता लगाया जा सके जिससे समय पर थनैला रोग का सही उपचार किया जा सके।

(ix) पाचन क्रिया में व्यवधान (Digestive disturbances)

कभी-कभी दूध देने वाली गायें जब सालमोनोला एन्टरीटिडिस, सालमोनेला वार डर्बलिन और सालमोनेला टाइफीमूरियम से पीडित होती हैं तो ये जीवाणु उनके गोबर द्वारा दूध मे पहुच जाते है और इनके कारण मनुष्यों मे भी यह रोग फैल जाता है। रोगग्रस्त गायों का उचित उपचार किया जाना चाहिये और उनके दूध को पॉसट्यूराइज करके ही काम में लिया जाना चाहिये।

(x) क्यू ज्वर ('Q' fever)

गायों व अन्य दूध देने वाले पशुओं में यह रोग रिकेटसिया बर्नेटी के जीवाणुओं द्वारा होता है। मनुष्यों मे भी यह रोग इन जीवाणुओं के दूषित दूध से हो सकता है। ये जीवाणु दूध को कुछ समय तक गर्म करने पर भी समाप्त नही होते। क्यू ज्वर के जीवाणुओं वाले दूध को अगर पूर्ण रूप से पॉसट्यूराइज नही किया जाये तब ये जीवाणु दूध मे जीवित रह जाते हैं और इस प्रकार यह दूषित दूध मनुष्यो के लिये बहुत ही हानिकारक होता है। इस बीमारी से पीड़ित होने पर मनुष्यो मे तेज ज्वर, सर्दी लगना व कमर का दर्द आदि लक्षण प्रायः देखे जा सकते हैं। ऐसे दूध को काफी समय तक उबालना चाहिये ताकि क्यू ज्वर के जीवाणु समाप्त हो जाए। इस बीमारी से पीड़ित पशु का सही इलाज करवाना चाहिये और ऐसे पशु के दूध को अच्छी तरह उबाल कर काम में लेना चाहिये। दुधारू पशुओं की समय-समय पर इस बीमारी के लिये जाच करवाते रहना चाहिये, ताकि इस बीमारी को मनुष्यो में फैलने से रोका जा सके।

(xi) एक्टीनोमाइकोसिस (Actinomycosis)

एक्टीनोमाइकोसिस बोविस से थनैला रोग उत्पन्न होता है और इस रोग के कारण अयन मे क्षय रोग के से लक्षण नजर आते है। इस रोग के स्पोर पशुओ के दाने, घास आदि पर पाये जाते है और इनसे भी हवा द्वारा ये जीवाणु दूध तक पहुंच कर उसे दूषित कर सकते हैं। वैसे सीधे तौर पर यह रोग मनुष्यो मे दूध द्वारा नही फैलता लेकिन दूध पीने वाले व्यक्ति के मुह या पेट व आतों मे खुला घाव हो तो इस बीमारी के जीवाणु मनुष्यो में रोग उत्पन्न कर सकते हैं। दूध में छोटे-छोटे, आलपीन के सिर के बराबर सफेद, पीले या हरे दाने नजर आते रहने के कारण पशु का दूध पीने के उपयोग में लेना ठीक नही रहता है। इन कणो को सूक्ष्मदर्शी के द्वारा देखने से इनमें फफूद दिखलाई पड़ती हैं। ये फफूद धागे के समान पतले होते है और इनमे अनेक शाखाए निकली रहती हैं। एक्टीनोमाइकोसिस बोविस का जब गिनीपिग के उदर मे इन्जेक्शन दिया जाता है तब इन्जेक्शन के स्थान पर एक गाठ बन जाती है।

(xii) मनुष्यों में दूध से उत्पन्न होने वाला रोग या डेयरी के जानवरो में ट्रेम्बल्स (Milk sickness in man or trembles in Dairy Animals)

मनुष्यों में दूध से उत्पन्न इस रोग का कारण उन गायों का दूध पीना है जिन्होंने कुछ विषैले पौधे खाये हों। पशुओं में यह रोग सफेद स्नेकरूट और जीमीवीड के खाने से उत्पन्न होता है और इस रोग को ट्रेम्बलस कहते है। इन पौधो मे ट्रीमीटोल नाम का विषैला पदार्थ होता है जो पशुओं में रोग पैदा करने की क्षमता रखता है।

इस रोग से ग्रसित पशुओं को चलने मे दिक्कत होती है तथा एक बार बैठने पर अपने आप खड़े होने में दिक्कत दरसाते है। कुछ समय पश्चात् पशुओं मे कंपकंपी, बेचैनी और लकवे आदि के लक्षण दिखाई देते है और बाद मे वे मर भी सकते है।

ऐसी गायो का दूध पीने पर मनुष्य भी बीमार हो जाते हैं और वे मर भी सकते है। मनुष्यो मे इस बीमारी के कारण कमजोरी, चक्कर आना, भूख न लगना, लगातार उल्टी होना, सांस लेने मे दिक्कत, शरीर का तापक्रम सामान्य से कम होना और पेट मे दर्द आदि लक्षण देखे जा सकते है। इस बीमारी के कारण मनुष्यो मे प्यास बढ जाती है, जीभ फूल जाती है और उस पर धारियां नजर आती है तथा चमड़ी रूखी दिखाई देने लगती है। जो व्यक्ति इस बीमारी के बाद ठीक हो जाये उसे काफी दिनों तक शारीरिक कमजोरी रहती है। अगर इस बीमारी के विषैलेपन से मनुष्य ठीक नही हो तो उसके कारण उसकी मृत्यु तक हो सकती है।

इस रोग से ग्रसित पशु का दूध उपयोग मे नहीं लेना चाहिये। दूध को पॉसट्यूराइज करने पर ट्रीमीटोल विष बहुत धीरे-धीरे समाप्त होता है, इसलिये यह विधि विष को निष्क्रय करने के लिये ज्यादा उपयुक्त नही रहती है।

(II) दूध द्वारा रोगी मनुष्यों से स्वस्थ मनुष्यों में फैलने वाले रोग :—

मनुष्यों मे होने वाले कुछ रोग के जीवाणु दूध द्वारा एक बीमार व्यक्ति से स्वस्थ व्यक्ति तक पहुंच सकते हैं और ये निम्न हैं —

(i) पोलियोमायलाइटिस (Poliomyelitis)

यह एक वायरस रोग है तथा मनुष्यों मे इस रोग के कारण ज्वर तथा लकवा हो जाता है। इस रोग की वायरस रोगी के नाक तथा मुख के स्राव में रहती है। रोगी जब भी हथेली मुख पर रखकर खांसता है तब इस रोग के जीवाणु कफ की बूंदो के द्वारा वायुमण्डल मे प्रवेश करते हैं तथा हथेली पर भी आ जाते हैं। फिर ऐसे व्यक्ति द्वारा दूध निकालने पर ये जीवाणु हथेली से या दूषित वायुमण्डल से दूध मे पहुंच जाते हैं। इस रोग के जीवाणु रोगी के मल में भी रहते हैं और इससे यह पानी तथा भोजन को भी दूषित करते रहते हैं। अगर इस वायरस से दूषित हुए

पानी का उपयोग दूध के बर्तन धोने या दूध देने वाले पशु के अयन या थन धोने के उपयोग में लाया जायें तो पोलियोमायलाटिस रोग की वायरस बडी आसानी से दूध तक पहुच कर उसको उपयोग मे लेने वाले बच्चों या बड़ों को पोलियो की बीमारी से पीड़ित कर सकती है। इस रोग से बचने के लिये दूध को उबालकर या पॉसट्यूराइज करने के बाद ही उपयोग में लाना चाहिये ।

(ii) हैजा (Cholera)

विब्रियो कौलेरा जीवाणु द्वारा केवल मनुष्यो मे ही हैजे का रोग होता है। इस जीवाणु का संक्रमण मुख के द्वारा होता है। इन जीवाणुओं के द्वारा संदूषित हुए भोजन, पानी और दूध के द्वारा इस रोग के जीवाणु मनुष्य के आन्त्र मे प्रवेश करते हैं। यह रोग मक्खी तथा वाहक (Carrier) द्वारा भी फैलता है। यह जीवाणु प्राय हैजे के रोगी के मल में मिलता है। इस रोग के जीवाणु बीमार मनुष्यो की गन्दी आदतों के कारण या मक्खी के कारण दूध को संदूषित करते है। अगर ऐसे दूध को ठीक से नहीं उबाल कर या पॉसट्यूराइज नही करके पीने के काम में लिया जाये तो यह रोग मनुष्यों में तुरन्त फैलता है। इस रोग के जीवाणु दूध मे ज्यादा समय तक जिन्दा नही रह सकते इसलिये संदूषित दूध द्वारा मनुष्यो में यह रोग महामारी के रूप में नही फैलता। इस रोग को दूध द्वारा फैलने से रोकने के लिये हैजे से पीड़ित रोगी को दूध के व्यवसाय से दूर रहना चाहिये तथा जो पानी, दूध व हाथ धोने के व पशु के थन धोने के काम में लाएँ वह पूर्ण रूप से शुद्ध व आरोग्यप्रद होना चाहिये। जल के अभाव में सूखी जगह पर यह जीवाणु ज्यादा समय तक जिन्दा नही रह सकता। चूने के एक प्रतिशत घोल में यह एक घंटे मे मर जाता है।

(iii) डिप्थीरिया (Diphtheria)

यह रोग बैसिलस डिप्थीरिया नाम के जीवाणु द्वारा होता है। यह रोग प्राय बच्चों मे होता है। रोगियों मे इस रोग के जीवाणु उनके कण्ठ, स्वरयंत्र, नाक, आख आदि मे रहते हैं तथा दूध निकालने के दौरान ये जीवाणु रोगियो के खासने, नाक साफ करने या बातें करते रहने से दूध तक पहुंचते है। ये जीवाणु दूध मे बढोतरी भी करते रहते हैं और इसके कारण दूध में कुछ भी खराबी नजर नही आती। ये जीवाणु दूध को उबालने पर समाप्त हो जाते है।

इस रोग के कारण रोगी के कण्ठ में झिल्ली बनने से उसे सांस लेने मे कठिनाई होती है। यह जीवाणु रोगी के शरीर मे बहिर्जीव-विष उत्पन्न करता है। इस विष के कारण हृत्पेशी (Myocardium) तथा तंत्रिका संस्थान मे विकृति होती है जिससे हृदय गति रुक सकती है या लकवा भी हो सकता है।

इस रोग को फैलने से बचाने के लिये दूध के व्यवसाय मे डिप्थीरिया के रोगी या इस रोग से ठीक हुए व्यक्ति को दूध दुहने या वितरण के काम मे नही लिया

जाना चाहिये। इस रोग से ठीक हो जाने के बाद भी रोगी के कण्ठ में काफी समय तक ये जीवाणु मिल सकते हैं। ऐसे लोगों को केरियर कहा जाता है। इस रोग को दूध द्वारा फैलाने में कैरियर का प्रमुख हाथ होता है। दूध को उबाल कर या पॉसट्यूराइज करके उपयोग में लेना चाहिये।

(iv) डिसेन्ट्री (Dysentery)

बैसिलस डिसेन्ट्री रोग के जीवाणु रोगग्रस्त व्यक्ति से दूध द्वारा स्वस्थ लोगों तक पहुच कर उनमें डिसेन्ट्री उत्पन्न करते हैं। यह रोग बच्चों में ज्यादा पाया जाता है। यह रोग अक्सर जीवाणुयुक्त बिना गर्म किये हुए दूध को पीने पर होता है। इस रोग के कारण बच्चो मे मृत्यु तक हो सकती है। इसलिये जब भी इस तरह का रोग बच्चों मे फैले तब पूर्ण सावधानी के साथ बीमार रोगी का पता लगाने की कोशिश करनी चाहिये ताकि उसके द्वारा दूध को संदूषित होने से बचाया जा सके।

(v) आहार विषायण (Food Poisoning)

आहार विषायण से संबंधित रोग के जीवाणु भी दूध में ठीक उसी प्रकार आ सकते हैं जैसे कि दूसरी बीमारियो वाले जीवाणु दूध तक पहुंचते हैं। इनमें बहिर्जीव-विष पैदा करने वाला स्टैफिलोकोकस ओरियस जीवाणु प्रमुख है तथा यह जीवाणु दूध मे गायों से या मनुष्यों से आता है। अगर दूध पूर्णतया ठीक से ठंडा करके नही रखा जाये तो यह जीवाणु दूध मे बहिर्जीवविष उत्पन्न करता रहता है। ऐसे दूध को उबालने पर ये जीवाणु तो नष्ट हो जाते हैं मगर उन के द्वारा पैदा किये गये विष पर कुछ भी प्रभाव नही पडता। ऐसे दूध को पीने पर उस व्यक्ति को पेचिस और पेट-दर्द आदि की शिकायत रहती है। दूध, रोग ग्रस्त व्यक्ति या केरियर द्वारा भी संदूषित हो सकता है और ये जीवाणु दूध मे बढोतरी करके बहिर्जीवविष बनाते रहते हैं। इससे बचने के लिये डेयरी में काम करने वाले लोगों का पूर्णतया स्वस्थ होना जरूरी है और दूध के काम मे आने वाले बर्तन व पानी का साफ होना भी जरूरी है ताकि आहार विषायण जीवाणु दूध तक नही पहुंच सकें।

(vi) टायफोयड ज्वर (Typhoid fever)

मनुष्यों में यह रोग बैसिलस टायफोसस के कारण होता है। यह रोग पशुओं मे नही होता। मनुष्य के शरीर मे ये जीवाणु भोजन, जल या दूध द्वारा प्रवेश करते हैं। मनुष्य जब टायफोयड ज्वर से ठीक हो जाता है तब भी उसके आंत्र मे इस रोग के जीवाणु काफी लम्बे काल तक रहते है और ये उसके मल द्वारा शरीर से बाहर निकलते रहते हैं। कुछ रोगियो के पित्ताशय (Gall bladder) में ये जीवाणु अनेक वर्षों तक रहते हैं, खासकर स्त्रियो के पित्ताशय में। ऐसे रोगियो को केरियर कहते हैं। दूध द्वारा इस रोग को फैलने में मक्खियों की खास भूमिका है। ये जीवाणु रोगी के मूत्र के द्वारा भी शरीर से बाहर निकलते रहते हैं।

जैसा कि विदित है टायफोयड रोग पानी द्वारा फैलता है, ठीक उसके बाद दूध का भी दूसरा स्थान है जिससे इस रोग के जीवाणु मनुष्यों तक पहुंच कर उनमें रोग उत्पन्न करते हैं। इस रोग के जीवाणु पानी में रहने पर उसके द्वारा धोये गये किसी भी दूध के बर्तन में रह कर मनुष्यों तक पहुंच जाते हैं। जो व्यक्ति टायफोयड रोग से पीड़ित हों या केरियर हों उनके द्वारा भी दूध का संदूषण होता है और लोगों में टायफोयड रोग दूध द्वारा फैलता रहता है।

टायफोयड रोग के जीवाणु दूध में अपनी बढ़ोतरी करते रहते हैं मगर ऐसा तब होता है जब दूध का तापक्रम 37° सी. के आसपास हो। किन्तु जब दूध दुहने के बाद अगर उसे तुरन्त ठंडा किया जाये तो दूध में ये जीवाणु ज्यादा मात्रा में अपनी बढोतरी नही कर सकते। अगर दूध मे इन जीवाणुओं की संख्या बहुत बढ़ जाये तो भी उस दूध के रंग, स्वाद व सामान्य गुणों में कोई परिवर्तन नही दिखाई देता। दूध मे यह क्रीम के साथ-साथ उसकी सतह तक आ जाते हैं और इस सदूषित क्रीम को खाने पर रोग उत्पन्न होते हैं। दूध द्वारा इस रोग को फैलने से रोकने के लिये टायफोयड रोगी व केरियर को दूध दुहने या वितरण आदि काम नही करने देना चाहिये। बर्तन आदि धोने के लिये साफ पानी का उपयोग करना चाहिये। दूध दुहने के बाद तुरन्त ठंडा करके रखना चाहिये। अगर दूध मे टायफोयड रोग के जीवाणु हों तो वे दूध को 60° सी. पर दो मिनट तक गर्म करने पर समाप्त हो जाते हैं। डेयरी मे मक्खियों का नियंत्रण करने के लिये उचित उपाय काम में लाने चाहिये, ताकि वे दूध तक टायफोयड रोग के जीवाणु न ले जा सकें।

(vii) पैराटायफोयड ज्वर (Paratyphoid fever)

यह रोग साल्मोनीला पैराटायफी नाम के जीवाणुओं द्वारा होता है। यह रोग दूध द्वारा मनुष्यों में फैलता है मगर इस रोग के फैलने की प्रतिशत टायफोयड रोग के मुकाबले में कम होती है। इस रोग के जीवाणुओं के फैलने का तरीका भी ठीक टायफोयड के रोग के जीवाणुओं के जैसा ही है तथा इस रोग को नियंत्रित करने का तरीका भी एक जैसा ही होता है।

(viii) स्कारलेट ज्वर (Scarlet fever)

इस रोग से ग्रसित हुए या रोग के केरियर व्यक्ति द्वारा इस रोग के जीवाणु दूध तक पहुंच कर उसका उपयोग करने वाले लोगों मे स्कारलेट ज्वर उत्पन्न करते हैं। यह रोग स्ट्रेप्टोकोकस हिमोलिटिकस के कारण होता है। इस रोग से बचने के लिये बीमार व केरियर व्यक्ति को दूध दुहने व इसके वितरण से अलग रहना चाहिये ताकि रोग के जीवाणुओं को दूध तक पहुंचने से रोका जा सके। दूध को उपयोग में लाने से पहले पॉसट्यूराइज करने से इस रोग को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

जैसा कि विदित है टायफौयड रोग पानी द्वारा फैलता है, ठीक उसके बाद दूध का भी दूसरा स्थान है जिससे इस रोग के जीवाणु मनुष्यों तक पहुंच कर उनमें रोग उत्पन्न करते हैं। इस रोग के जीवाणु पानी में रहने पर उसके द्वारा धोये गये किसी भी दूध के बर्तन में रह कर मनुष्यो तक पहुंच जाते हैं। जो व्यक्ति टायफौयड रोग से पीड़ित हों या केरियर हों उनके द्वारा भी दूध का संदूषण होता है और लोगों मे टायफौयड रोग दूध द्वारा फैलता रहता है।

टायफौयड रोग के जीवाणु दूध में अपनी बढोतरी करते रहते हैं मगर ऐसा तब होता है जब दूध का तापक्रम 37° सी. के आसपास हो। किन्तु जब दूध दुहने के बाद अगर उसे तुरन्त ठंडा किया जाये तो दूध में ये जीवाणु ज्यादा मात्रा मे अपनी बढोतरी नही कर सकते। अगर दूध मे इन जीवाणुओं की संख्या बहुत बढ़ जाये तो भी उस दूध के रंग, स्वाद व सामान्य गुणों मे कोई परिवर्तन नही दिखाई देता। दूध मे यह क्रीम के साथ-साथ उसकी सतह तक आ जाते हैं और इस संदूषित क्रीम को खाने पर रोग उत्पन्न होते हैं। दूध द्वारा इस रोग को फैलने से रोकने के लिये टायफौयड रोगी व केरियर को दूध दुहने या वितरण आदि काम नही करने देना चाहिये। बर्तन आदि धोने के लिये साफ पानी का उपयोग करना चाहिये। दूध दुहने के बाद तुरन्त ठंडा करके रखना चाहिये। अगर दूध मे टायफौयड रोग के जीवाणु हों तो वे दूध को 60° सी. पर दो मिनट तक गर्म करने पर समाप्त हो जाते हैं। डेयरी में मक्खियो का नियंत्रण करने के लिये उचित उपाय काम मे लाने चाहिये, ताकि वे दूध तक टायफौयड रोग के जीवाणु न ले जा सकें।

(vii) पैराटायफौयड ज्वर (Paratyphoid fever)

यह रोग सालमोनीला पैराटायफी नाम के जीवाणुओं द्वारा होता है। यह रोग दूध द्वारा मनुष्यों में फैलता है मगर इस रोग के फैलने की प्रतिशत टायफौयड रोग के मुकाबले में कम होती है। इस रोग के जीवाणुओं के फैलने का तरीका भी ठीक टायफौयड के रोग के जीवाणुओं के जैसा ही है तथा इस रोग को नियन्त्रित करने का तरीका भी एक जैसा ही होता है।

(viii) स्कारलेट ज्वर (Scarlet fever)

इस रोग से ग्रसित हुए या रोग के केरियर व्यक्ति द्वारा इस रोग के जीवाणु दूध तक पहुंच कर उसका उपयोग करने वाले लोगो मे स्कारलेट ज्वर उत्पन्न करते हैं। यह रोग स्ट्रेप्टोकोकस हिमोलिटिकस के कारण होता है। इस रोग से बचने के लिये बीमार व केरियर व्यक्ति को दूध दुहने व इसके वितरण से अलग रहना चाहिये ताकि रोग के जीवाणुओं को दूध तक पहुंचने से रोका जा सके। दूध को उपयोग मे लाने से पहले पॉसट्यूराइज करने से इस रोग को आसानी से नियन्त्रित किया जा सकता है।

जाना चाहिए। इस रोग से ठीक हो जाने के बाद भी रोगी के कण्ठ में काफी समय तक ये जीवाणु मिल सकते हैं। ऐसे लोगों को केरियर कहा जाता है। इस रोग को दूध द्वारा फैलाने में केरियर का प्रमुख हाथ होता है। दूध को उबाल कर या पॉश्चराइज करके उपयोग में लेना चाहिये।

(iv) डिसेन्ट्री (Dysentery)

बैसिलस डिसेन्ट्री रोग के जीवाणु रोगग्रस्त व्यक्ति से दूध द्वारा स्वस्थ लोगों तक पहुंच कर उनमें डिसेन्ट्री उत्पन्न करते हैं। यह रोग बच्चों में ज्यादा पाया जाता है। यह रोग अक्सर जीवाणुयुक्त बिना गर्म किये हुए दूध को पीने पर होता है। इस रोग के कारण बच्चों में मृत्यु तक हो सकती है। इसलिये जब भी इस तरह का रोग बच्चों में फैले तब पूर्ण सावधानी के साथ बीमार रोगी का पता लगाने की कोशिश करनी चाहिये ताकि उसके द्वारा दूध को संदूषित होने से बचाया जा सके।

(v) आहार विषायण (Food Poisoning)

आहार विषायण से संबंधित रोग के जीवाणु भी दूध में ठीक उसी प्रकार आ सकते हैं जैसे कि दूसरी बीमारियों वाले जीवाणु दूध तक पहुंचते हैं। इनमें बहिर्जीव-विष पैदा करने वाला स्टैफिलोकोकस ऑरियस जीवाणु प्रमुख है तथा यह जीवाणु दूध में गायों से या मनुष्यों से आता है। अगर दूध पूर्णतया ठीक से ठंडा करके नहीं रखा जाये तो यह जीवाणु दूध में बहिर्जीवविष उत्पन्न करता रहता है। ऐसे दूध को उबालने पर ये जीवाणु तो नष्ट हो जाते हैं मगर उन के द्वारा पैदा किये गये विष पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसे दूध को पीने पर उस व्यक्ति को पेचिस और पेट-दर्द आदि की शिकायत रहती है। दूध, रोग ग्रस्त व्यक्ति या केरियर द्वारा भी संदूषित हो सकता है और ये जीवाणु दूध में बढ़ोतरी करके बहिर्जीवविष बनाते रहते हैं। इससे बचने के लिये डेयरी में काम करने वाले लोगों का पूर्णतया स्वस्थ होना जरूरी है और दूध के काम में आने वाले बर्तन व पानी का साफ होना भी जरूरी है ताकि आहार विषायण जीवाणु दूध तक नहीं पहुंच सकें।

(vi) टायफोयड ज्वर (Typhoid fever)

मनुष्यों में यह रोग बैसिलस टायफोसस के कारण होता है। यह रोग पशुओं में नहीं होता। मनुष्य के शरीर में ये जीवाणु भोजन, जल या दूध द्वारा प्रवेश करते हैं। मनुष्य जब टायफोयड ज्वर से ठीक हो जाता है तब भी उसके आन्त्र में इस रोग के जीवाणु काफी लम्बे काल तक रहते हैं और ये उसके मल द्वारा शरीर से बाहर निकलते रहते हैं। कुछ रोगियों के पित्ताशय (Gall bladder) में ये जीवाणु अनेक वर्षों तक रहते हैं, खासकर स्त्रियों के पित्ताशय में। ऐसे रोगियों को केरियर कहते हैं। दूध द्वारा इस रोग को फैलने में मक्खियों की खास भूमिका है। ये जीवाणु रोगी के मूत्र के द्वारा भी शरीर से बाहर निकलते रहते हैं।

जैसा कि विदित है टायफौयड रोग पानी द्वारा फैलता है, ठीक उसके बाद दूध का भी दूसरा स्थान है जिससे इस रोग के जीवाणु मनुष्यों तक पहुंच कर उनमें रोग उत्पन्न करते है। इस रोग के जीवाणु पानी में रहने पर उसके द्वारा धोये गये किसी भी दूध के वर्तन में रह कर मनुष्यों तक पहुच जाते है। जो व्यक्ति टायफौयड रोग से पीड़ित हो या केरियर हों उनके द्वारा भी दूध का संदूषण होता है और लोगों में टायफौयड रोग दूध द्वारा फैलता रहता है।

टायफौयड रोग के जीवाणु दूध में अपनी बढ़ोतरी करते रहते है मगर ऐसा तब होता है जब दूध का तापक्रम 37° सी. के आसपास हो। किन्तु जब दूध दुहने के बाद अगर उसे तुरन्त ठंडा किया जाये तो दूध मे ये जीवाणु ज्यादा मात्रा में अपनी बढ़ोतरी नही कर सकते। अगर दूध मे इन जीवाणुओं की संख्या बहुत बढ जाये तो भी उस दूध के रंग, स्वाद व सामान्य गुणों मे कोई परिवर्तन नही दिखाई देता। दूध में यह क्रीम के साथ-साथ उसकी सतह तक आ जाते हैं और इस सदूषित क्रीम को खाने पर रोग उत्पन्न होते हैं। दूध द्वारा इस रोग को फैलने से रोकने के लिये टायफौयड रोगी व केरियर को दूध दुहने या वितरण आदि काम नही करने देना चाहिये। बर्तन आदि धोने के लिये साफ पानी का उपयोग करना चाहिये। दूध दुहने के बाद तुरन्त ठंडा करके रखना चाहिये। अगर दूध में टायफौयड रोग के जीवाणु हों तो वे दूध को 60° सी. पर दो मिनट तक गर्म करने पर समाप्त हो जाते हैं। डेयरी मे मक्खियों का नियंत्रण करने के लिये उचित उपाय काम मे लाने चाहिये, ताकि वे दूध तक टायफौयड रोग के जीवाणु न ले जा सकें।

(vii) पैराटायफौयड ज्वर (Paratyphoid fever)

यह रोग साल्मोनीला पैराटायफी नाम के जीवाणुओं द्वारा होता है। यह रोग दूध द्वारा मनुष्यों में फैलता है मगर इस रोग के फैलने की प्रतिशत टायफौयड रोग के मुकाबले मे कम होती है। इस रोग के जीवाणुओं के फैलने का तरीका भी ठीक टायफौयड के रोग के जीवाणुओं के जैसा ही है तथा इस रोग को नियंत्रित करने का तरीका भी एक जैसा ही होता है।

(viii) स्कारलेट ज्वर (Scarlet fever)

इस रोग से ग्रसित हुए या रोग के केरियर व्यक्ति द्वारा इस रोग के जीवाणु दूध तक पहुंच कर उसका उपयोग करने वाले लोगों में स्कारलेट ज्वर उत्पन्न करते हैं। यह रोग स्ट्रेप्टोकोकस हिमोलिटिकस के कारण होता है। इस रोग से बचने के लिये बीमार व केरियर व्यक्ति को दूध दुहने व इसके वितरण से अलग रहना चाहिये ताकि रोग के जीवाणुओं को दूध तक पहुंचने से रोका जा सके। दूध को उपयोग मे लाने से पहले पॉसट्यूराइज करने से इस रोग को आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।

(ix) मानवीय प्रकार का क्षय रोग (Human Type of Tuberculosis)

मनुष्य में प्रायः मानवीय प्रकार के जीवाणु का संक्रमण होता है। यह रोग माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्यूलोसिस (मानवीय प्रकार) के जीवाणुओं के कारण होता है। इसके कारण मनुष्य में प्रायः फुफ्फुस में विकृति पैदा हो जाती है। पशुओं के दूध के द्वारा मानवीय प्रकार के क्षय रोग से बचने के लिये क्षय रोग से पीड़ित व्यक्ति को न तो दूध दुहना चाहिये और न ही दूध के उपयोग मे लाये जाने वाले बर्तनों आदि के सम्पर्क मे आना चाहिये। डेयरी मे काम करने वाले सभी व्यक्तियों की समय-समय पर क्षय रोग के लिये जाच की जानी चाहिये।

बीमार व्यक्ति से इस रोग के जीवाणु दूध में खांसी, नाक साफ करते समय या सीधे ही सम्पर्क द्वारा पहुंच सकते हैं। दूध को पॉसट्यूराइज करके काम में लेने पर इस बीमारी के जीवाणु अगर दूध में हो तो वे प्रायः मर जाते हैं और ऐसा दूध स्वास्थ्य को हानि नही पहुचाता।

III दूध से मनुष्यों में फैलने वाली अन्य बीमारियां

(i) आमाशय व आन्त्र की बीमारियां (Gastro intestinal diseases)

भैस या गाय का दूध पीने से बच्चों में प्रायः आमाशय व आन्त्र की बीमारियां होती रहती है और इसके कारण नवजात शिशुओ में मौत की प्रतिशत काफी ज्यादा है। स्वच्छता का पूर्ण ज्ञान नही होने के कारण पशुओं के मल-मूत्र से दूध का सदूषण होता रहता है और उसमें ई. कोलाई के अलावा कई किस्म के जीवाणु होते हैं जिनसे खासकर बच्चो मे दूध पीने से काफी हानियाँ होती हैं।

(ii) दूध – विषायण या गेलक्टो विष (Milk poisoning or Galacto toxin)

नीचे दिये गये तरीकों द्वारा विषाक्त पदार्थ दूध तक पहुंचते हैं :–

(ए) जब दूध को किसी तांबे के बर्तन मे रखा जाता है तब वह धातु प्रायः दूध में मिल जाती है जो शरीर के लिए उपयुक्त नही होती है।

(बी) दुधारू पशुओ के खाने मे विषाक्त पदार्थ आ जाने से वे दूध द्वारा भी शरीर से बाहर निकलते हैं। इससे पशु तथा दूध के उपभोक्ता दोनो की सेहत पर बुरा असर पड़ता है। ऐसा अक्सर पशुओं द्वारा विषाक्त वीड के खाने के कारण होता है।

कभी-कभी पशुओं द्वारा सब्जी के खा जाने पर उनके दूध मे कुछ तत्व ऐसे प्रवाहित होकर आते हैं जिससे उसका उपयोग करने वाले व्यक्ति को पेट की गड़बड की शिकायत पैदा हो जाती है।

(सी) कभी-कभी पशुओ के शरीर से दूध मे विषैले पदार्थ आ जाते है। ये पदार्थ आयोडीन, सेलिसिलिक अम्ल, ईथर, पारा, एस्परिन और आर्सेनिक आदि

हैं जो पशुओं को उनके रोगों के उपचार के लिये दवाई के रूप मे दिये जाते हैं और जब इनकी मात्रा दवाई के रूप में ज्यादा हो तो ये दूध मे पहुंच कर उसके उपयोग करने वाले व्यक्ति को काफी हानि पहुंचाते हैं।

(डी) दूध मे कुछ तरह के जीवाणुओ द्वारा विषैले पदार्थ छोडे जाते रहते है। इन विषैले पदार्थों के कारण मनुष्यों में कई किस्म के रोग उत्पन्न हो जाते है।

दूध प्रदूषण के कारण

1. पशुओं से
   - (i) रोगग्रस्त अयन से।
   - (ii) पशुओ के अयन या थन पर अथवा दूध दुहने वाले व्यक्ति के हाथो पर होने वाले घाव मे।
   - (iii) दूध में पशु के शरीर से गिरने वाली जीवाणुयुक्त मिट्टी, गोबर और मूत्र द्वारा।
   - (iv) अयन से दूध मे आने वाली दवाइयां जैसे पारा, सीसा, तांबा, बोरिक ऐसिड क्रोटोन तेल, मार्फीन, इस्टीकनीन, एट्रोपीन, फार्मेलिन, कार्बोलिक ऐसिड, टरपनटाइन, आयोडीन और एंटीबायोटिक्स आदि।
2. दूध दुहने व इस कार्य में लगे व्यक्तियो द्वारा
   - (i) जब दूध दुहने वाला या उसे ले आने वाला अथवा उसे बेचने वाला व्यक्ति दूध से फैलने वाली बीमारी से ग्रसित हो। रोगग्रस्त व्यक्ति के हाथ व म्यूकस द्वारा दूध का संदूषण होना।
   - (ii) रोगग्रस्त व्यक्ति द्वारा दूध के बर्तन और किसी यंत्र का संदूषित होना।
3. दूषित पानी द्वारा
   - (i) दूषित पानी को पशु के अयन, थन, बर्तन धोने या दूध को ठंडा करने के काम मे लेना।
4. पशु आवास की दूषित हवा
   - (i) पशु आवासो मे मनुष्यो या पशुओ के द्वारा आये रोगों के जीवाणुओं मे उत्पन्न दूषित हवा द्वारा दूध का संदूषण।
5. मक्खियों द्वारा
   - (i) मक्खियो द्वारा बहुत से रोगों के जीवाणु दूध मे आ सकते है जैसे टायफॉयड,

		पैराटायफोयड, क्षय रोग, एन्थ्रैक्स और डिप्थीरिया आदि।
6 घरों में दूध का संदूषण	(i)	रोगग्रस्त व्यक्ति द्वारा दूध के जग या बोतल से दूध पीना और फिर इस संदूषित दूध का उपयोग दूसरे उपभोक्ता द्वारा किया जाना।
	(ii)	समय पर दूध को उबाल कर या ठंडी जगह न रखना या उसे खुले में छोड़ देना।

दूध को प्रदूषित होने से बचाने व नियंत्रण के उपाय :-

दूध को जीवाणुओं व अन्य विषैले पदार्थों से दूषित होने से बचाने के लिये यह ख्याल रखना जरूरी है कि जीवाणु और विषैले पदार्थ दूध तक न पहुंचने पाएं और इसके लिये पशुओं का ठीक ढंग से मुआयना करना जरूरी होता है। वे किसी ऐसे रोग से ग्रसित न हो जिसके जीवाणु दूध में आ सकें या उनका इलाज किसी ऐसी दवाई से न किया जा रहा हो जो कि शरीर से दूध द्वारा बाहर निकलती हो। दूध दूषित होने के और भी कई कारण है और इसके लिये निम्नलिखित तरीके अपनाकर दूध की स्वच्छता कायम रखी जा सकती है :-

I पशुघरों में दूध को संदूषित होने से बचाना :-

1 स्वस्थ पशु का दूध ही काम मे लेना।

2 अयन और थन धोने के लिये साफ पानी का उपयोग करना।

3. गीले कपड़े द्वारा पशु के शरीर के पिछले हिस्से, अयन और थनों को पोंछना।

4. पशुघर में वेन्टीलेशन के लिये सही तरीका अपनाना।

5. पशुघर से मल-मूत्र की निकासी का सुनियोजित ढंग से प्रबन्ध करना।

6. पशुघरों में मक्खियों को आने से रोकने के प्रबन्ध करना।

7. पशुघर मे प्रकाश का पूर्ण प्रबन्ध करना।

8. दूध दुहने के लिये छोटे मुंह वाले बर्तन का उपयोग करना।

9. दूध दुहने वाले व्यक्ति द्वारा हाथ साफ तरीके से धोना व साफ कपड़े पहनना।

10 दूध दुहने वाला व्यक्ति पूर्णतया स्वस्थ हो तथा उसके हाथ व अंगुलियों पर किसी तरह का घाव न हों।

11. सही तरीके से दूध को निकालना।

12. दूध की पहली कुछ धारें काम मे नहीं लेना।

13. दूध दुहने के बाद उसे ठंडी जगह में इकट्ठा करके रखना।

II. दूध को वितरण के समय संदूषण से बचाना :–

1. दूध को साफ बर्तन में रखना।

2. दूध को ढंक कर रखना।

3. वितरण के दौरान दूध ठंडा रखना जिससे उसमें जीवाणुओ की संख्या में वृद्धि न होने पाए।

4. अगर दूध वितरण में समय लगे तो उसे उबाल कर ठंडा करने से उसमें होने वाले जीवाणुओं में कमी होगी और दूध ज्यादा समय तक रखा जा सकेगा।

III. घरों में दूध को संदूषित होने से बचाना :–

1. साफ बर्तन में दूध लें। तांबे के बर्तन में दूध संग्रह करके नही रखें।

2. दूध को ठीक समय पर गर्म करें और ठंडा होने पर ढंक कर रखें।

IV. अन्य उपाय :—

दूषित दूध द्वारा जो बीमारियां फैलती हैं वे ठीक उसी तरह हैं जैसे कि दूषित पानी द्वारा फैलती हैं। पानी से फैलने वाले रोग उस जगह के पूर्ण समुदाय मे फैलते है, मगर दूध द्वारा फैलने वाले रोग एक ही जगह मे न होकर उन सभी व्यक्तियों मे फैलते हैं जो उस शहर मे किसी एक ग्वाले से या डेयरी से ही दूध लेते हों। ऐसी अवस्था में उपभोक्ताओं को प्रदूषित दूध का उपयोग नही करना चाहिये।

उन सभी बीमार पशु या ग्वालों या अन्य व्यक्तियों को जिनके कारण दूध द्वारा बीमारियां फैलती हों, डेयरी से तुरन्त हटा देना चाहिये ताकि शहर के लोगों में दूध द्वारा बीमारिया न फैल सकें। ऐसे रोग उन परिवारो मे ही फैलेंगे जो दूषित दूध का उपयोग करते हैं। ये बीमारियां कम समय में ही कुछ खास जगहों मे फैलेंगी और उनके फैलने में भी कम समय लगता है। ये बीमारियां उन लोगो में ज्यादा होंगी जो दूध का उपयोग ज्यादा करते है और इनमे बच्चों के बीमार होने की तादाद हमेशा ज्यादा रहती है।

दूध के प्रदूषण से फैलने वाली बीमारियों को रोकने के लिये दूध के व्यवसाय में लगे लोगों और उनके परिवार के सदस्यों का तथा पशुओं के स्वास्थ्य का समय-समय पर मुआयना करते रहना चाहिये। दूध के काम मे लाये जाने वाले बर्तनों का स्टरलाइजेशन ठीक से करना चाहिये। डेयरी के व्यवसाय के लिये शुद्ध व आरोग्यप्रद पानी का उपयोग करना चाहिये। दूध को पॉसट्यूराइज करके ही वितरित किया जाना चाहिये।

मांस

भारत में अक्सर भेड़ और बकरे के मांस का उपयोग खाने के लिये किया जात है। सूअर का मांस भी इस देश में खाने के लिये काम में लिया जाता है पर यह इतन प्रचलित नहीं है। आज के इस आधुनिक युग में स्वस्थ तथा पूर्ण रूप से विकसि शारीरिक संगठन रखना वाले युवा उम्र के पशुओं का मांस खाने के लिये पसंद कि जाता है। दूध देने वाले प्राणी के अंगों के खाने या न खाने लायक भाग और खाने काम में आने वाले अंगों और ग्रन्थियों को मांस कहते हैं। मांस प्रोटीन का एक अच् स्रोत है (सूअर में 15 प्रतिशत, बकरी व भेड़ में 20 प्रतिशत) और इसमें मान शरीर के जरूरत के अमिनो ऐसिड होते हैं। इनके कारण शरीर का ताप बना रखने में और ऊर्जा उत्पादन में काफी सहायता मिलती है। इसमें वसा की काफ मात्रा रहती है जिससे मांस खाने के बाद काफी लम्बे अरसे तक भूख नहीं लगती मांस के मुकाबले सब्जी में होने वाले प्रोटीन पेट में जल्दी ही पच जाने के कारण य ज्यादा समय तक नहीं रुकते और इसके कारण भूख जल्दी लगती है। मांस में 7 से 80 प्रतिशत पानी तथा 20 से 28 प्रतिशत ठोस पदार्थ होते हैं।

मांस जीवाणुओं के कारण जब सड़ने लगता है तब यह पीला, गीला, मुलाय चिपचिपा हो जाता है तथा इससे खराब गंध आने लगती है। कुछ समय पश्चा इसका रंग हरा हो जाता है। ऐसे मांस की मांस-पेशियां जब खींचते हैं तब ये आसा से फट जाती हैं। कभी-कभी मांस खराब होने पर सतह में तो ठीक दिखाई देता मगर चाकू से काटकर भीतर से सूंघने पर उसमें गंध महसूस होती है। अच्छे व ता मांस को अगर चाकू से काटे तो मांस पर चाकू का दबाव एक समान देने से वह बि रुकावट कट जायेगा, जबकि खराब मांस पर कुछ ज्यादा दबाव लगाना पड़ेगा औ अगर किसी बीमारी के कारण कोई गांठ आदि हो तो ऐसे मांस को काटने में चा का काफी जोर लगाना पड़ेगा।

भारत में लोग खाद्य पदार्थों की स्वच्छता पर ज्यादा ध्यान नहीं देते हैं औ फिर कभी-कभी उनको यह पता भी नहीं होता कि रुग्ण मांस को छूने व खाने उनको पशुओं की क्या-क्या बीमारियां हो सकती है। आमतौर पर मांस खाने वा व्यक्ति यह मान कर चलते हैं कि वे जो भी मांस बाजार से खरीदते है उसे पूर्ण रूप

जांच के बाद ही बेचने के लिये आने दिया जाता है। मगर आम जनता को यह ख्याल रखना होगा कि जो भी मांस बाजार में खाने के लिये दूकानो पर मिलता है वह शुद्ध और आरोग्य है या नही है। क्योंकि अक्सर कसाई और मास के व्यवसाय मे लगे अन्य लोग घटिया व बीमारी से ग्रसित पशु का मास बाजार में बेचने की कोशिश करते हैं, या फिर यह मांस किसी दुर्घटना मे मरे हुए पशु का भी हो सकता है। वे ऐसे पशुओं का मांस भी बेच सकते हैं जो बीमार हो और उनकी ठीक होने की कुछ भी गुजाइश नही हो या फिर उन पशुओं मे ऐसी बीमारिया हो जिनके मांस खाने से मनुष्यों मे रोग उत्पन्न होते हो। खराब गन्ध वाला या सड़ा हुआ मांस भी कभी-कभी बेचा जाता है। बकरे के मांस को भेड़ के मांस के नाम से बेचकर भी ज्यादा पैसा कमाया जा सकता है। पशुओं से मनुष्यो मे फैलने वाले रोगों को जोआनूओटिक रोग कहते हैं। पशुओ के मांस द्वारा ये रोग मनुष्यों मे रोगग्रस्त पशु के मांस को छूने से या उसे खाने से फैलते हैं। कभी-कभी मांस मे जीवाणुओ द्वारा विषैले पदार्थ छोड़ दिये जाते हैं और ऐसे मांस को खाने पर भी मनुष्यों में बीमारिया उत्पन्न हो जाती हैं। कुछ अन्य कारण जैसे मांस मे किसी खास व्यक्ति को ऐलर्जी रोग का होना और मनुष्यो में मांस में पाये जाने वाले विषैले रासायनिक पदार्थों का होना भी है।

वधशाला मे कसाई व अन्य काम करने वालो को दुर्घटनाओ से खतरा बना ही रहता है, जैसे चिकनी फर्श के कारण फिसलकर गिरना, पशुओ द्वारा चोट पहुंचाना और चाकू से चमड़ी का कटना। इन कारणों से जब वधशाला में वहा पर कार्य करने वालों के शरीर की चमडी पर जब भी खरोच आती है तब इन घावो के द्वारा मांस मे रोग फैलाने वाले जीवाणुओं से रोग लगने का खतरा रहता है। निम्न प्रकार के रोग मांस को छूने या खाने से मनुष्यो में हो सकते हैं :–

1. मांस द्वारा मनुष्यों में फैलने वाले पशुओं के रोग :-

संक्रामक जीवाणु/ अन्य कारण	जीवाणुओं की किस्म/ अन्य कारण	बीमारी
	(I) दूषित मांस के सम्पर्क से मनुष्यो में फैलने वाले पशुओं के रोग	
वायरस	संक्रामक फुंसीयुक्त त्वचा-शोथ वायरस	संक्रामक फुंसीयुक्त त्वचा-शोथ
	भेड की मस्तिष्क-सुषुम्ना शोथ वायरस	भेड में मस्तिष्क-सुषुम्ना शोथ
	खुरपका-मुंहपका रोग वायरस	खुरपका-मुंहपका रोग
बैक्टीरिया	बैसिलस एन्थ्रैसिस	एन्थ्रैक्स
	ब्रूसेला एबार्टस	ब्रूसेल्लोसिस
	ब्रूसेला सुइस	ब्रूसेल्लोसिस

	ब्रूसेला मेलिटेंसिस	ब्रूसेल्लोसिस
	एरिसिपेलोथ्रिक्स रुजियोपेथी	एरिसिपेलास रोग
	लिस्टेरिया मोनोसाइटोजीनस	लिस्टेरियोसिस रोग
	पास्चुरेला टूलेरेन्सिस	टूलेरेन्सिस रोग
	विब्रियो फीटस	विब्रियोसिस
	माइकोबैक्टीरियम-ट्युबरक्युलोसिस (गायों की किस्म)	क्षय रोग
स्पाइरोकीटस	लेप्टोस्पाइरा इक्टीरोहिमोरेजिका	लेप्टोस्पायरोसिस
	लेप्टोस्पाइरा केनिकोला	लेप्टोस्पायरोसिस
रिकेटसिया	रिकेटसिया बरनेटी	क्यू ज्वर
फंगस	ट्राइकोफाइटॉन वीरुकोसम	दाद
	ट्राइकोफाइटॉन मेटाग्रोफाइट	दाद

(II) मनुष्यों में दूषित मांस खाने से विषायणता :

(अ) मांस मे जीवित जीवाणुओं के कारण विषायणता :

बैक्टीरिया	साल्मोनीला डबलिन	टायफौयड
	साल्मोनीला टायफीमूरियम	टायफौयड
	साल्मोनीला एन्टरीटिडिस	टायफौयड
	सिगला फ्लेक्सनीरी	सिगलोसिस
	सिगला सोनेयाई	सिगलोसिस
सेस्टोड	टीनिया सोलियम	टीनियासिस (सूअर का मांस खाने से)
	टीनिया सैजिनेटा	टीनियासिस (गाय का मांस खाने से)
	डाइफिलोबोथ्रियम लेटम	डाइफिलोबोथ्रिएसिस (मछली खाने से)
नीमेटोड	ट्राइकीनेला स्पाइरेलिस	ट्राइकीनेलोसिस (सूअर का मांस खाने से)

(ब) मांस में जीवाणुओं के बहिर्जीव-विष के कारण विषायणता :

बैक्टीरिया का बहिर्जीव-विष	स्टैफिलोकोकस ऑरियस	विषायतता
	बैसिलस सिरस	विषायतता
	प्रोटीयस किस्म	विषायतता

	स्ट्रेप्टोकोकस पायोजिनिस (टाइप 1 व 2)	विषाक्तता
	क्लोस्ट्रीडियम बोटयूलाइनम	बोटयूलिज्म
	क्लोस्ट्रीडियम वेलछाई	विषाक्तता

(III) मांस व अण्डे द्वारा ऐलर्जी :

प्रोटीन	मांस, मुर्गी, अण्डा और मछली	एलर्जी

(IV) पैतृक विषैले पदार्थ :

विषैले पदार्थ	मछली, सेल मछली	विषाक्तता
	पोलर बीयर का यकृत	हाइपर विटामिनोसिस–ए

(V) मांस का रासायनिक पदार्थों से संदूषण :

रासायनिक पदार्थ	पारद	मिनेमिटा रोग
	जस्ता	रासायनिक विषाक्तता
	आर्सेनिक	,,
	सीसा	,,
	एन्टीमनी	,,
	केडमियम	,,
	तांबा	,,
	डी. डी. टी	,,
	बी. एच. सी.	,,

2. मुर्गियों के मांस व अण्डों द्वारा मनुष्यों में फैलने वाले रोग:—

संक्रामक जीवाणु/ बहिर्जीव-विष	जीवाणुओं की किस्म	रोग
वायरस	न्यू कॅसल रोग वायरस	कन्जेक्टीवाइटिस
	सिटाकोसिस लिम्फोग्रेन्यूलोमा ग्रुप वायरस	ओरनिथोसिस
बैक्टीरिया	साल्मोनेला थोम्पसन	टायफोयड रोग
	साल्मोनेला टायफीमूरियम	,,
	साल्मोनेला एन्टरीटिडिस	,,
	माइकोबैक्टीरियम-ट्यूबरक्यूलोसिस (पक्षी की किस्म)	क्षय रोग
	एरिसिपेलोथ्रिक्स रूजियोपोथी	एरिसिपेलास रोग
	लिस्टेरिया मोनोसाइटोजेनस	लिस्टेरियोसिस रोग
बैक्टीरिया का बहिर्जीव-विष	स्टॅफिलोकोकस ओरियस	विषाक्तता

(I) मांस द्वारा मनुष्यों में फैलने वाले पशुओं के रोग :—

(I) दूषित मांस के सम्पर्क से मनुष्यों में फैलने वाले पशुओं के रोग :

(i) संक्रामक फुंसीयुक्त त्वचा-शोथ, मुखदाह (Contagious Pustular Dermatitis, Contagious ecthyma, Orf):

यह एक वायरस रोग है जो भेड़ व बकरियों में पाया जाता है। कभी-कभी यह रोग मनुष्यों में भी पाया जाता है। इस रोग में पहले फफोले पुटिका के रूप में प्रकट होकर बाद में दाने, पीवयुक्त फुंसियों तथा खुरंट का रूप धारण करते है। इस बीमारी के घावों में मक्खी के मार्गों भी पैदा होते हैं जिनसे पशुओं को काफी तकलीफ रहती है। पशुओं में यह रोग उनके होंठों तथा थनों पर दानों के रूप में प्रकट होता है। इस रोग का वायरस खुरंट पर निवास करता है, तथा स्वस्थ पशु में शरीर के किसी भी भाग की त्वचा में खुरंट का टीका देने पर विशिष्ट क्षतस्थल उत्पन्न कर सकता है। यह वायरस शरीर के बाहर खालों में मौजूद रहकर जाड़ों भर जीवित रहता है। वधशाला में बीमार पशुओं से जब किसी व्यक्ति की कटी-फटी त्वचा के सम्पर्क से यह वायरस आती है तो 48 से 72 घंटे में यह उस व्यक्ति में रोग उत्पन्न कर देती है। मनुष्यों में इस बीमारी के लक्षण उनके हाथ, हथेली और कोहनी पर अक्सर देखे जा सकते हैं। पशुओं के समान मनुष्यों में फफोले के शुरुआत के लक्षण दिखाई नहीं देते हैं। लेकिन बाद में गोल उभार युक्त लाल रंग के दाने कोहनी के अन्दर वाले भाग में दिखाई देते हैं। यह रोग मांस से संबंधित फैक्टरियों में काम करने वाले लोगों में भी पाया जाता है। पशुओं में यह रोग अक्सर बसंत और गर्मियों के शुरू के महीनों में पाया जाता है मगर वधशाला में काम करने वाले व्यक्तियों में यह रोग सर्दियों के मौसम में भी पाया जाता है, जिससे ऐसा लगता है कि इस रोग की वायरस पशुओं में बिना बीमारी के लक्षण पैदा किये भी शरीर में रहती है।

निर्णय :– जिन पशुओं पर इस रोग का सन्देह किया गया हो या जो पशु इस रोग से पीड़ित हो उनका मांस उत्पादन के लिये वधशाला में वध नहीं करने देना चाहिये।

(ii) मानसिक अवसन्नता, भेड़ की मस्तिष्क सुषुम्ना-शोथ (Louping ill, Infectious encephalomyelitis of sheep) :

यह रोग भेड़ में वायरस के कारण उत्पन्न होता है तथा इसे इनमें तंत्रीय लक्षणों द्वारा पहचाना जाता है। इस रोग के कारण भेड़ में 106° एफ. तक तेज बुखार होता है जो कुछ समय तक रहता है। बीमार पशु में दूसरी बार पांचवें दिन फिर बुखार के लक्षण देखे जाते हैं और बीमार भेड़ को छूने पर वह कांपने लगती है, मांस-पेशियों में ऐंठन होती है तथा वह अपने सिर को पीछे या एक ओर

खींचकर रखती है। होठों से चपचपाहट की आवाज निकलती है, आंखें घूमती हुई दिखाई देती हैं तथा मुंह से लार गिरती है। अंत में भेड़ में पक्षाघात के लक्षण दिखाई देते हैं और कुछ ही घंटों या एक-दो दिन में पशु कमजोर होकर मर जाता है। पशुओं का यह रोग मनुष्यों में होने वाले पोलियो रोग से मिलता-जुलता होता है। भेड़ में यह रोग किलनियों द्वारा रोग से पीड़ित पशु का रक्त चूसकर बाद में स्वस्थ भेड़ का खून पीने के कारण फैलता है।

मांस उद्योग में लगे व्यावसायिक व्यक्तियों में भी यह रोग फैला करता है। इस रोग को वायरस हवा में होने पर सांस द्वारा भी मनुष्यों में रोग उत्पन्न करती है। वायरस जब पशु के रक्त में हो और अगर वह फटी हुई चमड़ी के सपर्क में आये तब वधशाला में काम करने वाले लोगों में यह रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति में इनफ्लुएन्जा जैसे लक्षण दिखाई देते हैं।

निर्णय :- इस रोग से पीड़ित पशु का मांस के लिये वधशाला में वध करना सर्वथा अनुचित है क्योंकि ऐसे पशुओं का रक्त व मांस कटी हुई चमड़ी के सपर्क में अगर आये तो इससे वधशाला में कार्य करने वाले, मांस का वितरण करने वाले व इसका उपयोग करने वाले लोगों में यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

(iii) खुरपका-मुंहपका रोग (Foot and Mouth Disease) :

यह रोग वायरस द्वारा खुरों वाले पशुओं में होता है। इस रोग में पशुओं के पैरों व मुंह में छाले पड़ते हैं। लंगड़ाकर चलना, दर्द होना, मुंह से लार गिरना आदि लक्षण इस रोग में देखे जा सकते हैं। मनुष्यों में यह रोग बहुत ही कम पाया जाता है। रोगग्रस्त होने पर मनुष्यों में बुखार, मुंह सूखना तथा मुंह, होंठ, जीभ और उंगलियों के नाखून की जड़ में छाले बनते हैं।

निर्णय:- बीमार पशु के घाव से रोगग्रस्त अंगों को हटा कर अलग कर देवें तथा शेष मांस खाने के लिये उपयुक्त माना जाता है।

(iv) एन्थ्रैक्स (Anthrax) :

यह रोग बैसिलस एन्थ्रैसिस जीवाणु के कारण उत्पन्न होता है तथा यह रोग सभी किस्म के पशुओं तथा मनुष्यों में हो सकता है। इस रोग के कारण पशु की प्लीहा बढ़ जाती है इसलिये इसे प्लीहा का बुखार भी कहते हैं। इस रोग के जीवाणु की वर्धी प्रकार (Vegetative form), रोगग्रस्त पशुओं के रक्त में या तत्काल मरे हुए पशुओं के तन्तुओं में पाई जाती है। यह जीवाणु छड़ के आकार का होता है जो ऊपर से कैप्सूल द्वारा ढका रहता है तथा शरीर के तन्तुओं में छोटी-छोटी जंजीरों के रूप में स्थिर रहता है। ये जीवाणु हवा की उपस्थिति में स्पोर का निर्माण कर लेते हैं। रोगी पशु का मल स्पोर का प्रमुख स्रोत होता है। स्पोर अक्सर चमड़ा, ब्रुश, ऊन, बाल, चारे, दाने, पानी, हड्डियों, अस्थिचूर्ण व पशु उपजातों में पाये जाते हैं।

इस रोग के कारण सूअर के चेहरे व गले पर सूजन पैदा होती है जिससे दम घुटने के कारण वे प्रायः मर जाते हैं। उनके होंठों पर रक्त मिश्रित झाग व त्वचा पर रक्तस्राव के धब्बे दिखाई देते हैं। इसमें तेज बुखार होता है तथा रक्त-मिश्रित पेचिश के साथ आत्रार्ति भी होती है।

गायों और भेड़ों में यह रोग अति उग्र रूप में पाया जाता है और इनके लिये यह प्राणघातक रोग है। पशुओं के शरीर में ऐंठन पैदा होती है तथा वे कुछ ही मिनटों से लेकर तीन चार घंटों में मर सकते हैं। इस रोग में पशुओं में दांत पीसना, तीव्र हृदय गति, श्लेष्म झिल्लियों का रक्तवर्ण होना, श्वास लेने में कठिनाई, मुंह तथा नथुनों व मल-मूत्र मार्ग से रक्त का निकलना और बेहोश होकर मृत्यु हो जाना आदि लक्षण प्राय देखे जा सकते हैं। जो मनुष्य एन्थ्रैक्स रोग से पीड़ित जानवरों के संपर्क में आते हैं उनमें इस जीवाणु का संक्रमण हो सकता है। कसाई को, जानवरों के गोश्त का व्यवसाय करने वाले को या घर में गोश्त को काटते समय घाव के सपर्क के कारण यह रोग हो सकता है। भेड़ की ऊन के कारखानों में काम करने वालों या भेड़-बकरी के चमड़े के कारखानों में काम करने वाले लोगों में भी यह रोग पैदा हो जाता है। जानवरों के बालों से दाढ़ी का ब्रुश बनाया जाता है और अगर इनमें ऐन्थ्रैक्स रोग के जीवाणु हों और ऐसे ब्रुश को अगर स्टरलाइज नही किया जाए तब इस ब्रुश से भी इस जीवाणु का संक्रमण हो सकता है।

जानवरों के बालों के कारखानों में काम करने वालों के श्वसन मार्ग में बाल की धूल के कण के साथ एन्थ्रैक्स के स्पोर भी प्रवेश करते है और ये फुफ्फुस में विकृति उत्पन्न करते है। इस प्रकार जो रोग उत्पन्न होता है उसे वूलसोरटर रोग या ऊन छांटने वालों का रोग कहते हैं। अगर मनुष्य के हाथ में घाव हो और वह ऊन छांटने का काम करता हो तो भेड़ के ऊन से यह जीवाणु मनुष्य के घाव में प्रवेश करता है और दुर्दम्य व्रण या मैलिग्नेन्ट पस्टयूल की उत्पत्ति होती है। इस घाव से जीवाणु रक्त में भी प्रवेश कर सकते है। कभी-कभी इस जीवाणु का संक्रमण मुख द्वारा रोगग्रस्त जगली जानवर का मांस खाने पर भी हो सकता है।

बगीचों में एन्थ्रैक्स के जीवाणुयुक्त खाद के प्रयोग से या जीवाणुयुक्त बोरे को काम में लेने से भी यह रोग मनुष्यों में फैल सकता है।

निर्णय :— एन्थ्रैक्स रोग से पीड़ित पशु को वधशाला से तुरन्त हटा देना चाहिये तथा ऐसे पशुओं का वध करना सर्वथा अनुचित है। इस रोग से मरे हुए पशुओं और उनके शरीर से निकले मल और रक्त तथा बिछावन को तत्काल जला देना चाहिये या उनको गहरे गड्ढे में डाल कर उसे चूने से ढककर गाड़ना चाहिये। ऐसे मृत पशुओं के शरीर की काटपीट नही करनी चाहिये।

एन्थ्रैक्स रोग से पीड़ित पशु का मांस खाने के उपयोग में नहीं लाना चाहिये। हालांकि इसके जीवाणु पेट में रहने वाले गेस्टिक ज्यूस के कारण मर जाते हैं मगर

एन्थ्रैक्स के स्पोर पर इनका कुछ भी प्रभाव नही होता और इसके कारण मनुष्यो मे रोग उत्पन्न हो जाता है। अगर मुंह मे किसी प्रकार का घाव हो तब भी मास मे होने वाले एन्थ्रैक्स के जीवाणु मनुष्यो मे रोग उत्पन्न कर सकते है।

(v) ब्रूसेल्लोसिस (Brucellosis) :

यह रोग **ब्रूसेला एबार्टस** (गायो मे) **ब्रूसेला सुइस** (सूअर मे) व **ब्रूसेला मेलिटेंसिस** (बकरियो में) नाम के जीवाणुओ से पैदा होता है। इन जीवाणुओं के कारण मनुष्य मे जो रोग उत्पन्न होता है उसे माल्टा फीवर या अनडुलेन्ट फीवर कहते हैं।

इस रोग के जीवाणु गोल या अण्डाकार होते हैं। यह प्रायः अकेला रहता है या अनेक जीवाणु एक लाइन मे चैन के समान रहते हैं। कभी-कभी दो जीवाणु एक साथ भी मिलते हैं।

पशुओं में इन जीवाणुओ के कारण गर्भपात एव बाझपन के लक्षण दिखाई देते हैं। पशुओं मे संभोग की वृत्ति में कमी, एक या दोनो अण्डकोषों मे सूजन आदि लक्षण मिलते हैं। पशु के खानपान में अरुचि हो जाती है तथा उसके शरीर का भार कम होने लगता है। यह जीवाणु रोगी पशुओ के दूध, मल-मूत्र, प्लीहा में प्रचुर सख्या मे रहता है। कभी-कभी यह रोगी के रक्त में भी पाया जाता है। ये जीवाणु रोगग्रस्त पशुओं के जननांगों में भी पाये जाते है।

इस बीमारी की रोकथाम के लिए पशुओ का रक्त-परीक्षण किया जाता है तथा जो पशु परीक्षण के दौरान संक्रमित पाये जाते हैं उन्हें अलग रखा जाता है और अन्त मे उन पशुओं का वध कर दिया जाता है। इस दौरान जो व्यक्ति इन बीमार पशुओं का वध करते हैं व उनके मृत शरीर के अगों के सम्पर्क मे आते है, उन्हे इस बीमारी से पीड़ित होने का खतरा बना रहता है।

ब्रूसेला एबार्टस के कारणमनुष्यों में समय-समय पर बुखार होता रहता है। यह रोग उन्हें बीमारीयुक्त बिना उबला दूध पीने, रोगी पशु या उसके मास के संपर्क मे आने से पैदा होता है। ये जीवाणु मनुष्यो के लिये ज्यादा खतरनाक नहीं हैं।

ब्रूसेला मेलिटेंसिस के कारण अनडुलेन्ट फीवर का रोग मनुष्यो मे बिना उबाले हुए बकरी का दूध पीने से होता है या दूध निकालते समय तथा मास के संपर्क में आते समय यदि मनुष्य के हाथ पर घाव हो तब ये जीवाणु घाव द्वारा शरीर में पहुंच कर रोग उत्पन्न करते है। इस रोग के जीवाणु मल में भी पाये जाते है तथा मल सूखने पर ये हवा द्वारा मनुष्यों के श्वास द्वारा उनके शरीर मे प्रविष्ट करके रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं।

मनुष्यो के शरीर में **ब्रूसेला सुइस** के जीवाणु वधशाला में मृत पशुओ का मुआयना करते समय या उनका वध करते समय प्रवेश कर जाते है।

निर्णय –ब्रूसेला मेलिटेंसिस और ब्रूसेला सुइस दोनों ही प्रकार के जीवाणु मनुष्यों में रोग उत्पन्न करते हैं।

रोग-ग्रस्त पशु के मरने के पश्चात् उसकी मांस-पेशियों में ब्रूसेला जीवाणु कम ही समय तक जिन्दा रह पाते हैं क्योंकि मृत शरीर में अम्ल बनने लगता है जिससे जीवाणु शीघ्र ही मर जाते है।

ब्रूसेला जीवाणु यदि मृत पशु के शरीर के अंगों में, मांस-पेशियों, लसग्रन्थि या हड्डियो में हो और उन्हे रेफ्रिजरेटर मे रखें तो ये जीवाणु एक माह की अवधि तक जीवित रह सकते है।

अगर मृत पशु के शरीर मे ब्रूसेला रोग के जीवाणु हों तो उसके शव से फेफड़े, यकृत, प्लीहा, गुर्दे, आतें, अयन, अण्डकोषों और रक्त आदि को हटा देना चाहिये और उन्हें मनुष्यो के खाने के काम मे नही लेने देना चाहिये। शव के भीतरी अंगो और लसग्रन्थियो को भी हटा देना चाहिये। अगर वध किये पशु के शव मे बहुत कम ही अंगो मे बीमारी के लक्षण हों तो ऐसे अंगों को शरीर से हटाकर उनका ठीक तरीके से निस्तारण करें तथा शव के शेष भागों को खाने के योग्य घोषित कर देवें।

(vi) सूअर मे एरिसिपेलास रोग (*Swine Erysipelas*) :

यह रोग मुख्यत. सूअरों मे एरिसिपेलोथ्रिक्स रूजियोपेथी नामक जीवाणु के कारण होता है। यह एक उग्र, कुछ कम उग्र अथवा दीर्घकालीन अवस्थाओं में प्रकोप करने वाली एक छुत की बीमारी है। यह रोग मनुष्य, मेमने, मुर्गी, खरगोश व चुहियों आदि में भी पाया जाता है।

इस रोग के जीवाणु पशु के शरीर मे विषैले पदार्थ छोड़ते हैं जिनके कारण पेट, आंतें, फेफड़े और गुर्दे मे रक्तस्राव होता है। पशु को 105 से 108° फारनेहाइट तक तेज बुखार होता है। पशु खाना-पीना छोड़ देते हैं। उनके चलने पर पिछले धड मे कमजोरी नजर आती है। वे प्रायः उल्टी करते हैं। पहले उन्हे कब्ज रहती है तथा बाद मे दस्त आने लगते हैं। शरीर तथा पैरो की त्वचा पर गहरे लाल अथवा काले रंग के चौकोर अथवा भुजाकार $\frac{1}{2}$ से 2" आकार के चकते पाए जाते हैं।

वधशाला में पशुओं का वध करते समय यह रोग बीमार पशु से मनुष्यों को उनके हाथ पर कटी चमड़ी या घाव के कारण लग जाता है। मनुष्यो मे यह रोग एरिसिपेलोइड शोथ के नाम से जाना जाता है। इस रोग के कारण अंगुली या अंगूठे मे सूजन पैदा हो जाती है जो धीरे-धीरे हाथ में फैल जाती है तथा उसे दबाने पर किसी प्रकार का गड्ढा दिखाई नही देता। हाथ में काफी पीड़ा रहती है जिससे उस व्यक्ति को नीद लेने मे अड़चन पैदा होती है। हाथ के जोड मे काफी सूजन पैदा हो जाती है।

निर्णय :– इस रोग की सेप्टीसीमिक किस्म के कारण पशु की मांस-पेशियां सेट नही होती हैं तथा ऐसे मांस को खाने के उपयुक्त नही माना जाता है। अगर सूअर के शरीर पर चमड़ी पर चकते हो तो उन पशुओं की चमड़ी हटा देनी चाहिये और मांस को खाने के उपयुक्त घोषित किया जाना चाहिये। अगर पशु के शरीर की वसा तक खराबी उत्पन्न हो जाये तो उसे भी काट कर हटा देनी चाहिये जिससे कि पशु का मांस खाने लायक हो सके।

(vii) लिस्टेरियोसिस, चक्कर की बीमारी (Listeriosis) :

भेड़-बकरियो, सूअरों तथा अन्य पशुओं की यह एक प्राणघातक छूत की बीमारी है जो **लिस्टेरिया मोनोसाइटोजीनस** जीवाणु द्वारा उत्पन्न होती है। इस बीमारी मे पशु चक्कर काटता है तथा उसमें पक्षाघात हो जाता है। पशु किसी दीवार से अपने सिर को टकराकर खड़ा होता है। उसका निचला होठ व एक कान लटका हुआ दिखाई देता है। पशु के मुह से लार गिरती है, नाक से श्लेष्मा बहना तथा आखों की झिल्ली का सूज जाना इसके अन्य लक्षण है। मनुष्यो मे यह रोग इन जीवाणुओ के वायुमण्डल में रहने के कारण श्वास द्वारा फैलता है।

निर्णय :– लिस्टेरिया रोग से पीडित पशु का मांस के लिये वध नही करना चाहिये।

(viii) टूलेरिमिया (Tularemia) :

यह रोग भेड़, खरगोश, मुर्गियों और चूहों मे **पास्चुरेला टूलेरिन्सिस** के द्वारा उत्पन्न होता है। मनुष्यों में यह रोग इन बीमार पशुओ के सीधे संपर्क में आने से या मृत पशुओ के संपर्क मे आने से व चीचड व मक्खी द्वारा फैलता है। पशु के जीवाणुयुक्त रक्त या मांस के सम्पर्क से इस रोग के जीवाणु चमडी या श्लेष्मा झिल्ली द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाते है। यह रोग दूषित जल पीने से और रोग-ग्रस्त मांस खाने से भी फैलता है। इस रोग के कारण मनुष्यो में सर्दी लगना, बुखार होना, खड़े होने की क्षमता न होना व लसग्रन्थियों मे सूजन होना तथा उनमे पीब पड़ना आदि लक्षण दिखाई देते है।

निर्णय :– इस रोग से बचने के लिये बीमार पशु और जंगली खरगोश के घाव या उनके मांस और रक्त के सीधे संपर्क मे नही आना चाहिये। रोग से पीड़ित पशुओं के पास जाने से पहले हाथ पर रबर के दस्ताने पहनने चाहिये।

(ix) विब्रियोसिस (Vibriosis) :

यह रोग प्रायः भेड़ व गाय मे पाया जाता है जो **विब्रियो फीटस** के कारण होता है। इस रोग से पशुओं में गर्भपात और बांझपन के लक्षण दिखाई देते है। इस रोग के जीवाणु नर पशुओं के अण्डकोषों में रहते है और इनसे यह रोग उन जातियों के मादा पशुओ में फैलता रहता है। इस रोग के जीवाणु स्त्रियों और मर्दों में भी

पाये गये हैं। इन जीवाणुओं के कारण स्त्रियों मे गर्भपात व मनुष्यों मे दस्त लगना, जोड़ों मे सूजन, एन्डोकार्डाइटिस और मेननजाइटिस आदि के लक्षण देखे जा सकते हैं।

निर्णय :– ऐसा माना जाता है कि यह रोग मनुष्यों मे संदूषित दूध व बीमार पशुओं के कारण फैलता है। इसलिये वधशाला में बीमार पशुओ का ध्यान से वध करना चाहिये। इस रोग से ग्रसित अंगों को चाकू से काटकर अलग कर देना चाहिये ताकि पशु का मास इससे सदूषित नहीं होने पावे।

(x) क्षय रोग, तपेदिक (Tuberculosis) :

क्षय रोग माइकोबैक्टीरियम ट्युबरक्युलोसिस जीवाणु के द्वारा उत्पन्न होता है। इसकी गायो, पक्षी और मानव जातीय तीन किस्मे होती हैं। इस जीवाणु की गायो की किस्म सभी स्तनधारी पशुओं मे क्षय रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखती है। पशुओ के सपर्क से कई रोग मनुष्यों मे फैलते हैं लेकिन सर्वप्रथम गायो के क्षय रोग को प्रमाणित करके वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया कि यह रोग पशुओ से मनुष्यों मे फैलता है। इस रोग को ट्युबर्किलो द्वारा पहचाना जाता है जिनमे सूजना, कैल्शियम का जमना तथा फोड़े बनने जैसे परिवर्तन होते हैं। प्रमुख तौर पर यह बीमारी लिम्फ ग्रथियो पर प्रभाव डालती है।

गौ-पशुओं में क्षय रोग का प्रमुख स्थान प्राय: श्वसनतंत्र होता है। पशु इस रोग के कारण श्वास मे कष्ट महसूस करता है तथा जल्दी-जल्दी सास लेता है। पशु प्राय. खासते हैं। अतड़ी के क्षय रोग पशु में दस्त व कमजोरी उत्पन्न करते हैं। चारा खाने के बाद रूमेन मे अफारा होकर उनका पेट फूल जाता है। मेसेण्टेरिक लसीका ग्रथिया फूल जाती है। पशुओ में इस रोग का प्रभाव अयन, जननेन्द्रियो, चमडी तथा केन्द्रीय तन्त्रिका तन्त्र पर भी रहता है।

मनुष्यो मे इस रोग के कारण लगातार बुखार रहता है, वजन घटता है, खासी होती है व इसके साथ थूक मे रक्त आने लगता है तथा गले के पास की लसग्रन्थि मे सूजन दिखाई देती है।

पशुओ तथा मनुष्यों मे यह रोग पाचन संस्थान, सास नली द्वारा, जननेन्द्रियो, फटी हुई चमडी तथा बच्चो मे रोगग्रस्त गर्भाशय द्वारा फैलता है।

क्षय रोग के जीवाणु पशु के रोगग्रस्त मांस या अन्य अगों से किसी भी मनुष्य में उसकी कटी हुई चमड़ी के द्वारा उसके शरीर में प्रवेश कर उनमें क्षय रोग पैदा कर सकते हैं।

निर्णय :– वधशाला मे पशु के शव के सम्पूर्ण भागों मे अगर क्षय रोग के ट्युबर्कल हो तो ऐसे शव के मास को खाने के लिये अयोग्य माना जाना चाहिये। किसी जगह अगर ऐसे शवों को ठीक से मुआयना करने की व्यवस्था नहीं हो

तो ऐसे मे जो व्यक्ति या कसाई इन शवो के सम्पर्क मे आता है या जो व्यक्ति इस मास का सेवन करते है उनमें क्षय रोग उत्पन्न होने की पूर्ण संभावना बनी रहती है। मास को पकाने से ये जीवाणु पूर्णतया समाप्त हो जाते है, ऐसे मास को अगर ठीक से नही पकाया जाये तो क्षय रोग के जीवाणु उसमे जिन्दा रह सकते है। अगर पशु के किसी एक या दो स्थान पर ही क्षय रोग के ट्यूबर्कल हों तो उन भागो को हटाकर शव के मांस को खाने योग्य घोषित किया जा सकता है।

अगर पशु के सिर की कोई लस ग्रंथि क्षय रोग से ग्रस्त हो तो उस पशु के शव से सिर को हटा कर शव का शेष भाग खाने योग्य घोषित कर दिया जाता है।

अगर क्षय रोगग्रस्त मास किसी दूसरे पशु के मांस के संपर्क में आ जाये तो सम्पर्क में आये मांस को काट कर हटा देते हैं और मास के शेष भाग को खाने के लिये योग्य घोषित कर देते हैं।

(xi) लेप्टोस्पायरोसिस (Leptospirosis) :

लेप्टोस्पायरोसिस की बीमारी पशु व्यवसाय में लगे मनुष्यों में होती रहती है। मनुष्यो मे यह रोग पशुओं व चूहे के मूत्र द्वारा फैलता है। वधशाला मे कार्य करने वाले कसाई, पशु चिकित्सक और वहां नालियों की सफाई करने वाले व्यक्तियो मे प्रायः यह रोग पाया जाता है। यह रोग लेप्टोस्पाइरा इक्टीरोहिमोरेजिका, लेप्टोस्पाइरा केनिकोला, लेप्टोस्पाइरा इन्टरोगेन्स और लेप्टोस्पाइरा बाइफेक्सी के कारण पैदा होता है।

मनुष्यों मे यह रोग पशु के मास, मूत्र या दूषित पानी के संपर्क में आने से पैदा होता है। इस रोग के कारण पशुओं और मनुष्यों में यकृत व गुर्दे में बाधा उत्पन्न हो जाती है तथा सभी श्लेष्मा झिल्लिया रक्तहीन होकर पीली पड़ जाती है। इस रोग मे यूरिमिया, टोक्सीमिया और शरीर के अंगों मे रक्तस्राव के लक्षण दिखाई देते है।

निर्णय :– इस रोग से बचने के लिये वधशाला मे स्वच्छता बनाये रखना जरूरी है। यहां पर कार्य करने वाले लोगों को इस रोग से बचने के लिये उपलब्ध टीके लगवाने चाहिये।

(xii) क्यू ज्वर ('Q' Fever) :

क्यू ज्वर स्वस्थ दिखने वाले पशुओं मे पाया जाता है। ये पशु इस रोग के केरियर रहते हैं। कभी-कभी पशुओ मे इसके कारण ब्रोन्को न्युमोनिया और गर्भपात होते रहते है। यह रोग रिकेटसिया बरनेटी जीवाणु के कारण होता है। इस रोग के जीवाणु पशु के मल-मूत्र, दूध प्लेजन्टा और गर्भपात से गिरे हुए मृत बच्चे में रहते है और मनुष्य जब इनके सम्पर्क में आता है तो उसमे क्यू ज्वर होने की सम्भावना बनी रहती है। मनुष्यो मे इस रोग के कारण तेज ज्वर, शारीरिक दर्द, भूख न लगना व एक या दो सप्ताह तक शरीर मे कमजोरी जैसे लक्षण दिखाई देते है। इस रोग के

कारण न्युमोनिया भी होता है तथा बाद मे एन्डोकार्डाइटिस होती है और मनुष्य की मृत्यु तक हो सकती है।

यह बीमारी मनुष्यो में रोगग्रस्त पशुओं के मांस, मल-मूत्र, रिकेटसियायुक्त हवा, ऊन, बाल व चमडी के सम्पर्क में आने से होती है।

निर्णय :– रोगग्रस्त पशुओ को वधशाला में नही आने देना चाहिये। इसके लिये पशुओं का सीरम लेकर इस बीमारी के लिये टेस्ट करना चाहिये ताकि बीमार पशु मांस के लिये न कटने पाये। वधशाला मे कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस रोग से बचने के लिये टीका लगवाना चाहिये।

(xiii) दाद, दद्रु (Ringworm) :

फफूंद ट्राइकोफाइटॉन थीरूकोसम और ट्राइकोफाइटॉन मेटाग्रोफाइट द्वारा उत्पन्न होने वाला यह एक छुतैला चर्म रोग है जिसमें शरीर पर गोल तथा परिगत खुरंटयुक्त उभरे हुए भाग नजर आते हैं। यह रोग छोटे पशुओं में ज्यादा होता है तथा दाद $\frac{1}{2}$ से 3" गोलाई मे फैले रहते है और ये अक्सर पशु के सिर और गरदन पर ज्यादा होते है। यह रोग गो-पशुओं मे अधिक पाया जाता है। यह वर्ष मे किसी भी समय फैल सकता है, किन्तु पतझड़ और जाड़ो में अधिक होता है। यह रोग मनुष्यों में बीमार पशुओं के सम्पर्क में आने से फैलता है। जो लोग पशु रखते हो या वधशाला में उसके सम्पर्क में आते हों और उनकी चमड़ी पर कही घाव हो या वह कही से कटी हुई हो तब यह रोग उनमे बड़ी आसानी से फैलता है।

निर्णय'– रोगग्रस्त पशु का वध करते समय अगर किसी व्यक्ति की चमडी पर घाव, खरोंच आदि हों तो उसे रबड़ के दस्ताने इस्तेमाल करने चाहियें ताकि फफूद उस व्यक्ति के खुले घाव के सम्पर्क मे न आ सकें।

(II) मनुष्यों में दूषित मास खाने से विषायणता (Poisoning in man by eating contaminated meat) :

लोगो को यह बात पुराने समय से विदित है कि बीमारी से मरे हुए पशुओं के मास को खाने से वे खुद भी बीमार हो सकते हैं और इसलिये हमेशा स्वस्थ पशु का ही मांस खाने के उपयोग मे लिया जाता है। मांस मे विषाक्तता निम्न कारणो से हो सकती है :—

मास निम्न दो कारणो से विषाक्त होता है :—

(अ) मांस मे जीवित जीवाणुओं के कारण विषायणता :

अगर मास मे जीवित जीवाणु हों और जब वे मांस के साथ शरीर मे प्रविष्ट हो जायें तो रोग उत्पन्न करने से पहले वे कुछ समय तक शरीर में अपनी संख्या बढ़ाते हैं और कुछ दिनो बाद उस व्यक्ति मे दस्त, उल्टी व बुखार जैसे लक्षण देखे जा सकते हैं। किसी-किसी रोग को फैलने मे 12 घंटे से कम समय लगता है मगर

(i) साल्मोनेला डबलिन, साल्मोनेला टायफीमूरियम, साल्मोनेला एन्टरीटिडिस, सिगला फ्लेक्सनेरी और सिगला सोनेयाई :–

ये सभी जीवाणु मांस के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करके उनमें बुखार, दस्त, सर्दी लगना, उल्टी व पेट में दर्द जैसे लक्षण पैदा करते है। ये जीवाणु 7 या 12 घंटे से लेकर 7 दिनों में मनुष्यों में रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते है।

(ii) टीनियासिस (सूअर का मांस खाने से) :

टीनिया सोलियम के कारण टीनियासिस रोग का संक्रमण मनुष्यों मे सूअर का मांस खाने से होता है। सिस्ट या सिस्टीसरकस सूअर की मास-पेशियों में रहते हैं और जब मनुष्य ऐसा मांस खाता है तो उसकी आंत में 3 से 9 फीट लम्बा टेपवर्म बनता है। कुछ समय बाद जब मनुष्य के मल के साथ कृमि के अण्डे शरीर के बाहर निकलते हैं और सूअर के द्वारा इस मल को खाने पर ये अण्डे सूअर की आन्त्र मे प्रवेश करते हैं। यहां इन अण्डों से औंकोस्फीयर निकलते हैं। ये औंकोस्फीयर सूअर की पेशियों मे जाकर सिस्टीसरकस बनाते हैं। इस प्रकार सूअर का मांस खाने पर ये सिस्ट फिर से मनुष्यो की आंत्र में पहुंच कर टेपवर्म बनाते हैं।

निर्णय : सिस्टयुक्त मांस को 45° सी. से 50° सी. तक गर्म किया जाये तो सिस्ट प्राय: समाप्त हो जाती है। सिस्टयुक्त मांस को 3 से 4 सप्ताह तक पिकलिंग (25 भाग भार मे नमक तथा 100 भाग भार से पानी) करने से सिस्ट समाप्त हो जाती है मगर इसमे मांस को 1.8 से 2.2 कि ग्रा. के भार के टुकड़ों में काट कर डालना चाहिये। अगर पशु के शरीर के सम्पूर्ण भाग में सिस्ट हो तो ऐसे मास को खाने के काम में नही लिया जाना चाहिये।

(iii) टीनियासिस (गाय का मांस खाने से) :

मनुष्यों में टीनिया सैजिनेटा कृमि का संक्रमण गौ–वंश के जानवरो का मांस खाने से होता है। मनुष्य जब सिस्टयुक्त मांस खाता है तब सिस्टीसरकस मे से स्कोलेक्स निकल कर मनुष्य की आन्त्र में कृमि बनाते हैं। यह कृमि 30 फीट तक लम्बी होती है। मनुष्य के मल के साथ इस कृमि के अण्डे शरीर से निकलते रहते है और ये गौ-वंश पशु के चारे के साथ उसके शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। इन अण्डों से लार्वा बनता है जो पशु की पेशियों में पहुंच कर सिस्ट बनाते है।

निर्णय :– अगर पशु के मांस मे एक-दो सिस्ट ही हो तो उसे उसके पास के मांससहित निकाल कर फेंक देना चाहिये और शेष मास खाने के योग्य रहता है। अगर सिस्ट कुछ ज्यादा हो तो पशु के शव को 20° एफ. तापमान पर 3 सप्ताह रहने देते हैं जिससे मांस में रहने वाली सिस्ट रोग पैदा करने की क्षमता खो देती है। इस तरह ठंडे तापमान पर रखे गये शव का मांस मनुष्यो के खाने के योग्य रहता है। अगर सम्पूर्ण शव मे सिस्ट हों तो ऐसे मांस को खाने के लिए अयोग्य घोषित करना चाहिये।

(iv) डाइफिलोबोथ्रिएसिस :

डाइफिलोबोथ्रियम लेटम कृमि का संक्रमण मनुष्यों और कुत्तों में सिस्टयुक्त मछली खाने से होता है। यह कृमि मनुष्य और कुत्ते की आंत में रहता है। इस कृमि की लम्बाई 6 से 35 फीट तक होती है। इसके अण्डे मनुष्य व कुत्ते के मल द्वारा शरीर से निकलकर पानी में पहुंचते हैं। अण्डे से एमब्रियो निकलकर क्रसटेसियन नाम के जीवाणु में जाता है। मछली जब इस जीवाणु को खाती है तब इसका संक्रमण मछली में पहुंचता है। प्लीरोसरकॉइड करीब एक इंच लम्बे, भूरे-सफेद, गोल आकार में मछली के फेटी मिसेन्ट्रीक टिश्यू, ओवरी, टेस्टीज और पेशियों में फंसे रहते हैं। इस कृमि के कारण मनुष्यों और कुत्तों में एनिमीया पैदा हो जाता है।

निर्णय : अगर सिस्टयुक्त मछली को ठीक ढंग से तलो, ओवन में सेंकी या पकाई जाये तो उसमें रहने वाली सिस्ट मर जाती है, लेकिन ऐसी मछली को खाने के काम में नहीं लेनी चाहिये।

(v) ट्राइकीनेलोसिस :

ट्राइकोनेला स्पाइरेलिस के कारण ट्राइकीनेलोसिस रोग का संक्रमण मनुष्यों में इस रोग से पीडित सूअर का कच्चा मांस खाने से होता है। इसका संक्रमण चूहे तथा सूअर दोनों में ही मिलता है। सूअर की पेशियों में इसके सिस्ट रहते हैं। मनुष्य जब सूअर का कच्चा मांस खाता है तब ये सिस्ट उसके आमाशय में पहुंचते हैं। सिस्ट के अन्दर से लार्वा निकलकर आंत में पहुंचता है और बड़ा होकर कृमि बनता है। मादा *कृमि लार्वा पैदा करती है। यह लार्वा लसवाहिनियों तथा रक्तवाहिनियों द्वारा* मनुष्य की पेशियों में पहुंचकर सिस्ट बनाता है। मनुष्य में लार्वा तथा कृमि दोनों रहते हैं। इसके अण्डे मादा कृमि के गर्भाशय में ही रहते हैं और उनके अन्दर से शीघ्र ही लार्वा निकलता है, इसलिये मनुष्य के मल में इसके अण्डे नहीं मिलते हैं। मल में कभी-कभी कृमि मिल सकता है।

इस रोग के कारण मनुष्यों में दस्त और पेट दर्द के लक्षण देखे जाते हैं। सिस्ट-युक्त मांस खाने के नौ दिनों पश्चात् लार्वा रक्त में पहुंचता है तथा इनफ्लूएन्जा या टायफोयड रोग जैसे लक्षण देखे जा सकते हैं। गठिये के रोग में जो शारीरिक दर्द होता है ठीक वैसा ही दर्द इस रोग में भी दिखाई देता है। लार्वा के कारण मायो-कार्डाइटिस और एनकेफेलाइटिस हो जाती है। शरीर में 2000 लार्वा होने पर रोग के लक्षण दिखाई देने लगते हैं और अगर इनकी संख्या 80,000 हो जाये तो मनुष्य की मृत्यु तक हो जाती है। अगर मनुष्य रोगयुक्त मांस का लगातार कई दिनों तक सेवन करे तो यह रोग उनमें उग्र रूप धारण करता है। सर्दी के दिनों में सूअर *का मांस ज्यादा खाये जाने के कारण मनुष्यों में यह रोग उसी मौसम में ज्यादा पाया जाता है।*

निर्णय : यह रोग सूअर की वसा और भीतरी अगों में नहीं होता है, इसलिए उन्हें शव से अलग कर देते है और शेष भाग खाने के लिए अयोग्य माना जाता है।

मास को छः इंच के टुकडों में काट कर 5° एफ. तापक्रम पर 20 दिनों तक रखे रहने से उसमें होने वाली ट्राइकोनेला सिस्ट की रोग पैदा करने की क्षमता नष्ट हो जाती है।

मांस को 58° सी. पर गर्म करने से ट्राइकीनेला के लार्वा मर जाते है। सूअर के मांस को 2° सी. पर 40 दिनों तक क्यूर करने व 45° सी पर 10 दिनो तक स्मोकिंग करने से मांस मे रहने वाली सिस्ट मर जाती है।

(ब) मास में जीवाणुओं के बहिर्जीवविष के कारण विषायणता :

मांस में पाये जाने वाले कुछ जीवाणु अनुकूल परिस्थितियो में कुछ विषैले पदार्थ पैदा करते हैं और इनसे मनुष्यों के आन्त्र और अन्य अंगो को काफी नुकसान होता है। इनमें मुख्य जीवाणु निम्न हैं—

(i) स्टैफिलोकोकस ओरियस :

यह जीवाणु मांस मे बहिर्जीवविष पैदा करता है। मांस पकाने पर ये जीवाणु मर जाते हैं मगर उनका छोड़ा हुआ विष गर्म या ठंडे तापक्रम पर भी बेअसर नही होता है। ऐसा मास खाने के 2–3 घंटे बाद उस मनुष्य में लार गिरना, उल्टी-दस्त और जी मचलना जैसे लक्षण दिखाई देते हैं जो 24 घंटे तक रहते है।

(ii) बैसिलस सिरस, प्रोटीयस और स्ट्रैप्टोकोकस पायोजिनिस टाइप 1 और 2 :

ये जीवाणु मास मे बहिर्जीवविष छोड़ते हैं। ऐसे मास का उपयोग मनुष्य मे हानि पैदा करता है।

(iii) क्लोस्ट्रीडियम बौटयूलाइनम :

ये जीवाणु पके हुए तथा बंद डिब्बों में रखे हुए मास में बहिर्जीवविष छोड़ते हैं। ये जीवाणु बिना आक्सीजन के जीवित रहते हैं। यह हवा के साथ रहने पर स्पोर बनाता है तथा मास पकाने पर उसमें तापक्रम कम हो तो यह प्रायः जीवित रह जाता है। ऐसा मास जब डिब्बो में बंद किया जाता है तब ये जीवाणु आक्सीजन की अनुपस्थिति में बढ़ोतरी करते है और उस समय ये बहिर्जीवविष छोड़ते हैं। इस विष के कारण भोजन को निगलने मे दिक्कत रहती है तथा आखों की रोशनी में फर्क आने लगता है। श्वास की पेशियो का पक्षाघात हो जाता है और मृत्यु तक हो जाती है। विषाक्त मांस के कारण मनुष्य में दो घंटों से आठ दिनो के बीच में इस विष के लक्षण नजर आते हैं।

(iv) क्लोस्ट्रीडियम वेलछाई :

ये जीवाणु दुबारा गर्म करके तैयार किये ठंडे या बना कर रखे हुए मांस मे

बहिर्जीवविष पैदा करते हैं। विषाक्त मांस सेवन के 2 से 18 घंटों बाद मनुष्यों में जी का मचलना, उल्टी, पेट में दर्द व दस्त आदि के लक्षण देखे जाते हैं। ये लक्षण मनुष्य में 8 से 12 घंटों तक ही रहते हैं।

(III) मांस व अण्डे द्वारा एलर्जी :

मांस एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जिसमें प्रोटीन की काफी मात्रा रहती है। पशुओं, मुर्गियों और मछलियों के मांस में तथा अण्डों व अन्य खाद्य पदार्थों में काफी मात्रा में प्रोटीन रहता है। ऐसा बताया गया है कि 30 प्रतिशत लोगों को किसी न किसी प्रकार के खाद्य पदार्थ के प्रोटीन से एलर्जी रहती है।

(IV) पैत्रिक विषैले पदार्थ :

मछली और सेल मछलियों में भी कुछ जातियों में परम्परा से उनके वंशजो में कुछ विषैले पदार्थों का अनुकरण होता रहता है जिसे खाने से मनुष्यों में विषाक्तता पैदा होती है। पोलर भालू के यकृत खाने से मनुष्यों में हाइपर विटामिनोसिस ए हो सकता है।

(V) मांस का रासायनिक पदार्थों से संदूषण :

अगर पशु या मछली या मांस किसी विषैले रसायन के संपर्क में आये तो उनमे विषाक्तता पैदा हो सकती है। ऐसे मांस का सेवन करने से मनुष्यो के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर होता है।

मिनेमिटा रोग : जो मनुष्य, पशु व पक्षी जब पारद के विषैलेपन से पीड़ित मछलियों को खाते हैं तो उनको मिनेमिटा रोग हो जाता है। इस रोग से ये मनुष्य, पक्षी व पशु सभी स्नायुमण्डल सम्बन्धी रोगों से ग्रसित हो जाते हैं। तथा उनकी मृत्यु तक हो सकती है और विकलांग संतति उत्पन्न होने लगती है।

जस्ता, आर्सेनिक, सीसा, एन्टीमनी, केडमियम और तांबा आदि के बर्तन में मांस को रखने से उसमें इन पदार्थों से विषाक्तता उत्पन्न हो जाती है। पशुओं के मांस में डी. डी. टी, बी. ए. सी और रेडियो धर्मित पदार्थ की भी अत्यधिक मात्रा मिल सकती है और ऐसे मांस के उपयोग से मनुष्य के स्वास्थ्य को हानि होती है।

2. मुर्गियों के मांस व अण्डों द्वारा मनुष्यों में फैलने वाले रोग

(i) न्यू कैसल रोग (Newcastle disease)

यह रोग मुर्गियों में होता है तथा कबूतरो और बतखों में भी फैलता है। रोगग्रस्त मुर्गियो के संपर्क में आने से मनुष्यो में कन्जेक्टीवाइटिस पैदा होती है। मुर्गियों में यह रोग तीव्र और अति उग्र होता है। इस रोग के कारण मुर्गी में सुस्ती, अण्डा उत्पादन में गिरावट, भूख में काफी कमी, मुख खोल कर सांस लेना, पीले हरे रंग का डायरिया, कलगी की श्यावता और टर्र-टर्र आवाज करने के विशेष लक्षण प्रकट होते हैं और उनकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है। जीवित रहने वाली

मुर्गियां दुर्बल हो जाती हैं, कांपती हैं, व उनके पंखों और पावों को लकवा हो जाता है।

निर्णय : बीमार मुर्गियों और उनके मांस के सम्पर्क में आने से मनुष्यों में कन्जेक्टीवाइटिस रोग हो जाता है। बीमार मुर्गी का मांस खाने से मनुष्य में यह रोग नही फैलता है।

(ii) सिटाकोसिस ओरनिथोसिस (Psittacosis, Ornithosis) :

यह एक वायरस रोग है जो अन्य वायरस, बैक्टीरिया और रिक्टेसिया से भिन्न है तथा इसे सिटाकोसिस लिम्फोग्रेन्यूलोमा ग्रुप या सिटाकोसिस लिम्फोग्रेन्यूलोमा-ट्रेकोमा (पी-एल-टी) ग्रुप या बेडसेनिए कहते हैं। यह रोग मुर्गी, टर्की, बतख, कबूतर, चिड़ियों व तोते के जाति के पक्षियों में होता है तथा कभी-कभी इनसे यह रोग मनुष्यों में भी फैलता है। इस रोग के कारण रोगी के फेफड़ों में रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। इनमें बेचैनी, यूरेट का अधिक मात्रा में इकट्ठा होना, वेन्ट का हिस्सा हरा दिखाई देना और इनमें शरीर का कांपना आदि प्रमुख लक्षण देखे जा सकते हैं।

जो मनुष्य बीमार मुर्गी के संपर्क में आते हैं या उनके पास रहते है उन्हें यह रोग आसानी से लग जाता है तथा उनमें न्युमोनिया तथा सेप्टीसिमिया के लक्षण पैदा होते हैं और रोगी को प्रायः मृत्यु हो जाती है।

निर्णय :— रोगग्रस्त मुर्गी व अन्य पक्षी से यह रोग सीधे सम्पर्क द्वारा फैलता है इसलिये इनका मांस के लिये वध नही करना चाहिये।

(iii) साल्मोनीलोसिस, टायफोयड रोग (Salmonellosis) :

साल्मोनीला जीवाणुओ से मुर्गियो व उनके चूजों में मृत्यु दर अधिक होती है और जो जीवित रह जाते हैं वे केरियर बन जाते हैं और उनमे रोग के लक्षण नही दिखते हैं। ऐसी मुर्गियों का मांस व अण्डा मनुष्यो मे टायफोयड रोग उत्पन्न करता है। मांस व अण्डों के द्वारा विषायण प्रायः साल्मोनीला थोम्पसन, साल्मोनीला टायफीमूरियम और साल्मोनीला एन्टरीटिडिस जीवाणुओं के कारण होता है।

निर्णय :— टायफोयड रोगग्रस्त या केरियर मुर्गियों को मांस के उपयोग में नही लाना चाहिये। अगर इन मुर्गियो का मांस पूर्णतया नही पकाया जाये तो इससे मनुष्यो में अन्न विषायण होता रहता है। ऐसी मुर्गियो के अण्डों को 10 से 15 मिनट तक उबालने के पश्चात् ही उनकी ऊपर की परत हटानी चाहिये। बिना उबले या आधे उबले अण्डे की ऊपरी सतह पर टायफोयड जीवाणु जीवित अवस्था मे रहते है और अण्डे के खोल को उतारते समय ये जीवाणु अण्डे की भीतरी भाग में पहुंच कर उसे खाने वालों मे रोग उत्पन्न करते हैं।

(iv) क्षय रोग (Tuberculosis) :

मुर्गियो मे यह रोग माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरक्युलोसिस के पक्षी प्रकार के

जीवाणु द्वारा होता है। ये जीवाणु मुर्गी में यकृत, प्लीहा, आन्त्र और हड्डियों में विकृति पैदा करते हैं।

निर्णय :– मुर्गियों के किस्म का क्षय रोग मनुष्यों में बहुत कम पाया जाता है। इस रोग के जीवाणु अण्डे में भी पाये जाते हैं। इस रोग से बचने के लिये अण्डे को पूर्ण रूप से उबाल कर या पका कर ही खाने के काम में लिया जाना चाहिये। अगर मुर्गी का मांस पूर्ण रूप से पका कर खाया जाये तो इस रोग के फैलने का खतरा नहीं रहता है। किसी मुर्गी में क्षय रोग के लक्षण हों और वे उसके सम्पूर्ण शरीर में फैले हुए हों तो उसे खाने के लिये अयोग्य माना जाता है। अगर सिर्फ जिगर और आंतों में ही रोग के लक्षण हों तो उन्हें हटा कर शेष मांस खाने के उपयोग में लिया जा सकता है, मगर उसे पूर्ण रूप से पका कर ही खाना चाहिये।

(४) अन्य रोगों के कारण :

एरिसिपेलस, लिस्टेरियोसिस जीवाणु और स्टैफिलोकोकस का बहिर्जीवविष भी मुर्गी के मांस के सेवन से मनुष्यों में रोग उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं तथा ऐसे मांस के निर्णय के बारे में पीछे दिया गया है।

मांस प्रदूषण के कारण :–

1. पशु को जब लम्बी दूरी से वधशाला तक लाया जाता है तब लम्बी यात्रा के दौरान वह थकता है और कमजोर हो जाता है, जिसके कारण कई तरह के जीवाणु उसकी सांस से या आंत्र से रक्त में पहुंचते हैं। ऐसे पशुओं का वध करने पर उनका मांस किसी व्यक्ति के सम्पर्क में आने या खाये जाने पर रोग उत्पन्न कर सकता है।

2 अगर वधशाला में पशु का रक्त निकालते वक्त चाकू या छुरी या उसकी चमड़ी पर कुछ जीवाणु हों तो वे रक्त-नलिकाओं द्वारा शरीर के अंगों व मांस में पहुंच जाते हैं।

3. पशु का रक्त निकालते समय जब उसकी भोजन की नली भी कट जाये तो उसमें से निकले खाद्य पदार्थ में होने वाले जीवाणुओं से गर्दन के मांस व जीभ का संदूषण होता है।

4. पशु का मांस, उस पर से चमड़ी हटाते समय पशु के शरीर पर लगे मल-मूत्र व अन्य गन्दगी के कारण प्रदूषित हो जाता है।

5. पशु के शव को गन्दे पानी में धोने से उसके मांस का संदूषण होता है।

6. मांस गन्दे हाथ, कपड़े या किसी औजार के कारण दूषित हो सकता है।

7 वधशाला की फर्श अगर साफ नहीं हो और उस पर अगर मांस रखा जाये तो इससे भी जीवाणुओं द्वारा मांस का संदूषण हो सकता है।

8. अगर बीमार पशु का वध किया जाये तो उसके दूषित मांस से मनुष्यों में रोग उत्पन्न हो सकते हैं।

मांस को प्रदूषित होने से बचाने व नियंत्रण के उपाय .

1. दूर स्थानों से मास के लिये लाये गये पशुओं को वधशाला में 24 घंटे तक आराम करने दें।

2. वधशाला में लाये गये पशुओं के पीने के लिये शुद्ध व आरोग्यप्रद पानी की व्यवस्था करें।

3. पशुओं को वध करने से पहले उन्हे पानी से धोकर उनके शरीर से मल-मूत्र साफ करें ताकि उनके शरीर पर से जीवाणुओं की मात्रा कम हो जायें और उनका वध होने पर जब उनकी चमडी उतारी जाये तो मांस के संदूषण मे कमी हो।

4. कसाई स्वच्छता बनाये रखे और स्टरलाइज औजारों का उपयोग करे। इसके लिये चाकू, छुरी, करोती, कपडे आदि को धोने वाले सोडे के 4 प्रतिशत घोल के पानी में आधा घंटे तक उबालें।

5. मांस उत्पादन के लिये स्वस्थ पशुओं का ही वध करें।

6. वधशाला के फर्श, दीवारों और नालियों की स्वच्छता बनाए रखें।

7. वधशाला में बिजली की रोशनी का पूर्ण प्रबंध करें।

8. कसाई व मास-वितरण के कार्य मे लगे लोगो को चमडी, आख व श्वास का रोग नही होना चाहिये। उनके स्वास्थ्य की समय-समय पर जाच होनी चाहिये तथा उनको स्वच्छता के बारे में पूर्ण ज्ञान कराना चाहिये।

9. मांस व अण्डो को 5° सी. तापमान पर रखें या पकाने के बाद तुरन्त इस्तेमाल करें और बचे हुए खाद्य पदार्थ को रेफ्रिजरेटर में ही रखें।

10. अधपके मांस का सेवन नही करें। मांस को छोटे-छोटे टुकडो में बांट कर पकायें। अगर मांस के बड़े टुकडे पकाने हो तो उन्हें पूर्णतया सही तापमान पर पकायें।

11. मांस निरीक्षक द्वारा वधशाला में पशुओं को वध से पहले व बाद मे उनके मांस का बहुत बारीकी से निरीक्षण करना चाहिये। बीमार पशुओं का वध नही करने देना चाहिये और स्वस्थ पशुओं का वध करवाकर खाने योग्य मास को ही वधशाला से बाहर आने देना चाहिये।

6

पशुओं के शव, अयोग्य एवं बचे हुए मांस का निस्तारण

पशुओं के शव, अयोग्य व बचे हुए मास में विकार पैदा करने वाले कई किस्म के सूक्ष्म जीवाणु होते हैं और इनका निस्तारण ठीक विधि द्वारा नही होने से ये पानी और हवा दोनो को प्रदूषित करते हैं। बीमारी पैदा करने वाले कई किस्म के जीवाणु पशु के मरने के कुछ समय बाद ही समाप्त हो जाते है। इन जीवाणुओं को समाप्त करने मे राइगर मोरटिस (Rigor mortis) की बहुत सहायता रहती है। यह क्रिया पशु के मरने के तुरन्त बाद ही शुरू हो जाती है। स्वस्थ पशु के मांस-पेशी का पी एच. 7 होता है, जबकि पशु के मरने के कुछ समय पश्चात् यह 5.4 तक आ जाता है और इस कारण ज्यादातर सूक्ष्म जीवाणु समाप्त हो जाते हैं। लेकिन कुछ किस्म के जीवाणु, जैसे एन्थ्रेक्स और क्लोस्ट्रीडियम समूह के जीवाणु जब अपने चारों ओर स्पोर बना लेते है तब यह बहुत लम्बे समय तक के लिये जीवित रह सकते है। एन्थ्रेक्स जीवाणुओ को स्पोर बनाने से रोकने के लिये कुछ तरीके अपनाये जा सकते हैं, जैसे कि इस बीमारी से मरने वाले पशु के शव को नही खोलना और शरीर के प्राकृतिक खुले द्वारो (नाक के छिद्र, मुंह, मल और मूत्र निकासी द्वार) को रसायन में भीगी हुई रूई या कपडे द्वारा बन्द करना। इस विधि को अपनाने से इस रोग के जीवाणु हवा के सपर्क मे नही आ पाने के कारण स्पोर बनाने मे असमर्थ रहते हैं।

पशु के मरने के तुरन्त बाद उसके शव को जीवाणु मारने वाले रसायन में भिगोये गये बोरे से ढक देते है। ऐसा करने से कुत्ते, गिद्ध और मक्खियां शव के पास नही आते, और ऐसा नहीं करने पर शव के द्वारा सूक्ष्म जीवाणु फैलते हैं और इस कारण संक्रामक रोगो को नियंत्रित करना मुश्किल हो जाता है। मृत शव के मल-मूत्र मे संदूषित हुई भूमि, घास और पशुघर की बिछावन को भी चूने, लकड़ी के बुरादे या राख द्वारा ढकें और उसका निस्तारण ठीक तरीके से करें। शवो को अक्सर खुली हवा मे ही छोड दिया जाता है। इससे कुत्ते, जगली जानवर, गिद्ध और मक्खियां आकर्षित होती हैं। शवों को हवाई अड्डे के पास कभी नही छोड़ना चाहिये, इससे वहां हजारों की संख्या मे गिद्ध आकर्षित होते हैं और इसके कारण वायुयान या हेलीकोप्टर दुर्घटना-ग्रस्त हो सकते हैं। इनके द्वारा इनफेक्सीयस और

कंटेजीयस बीमारी वाले जीवाणु भी फैलते हैं। अक्सर शवो को शहर के बाहर खुले मे या नदी में छोड़ दिया जाता है। इससे वायुमण्डल की हवा मे दुर्गन्ध फैलती है और जीवाणुओं से पानी और हवा का सदूषण होता है।

ऊपर लिखी गई बातों से यह साफ जाहिर होता है कि पशुओं के शवों तथा अयोग्य व बचे हुए मांस के निस्तारण में लापरवाही बरतने से भारी नुकसान होते है और इस कारण बीमारियों को नियत्रित करने में काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

शवों का सही ढंग से निस्तारण करने के लिये उनको दो श्रेणियों मे बांटते हैं। एक तो वे पशु जो कन्टेजीयस बीमारी द्वारा ग्रसित होकर मरे हो या इसका संदेह हो। ऐसे शवों का पूर्णरूप से निस्तारण कर देना चाहिये। दूसरी श्रेणी मे वे शव, मांस और उनके बचे हुए टुकड़े आते हैं जिनमे बीमारी वाले सूक्ष्म जीवाणु होने का बिल्कुल संदेह नही होता है और वे कारखानो मे पशु आहार या खाद बनाने के काम मे लिये जा सकते हैं।

शवों के निस्तारण के तरीके :–

1. गाड़ना
2. शवों के लिये बनाये गये कुओं का उपयोग
3. जलाना
4. शवो से बाइ प्रोडेक्ट बनाना
   - (ए) गीली विधि द्वारा
   - (बी) सूखी विधि द्वारा

1. गाड़ना :

पशुओं के शवो का अक्सर इस विधि द्वारा निस्तारण किया जाता है। जिन शवों मे स्पोर या केपस्यूल बना सकने वाले जीवाणु हों उन सभी के निस्तारण के लिये यह विधि ठीक नही रहती है। इस तरीके के लिये 6 से 8 फुट गहरा गड्ढा खोदकर उसमे शव रखते हैं और उसे चूने या अन्य जीवाणु मारने वाले रसायन से ढकते है। शव पर कम से कम 4 फुट मिट्टी की परत जरूर डालनी चाहिये। शव का पोस्टमार्टम, खोदे गये गड्ढे के पास ही करना चाहिये और इसके पश्चात् शव व उसके अंदर के सभी अगों और पास में सदूषित हुई घास या मिट्टी आदि सभी गड्ढे में डाल दें। शव की चमड़ी को चाकू द्वारा कई जगह पर से काटते हैं इससे चर्म उद्योग में लगे लोग हतोत्साहित होगे और शव को मिट्टी में से दुबारा निकालने की कोशिश नही करेंगे, क्योकि कटी हुई चमडी की बाजार मे कीमत नही मिलती है। अयोग्य व बचे हुए मांस का भी जमीन मे गाड़ कर निस्तारण किया जाता है, तथा उसे भी चूना या अन्य रसायन से ढक कर मिट्टी मे दबा देते हैं।

एन्थ्रैक्स बीमारी से मरे हुए पशुओं के शवों का पोस्टमार्टम नही करना चाहिये। शव मे हवा नही मिल पाने के कारण ये जीवाणु मृत शरीर में तीन दिनों से ज्यादा समय के लिये जीवित नही रह पाते हैं और सड़ने की क्रिया द्वारा ये शीघ्र ही मर जाते है। कुत्ते या अन्य जगली जानवर शवों की गन्ध मे आकर्षित हुआ करते हैं इसलिये इन्हें रोकने के लिये वहां कंटीले तार या कंटीली झाड़ी की बाड़ लगायें और उस गड्डे की मिट्टी पर फिनाइल का घोल डाल देवें।

जहा शवों का निस्तारण करना हो वह जगह शहर की आबादी से काफी दूर होनी चाहिये।

2. शवो के लिये बनाये गये कुओं का उपयोग :

ये कुएं फार्म या गावो के लिये बहुत उपयोगी हैं। ये जमीन में 10 से 20 फुट गहरे और 10 से 15 फुट व्यास के होते है। इनके फर्श पर सिर्फ मिट्टी होती है और इसकी दीवार सीमेंट व कंकरीट की बनाई जाती है। इसके ऊपर कुएं के चारो ओर लोहे की बनी जाली का ढाचा लगाया जाता है जिससे पक्षी अंदर नही जा सकते है। जमीन के ऊपर इस पर दस फुट गोलाई मे दीवार भी बनाई जा सकती है और उस पर एक जाली का ढांचा रखा जाता है। जहां वर्षा ज्यादा हो वहा इसकी छत के लिये एक शैड का प्रबंध किया जा सकता है और उसके नीचे कुछ जगह वेन्टीलेशन के लिये दी जानी चाहिये। कुएं के ऊपर जमीन पर सीमेंट का एक प्लेटफार्म बनाते हैं जिस पर शव का पोस्टमार्टम किया जाता है और शव व उसके भीतरी अंगो को कुएं मे फेंक दिया जाता है। शव को चूने और नमक से ढका जाता है। कुछ दिनो बाद चमड़ी व मास सड़कर गल जाते हैं और सिर्फ हड्डियां ही रह जाती है। इस विधि द्वारा शवों की हड्डियों का नुकसान नही होता है, और उन्हे इकट्ठा करके बेचा जा सकता है।

3. जलाना :

शवों, अयोग्य व बचे हुए मास आदि सभी के निस्तारण के लिये जलाने की विधि बहुत ही उत्तम और स्वास्थ्यप्रद है। कंटेजीयस रोगो से मरे हुए पशुओ के निस्तारण के लिये इस विधि को ही काम में लाया जाना चाहिये। शव जलाने के लिये जमीन या दाहक भट्टी का उपयोग किया जा सकता है।

गायों के लिये 7 फुट लम्बा, 5 फुट चौड़ा और $1\frac{1}{2}$ फुट गहरा गड्ढा बनाया जाता है। इसके अन्दर भी एक छोटा गड्ढा बनाया जाता है, जो 7 फुट लम्बा, 4 फुट चौड़ा और $2\frac{1}{2}$ फुट गहरा होता है। छोटे वाले गड्ढे में लकडी, घास और जलाने के लिये तेल रक्खा जाता है। ऊपर वाले गड्ढे की चौडाई की तरफ जो आधा फुट जगह शेष रहती है उस पर कैंची के आकार मे दो लोहे की छड़ें लगाकर उस पर शव को रखा जाता है। शव के आसपास कुछ लकड़ियां रख कर शव को जला देते हैं।

शवों को जमीन पर जलाने के लिये 2 फुट की दूरी पर दो समानांतर खाइयां 5 से 6 फुट लम्बी, 9 इंच चौड़ी और 9 इंच गहरी खोदी जाती है। शव को खाइयों पर रखा जाता है। शव के ऊपर व आसपास लकड़ियां, कोयले और तेल को रख कर उसे जलाया जाता है। अगर शव किसी कंटेजीयस बीमारी का न हो तो इसके भीतर से पेट, आंतें आदि बाहर निकाल कर आग जलाये तो ज्यादा अच्छा रहता है। बड़े शहरों, प्रयोगशालाओं और जहा पर ज्यादा तादाद मे शव, सदूषित मांस इत्यादि हों तो वहां दाहन भट्टी का उपयोग किया जाता है। यह काफी सस्ती व सही विधि है। यह उचित जगह पर बनाई जाती है इसलिये इससे निकलने वाली दुर्गन्ध से आसपास रहने वालों को तकलीफ नही होती है। इसके लिये लकडी, कोयला, तेल, गैस या बिजली किसी का भी उपयोग किया जा सकता है। सही व तीव्र गति से शव का निस्तारण करने के लिये भट्टी में करीबन 1300° सी. तापक्रम की जरूरत होती है।

4. शवों से बाइ प्रोडक्ट बनाना :

ऊपर दिये गये तरीकों से कुछ भी बाई प्रोडक्ट हासिल नही होता है और इसके कारण काफी नुकसान उठाना पड़ता है। मास से बाई प्रोडक्ट बनाने के लिये उन पशुओं के शवो को चुना जाता है जो इन्फेक्सीयस या कन्टेजीयस बीमारी से ग्रसित होकर नही मरे हों, और जिनकी मृत्यु किसी दुर्घटना में हुई हो, या जिन पशुओं का मांस उनकी शारीरिक कमजोरी के कारण अच्छे खाने योग्य मांस मे नही आता हो या न खाने योग्य बचा हुआ मांस आदि। अगर इन सभी का सही उपयोग नही किया जाये तो, एक तो काफी नुकसान होगा और दूसरा इसके सडने से बीमारिया और बदबू फैलेगी। अगर बाइ प्रोडक्ट बनाने के लिये कोई शव लाया जाये तो उसके साथ मे डाक्टर का प्रमाण पत्र भी लाना जरूरी होता है, जिसमें खासकर यह लिखा हो कि 'यह शव एन्थ्रैक्स बीमारी का' नही है। इस विधि द्वारा अनुपयोगी मास से वसा, और कुत्तो, बिल्लियों व मुर्गियों के लिये उपयोगी भोजन बनाया जाता है और फर्टीलाइजर भी तैयार किये जाते हैं। इसके लिये निम्न विधियो का उपयोग किया जा सकता है :–

(ए) गीली विधि द्वारा :

मांस को हड्डियों आदि से अलग करते हैं और उन्हें ओटोक्लेव में 15 पौण्ड दाब पर आधा घंटे तक रख कर मास व हड्डियों से आहार बनाते हैं। इस विधि द्वारा बने आहार से मांस की वसा और प्रोटीन का काफी नुकसान होता है। इसके लिये वसा को मास से और हड्डियों से अलग किया जाता है। इससे बने प्रोडक्ट को फर्टीलाइजर के लिये काम मे लाया जाता है।

(ब) सूखी विधि द्वारा :

एक बंद कमरेनुमा बड़े पात्र में मांस को रखा जाता है। उसके चारों ओर पाइप

मे गर्म वाष्प प्रवाहित होती रहती है। उसके अन्दर एक लोहे की छड़ होती है जिस पर बहुत सारे हत्थे (Arms) लगे रहते है। जब वह छड़ घूमती है तो उसके हत्थे द्वारा मांस ऊपर नीचे हिलता रहता है और उसमें मांस अपनी ही पिघली हुई वसा में पक कर तैयार हो जाता है। ज्यादा वसा, जो पिघली हुई अवस्था में होती है, इसके पैंदे में लगी टोंटी को खोलकर अलग निकाल ली जाती है। इस विधि में शव की वसा और प्रोटीन बेकार नहीं जाते। उसमे पका हुआ मांस पशुओं को खिलाने के काम में लिया जाता है या फिर उसके साथ फॉसफेट मिलाकर खेतों के लिये फर्टीलाइजर तैयार किया जा सकता है। यह विधि बहुत उपयोगी है क्योंकि इसके द्वारा कीमती बाई प्रोडक्ट तैयार होते है।

वृक्षारोपण

वृक्षारोपण द्वारा प्रदूषण से मुक्ति का एक उपाय

वास्तव में प्रदूषण एक तरह का जहर है जो हवा, पानी, प्रकाश और खाद्य पदार्थ जैसे प्राणदायक तत्वों को जहरीला बनाता है। आज के युग में धरती पर वृक्ष ही एक ऐसा माध्यम है जो अपने पास होने वाले प्रदूषण से हमारी रक्षा करता है, प्राण वायु देता है तथा दूषित पानी में पनप कर पानी के स्रोतों को प्रदूषण से होने वाले खतरों से बचाता है। जैसा कि विदित है कि वृक्षारोपण द्वारा प्रदूषण से मुक्ति मिलती है परन्तु एक वृक्ष को बढने मे कई वर्ष लगते है इसलिये वृक्ष लगाने का काम जल्दी से जल्दी हाथ में लेना चाहिये।

यह बात सच है कि मनुष्यों और पशुओं के लिये, चाहे वे शहर में हों या वनो मे, वृक्ष उनके जीवन और मृत्यु का प्रश्न है, क्योंकि अगर वृक्षों को रोप कर उनकी देखभाल नहीं की जाये तो आने वाले वर्षों मे जीवन दुष्कर हो जायेगा। हर व्यक्ति को यह भावना पैदा करनी होगी कि 'वृक्ष होंगे तो पर्यावरण अच्छा हो सकेगा, और इसके कारण मनुष्य व पशु और पक्षी भी स्वस्थ रह सकेंगे। इसलिये अच्छे स्वास्थ्य और वातावरण तथा दीर्घ जीवन के लिये वृक्षारोपण पर ज्यादा ध्यान देना बहुत ही जरूरी है जिससे हर प्रदेश का विकास पूर्ण रूप से हो सकेगा।

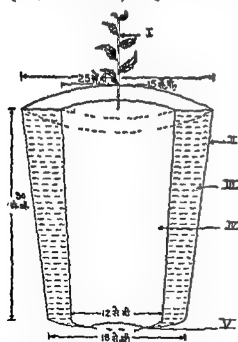
प्रदूषण की समस्या किसी खास व्यक्ति विशेष की नहीं है बल्कि यह सारे मानव समाज की समस्या है। यहां तक कि नगरपालिका वाले क्षेत्र मे भी गन्दे पानी से होने वाले प्रदूषण को वृक्ष लगा कर कम किया जा सकता है।

वृक्ष हमारा जीवन है अतः हर व्यक्ति को खुद को और मिल-जुल कर तथा संस्थाएं बनाकर वृक्षारोपण करना चाहिये। आज के युग में पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के लिए हर व्यक्ति को तहे दिल से भागीदारी निभानी चाहिये। राज्यों मे 'वन विभाग' हर साल योजना के अनुसार करोड़ों पौधे लगवाता है लेकिन इसकी पूर्ण सफलता तभी मिल सकती है जब हर व्यक्ति इन पौधो की देखभाल अच्छी तरह से करे, ताकि उनके लिये तथा भावी पीढ़ी के लिए भविष्य में एक सुनहरा पर्यावरण तैयार हो सके।

हर व्यक्ति को वृक्षारोपण करके पर्यावरण उस तरह का बनाना है जैसा कि हमे बुजुर्गों से विरासत मे मिला। मनुष्य बिना सोचे-समझे अपनी जरूरतें पूरी

करने के लिये वृक्ष काटते जा रहे हैं, जिससे जंगल उजड़ते जा रहे हैं और हरा-भरा जगल वजर भूमि मे बदलता जा रहा है। इसी कारण से आज मानव समाज को बाढ़ और सूखे का सामना करना पड रहा है। इन प्राकृतिक विपदाओं से बचने के लिए वृक्षारोपण करना बहुत जरूरी है। इससे प्रकृति का संतुलन बना रहेगा। पिछले 30 सालों से भारत की आबादी तेज से बढ़ी है और इसके साथ ही कृषि और कारखानों के क्षेत्र में भी बहुत बढ़ोतरी हुई है। कृषि के काम में लिये जाने वाले रासायनिक पदार्थों और कारखानों से निकलने वाली गंदगी के कारण प्रदूषण बढ गया है। इन्ही कारणों से पिछले 15 सालों से प्रदूषण की समस्या बहुत तेजी से बढ़ी है और यह एक चिन्ता का विषय है। इसके कारण हमारा देश ही नही बल्कि पूरा विश्व प्रभावित है।

प्रदूषण की समस्या को हल करने के लिये हर व्यक्ति को आधुनिक तरीके से (चित्र 10) जल्दी बढ़ने वाले वृक्ष लगाने चाहिये। पौधों की सुस्थापना के समय उनको नियमित पानी देने में होने वाली परेशानी से और पानी की मात्रा मे बचत करने के लिये, केन्द्रीय मरु अनुसधान सस्थान, जोधपुर के बीकानेर प्रादेशिक संस्थान (गुप्ता आदि, 1987)* द्वारा एक विकसित की गई तकनीक का उपयोग किया जा सकता है। इस तकनीक में एक दोहरी दीवार वाले गमले का उपयोग करते हैं (चित्र 10)।

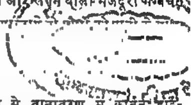


चित्र 10. परिवर्धित गमले का अनुदध्य काट। I. पौधा, II. रंग से पुती हुई सतह, III. पानी, IV. मिट्टी और V. खुला हुआ भाग।

---

* आई. सी. गुप्ता, पी. एम. सिंह, एन. डी. यादव तथा बी. डी. शर्मा, (1987) पौधों को सुस्थापित करने की नई विधि : परिवर्धित गमला। आविष्कार, अगस्त, 293–294.

इस गमले की बाहरी दीवार के मुह का व्यास 25 से मी. तथा भीतरी गमले का व्यास 15 से. मी. होता है। गमले की ऊंचाई 30 से मी. तथा आधार पर बाहरी और अन्दर के गमले का व्यास क्रमश: 18 तथा 12 से.मी रहता है। भूमि मे पानी का रिसाव रोकने के लिये गमले की बाहरी दीवार कोलतार से या सीमेन्ट से पोत दी जाती है। दोनों गमलो के बीच के स्थान मे पानी भरा जाता है तथा अन्दर वाले गमले में नर्सरी से प्राप्त पौधा उसकी मिट्टी सहित लगाया जाता है। पानी भरे हुए स्थान को ऊपर से पोलीथीन से ढक देते है जिससे कि वाष्पन द्वारा पानी की हानि नही हो। अन्दर वाले गमले का तल पूरा खुला रहता है ताकि वृद्धि के समय पौधे की जड़ें सुगमतापूर्वक नीचे की भूमि की तरफ बढ सकें। गमले के अदर भरी गई मिट्टी में उत्पन्न चूषक बल से पानी अदर की ओर रिसता है और गमले की मिट्टी को लगातार नम बनाए रखता है जिससे पौधो की वृद्धि कम पानी मे भी अच्छी होती रहती है। इस तकनीक से जल के परिवहन, मात्रा और लगने वाली मजदूरी की बचत होती है। अगर पानी में [illegible]
साथ खाद भी मिल [illegible]
जमीन मे रखकर [illegible]



वन कम होते रहने और आवादी के बढने से वातावरण में कार्बन डाइ-आक्साइड की मात्रा सामान्य से अधिक बढ़ती जा रही है जिसके कारण मनुष्यों और दूसरे प्राणी मात्र को आने वाले समय मे एक गम्भीर समस्या का सामना करना पड़ सकता है। आज के समय मे शहरों और कारखानो के पास वाले क्षेत्र के वायुमण्डल मे कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा 330 अंश प्रति मिलियन है जो कि कारखानों के लगने से पहले से 14 प्रतिशत ज्यादा हुई है। इससे यह बात साफ जाहिर होती है कि वनों के इलाके घटने व आवादी और कारखानो के बढ़ने से वातावरण मे आक्सीकरण की क्रिया में कमी होती जा रही है और इसलिए कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। यह समस्या मानव जीवन के लिये एक गम्भीर चुनौती है। इसलिये यह जरूरी है कि सभी जगह आवादी वाले भाग के पास नये उपवन, बाग व बगीचे लगाये जावें जिससे शहरों के लिये शुद्ध हवा मिल सके, क्योंकि ये पेड़ फेफड़ों के रूप मे कार्य करते रहते हैं। ये वायुमण्डल से कार्बन डाइआक्साइड लेकर बदले में शुद्ध हवा देते हैं।

कारखानों वाले क्षेत्रो मे और जहां धुआं तथा जहरीली गैसें छोड़ी जावें वहा भी वृक्ष हवा में फैलने वाले इस जहर को बराबर लेते रहते हैं और बदले में वायु-मण्डल में शुद्ध हवा छोड़ते रहते हैं। कारखानों से निकलने वाली जहरीली गैसों मे से सल्फर डाइआक्साइड, नाइट्रिक आक्साइड, ओजोन, हाइड्रोजन सल्फाईड, हाइ-ड्रोजन-क्लोराइड और क्लोरीन आदि गैसो को वृक्षों की पत्तिया हवा से सोखती

रहती है और वातावरण को दूषित होने से बचाती हैं जिससे कई मनुष्यो व जानवरो की जान बचती है।

आज के समय में वृक्ष नही लगाने से अगले 50 सालों बाद शहरों में यह हालत हो सकती है कि मनुष्यो को जिन्दा रहने के लिये आक्सीजन मास्क लगाकर घूमना पडेगा। यदि वृक्ष लगाकर प्रदूषण को रोका नही गया तो मनुष्यों और पशुओं मे सक्रामक रोग, मानसिक हालत का बिगडना और कई तरह की कैंसर जैसी भयंकर बीमारिया फैल सकती हैं। इसलिये इन सभी बीमारियो से बचने के लिये वृक्षारोपण जरूरी है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर राव इस संबंध में बताते हैं कि कई तरह के वृक्ष हवा से हानिकारक गैसो का विषपान कर सकते हैं। कुछ वृक्ष रेतीली भूमि पर भी लगाये जा सकते है। इनमें मुख्यतः पीपल, बरगद, कचनार, अर्जुन, अशोक, नीम और गुलनार आदि है।

प्रकृति मे वनस्पति और जीव-जन्तुओ के समूह एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं। इनसे पर्यावरण में अच्छा वातावरण, पर्याप्त जलस्रोत और भूमिगत व्यवस्था भी अच्छी रहती है। वृक्षारोपण से और भी कई फायदे हैं, विशेषतः हवा मे नमी बनी रहती है जिससे गर्मी से काफी बचाव रहता है और ऐसी जगहों पर वर्षा भी अधिक होती है। वृक्षों से जो पत्तिया गिरती है वे सूखने और सड़ने पर पेड़ों व खेतों के लिये अच्छी खाद का काम करती है व इससे उपज में बढोतरी भी होती है। वृक्षों के कारण भूमि का कटाव रुकता है तथा भूमि के नीचे पानी का अच्छा जमाव होता है। वृक्षो के कारण जीव व जन्तुओं को भी संरक्षण मिलता है।

जहां वन होते है वहा वर्षा का पानी एकदम जमीन में सोख लिया जाता है और वह पानी जल्दी ही धरती के निचले पानी के स्रोतो में पहुंच जाता है। इस प्रकार जहा वनों में वृक्ष अधिक होते है उस धरती के नीचे पानी बहुत मात्रा मे इकट्ठा हुआ मिलता है और इससे बहुत बड़ा आर्थिक फायदा होता है।

वृक्ष मरुभूमि का नियंत्रण करते है और भूमि में बढ़ने वाले क्षार तत्वो से होने वाले नुकसान से बचाते है।

वृक्षों के कारण पशुओं को अच्छा वातावरण मिलता है और कुछ तरह के वृक्षो की पत्तियां उनके चारे के काम मे भी आती हैं जिससे उनको दूध देने की क्षमता में बढ़ोतरी होती है। प्रदूषण की रोकथाम और अच्छे व संतुलित पर्यावरण के लिये हमारे पूरे भू-भाग के 33 प्रतिशत भाग पर वन होने जरूरी है। भारत में $12\frac{1}{2}$ प्रतिशत क्षेत्र मे ही वन पाये जाते है और जहां-जहां 10 प्रतिशत वन का भाग उजाड हो गया है वहा बर्बादी ही हुई है। राजस्थान मे वन क्षेत्र घटने की दर प्रति 10 सालो मे एक प्रतिशत रही है। राजस्थान मे वन क्षेत्र कुल 4 प्रतिशत भूमि पर ही है, जिससे यह बात सामने आती है कि राजस्थान मे वनों की बहुत कमी है।

भू उपग्रह से राजस्थान और हरियाणा के जंगलों की तस्वीर ली गयी तो पता लगा कि दोनों प्रदेशों में जहां-जहां विश्नोई समुदाय के लोग बसे हुए हैं वहां ही हरियाली दिखाई दी। इससे यह साफ जाहिर होता है कि वृक्षों की जी-जान से सेवा की जाये तो रेगिस्तान को भी हरा-भरा किया जा सकता है। इसलिये परिवार के हर सदस्य को एक वृक्ष जरूर लगाकर उसकी रखवाली की जिम्मेदारी लेनी चाहिये। इन वृक्षों के प्रति दोस्ती की भावना जगाना भी जरूरी है। इससे फायदा ही फायदा है और खास कर प्रदूषण की रोकथाम आसानी से होती है।

भारत की प्राचीन संस्कृति में भी यह स्पष्ट झलकता है कि आश्रम व्यवस्था के ब्रह्मचर्य काल मे और वानप्रस्थ अवस्था में भी मनुष्य पेड़ लगाकर उनकी देख-भाल किया करते थे।

कृषि-क्षेत्र की बढती माग को पूरी करने के लिये वन-क्षेत्रो को घटाना नही चाहिये और साथ मे यह भी ख्याल रखना चाहिये कि पशुओं की संख्या मे बढ़ोतरी हो रही है और इनसे वनों मे वृक्षों को होने वाले नुकसान की रोकथाम जरूर करनी चाहिये।

आज के युग में मनुष्यों और पशुओं का जीवन बहुत विषैला होता जा रहा है क्योंकि इनके लिये आज न तो खाने के लिये शुद्ध अन्न है, न पीने के लिये शुद्ध पानी और न ही सांस लेने के लिये प्राणदायी साफ-सुथरी हवा ही है। आज के युग मे जितनी वैज्ञानिक प्रगति हुई है उसके साथ-साथ एक ओर मनुष्य अन्न, जल और हवा को अपने भौतिक कारणों से दूषित करता जा रहा है। आज सभी लोग इस बढ़ते हुए प्रदूषण से बचने के तरीके लगातार खोज रहे हैं, पर उनको यह बात नही भूलनी चाहिये कि प्रकृति ने हमें हरे-भरे वृक्ष और वन विरासत मे दिये हैं। इन वृक्षों द्वारा बहुत ही आसानी से मनुष्य गैसीय, पानी और आवाज जैसी प्रदूषण से उत्पन्न होने वाली हानियों से बच सकता है। यह सच है कि वृक्ष ही ऐसी चीज है जो कि दूषित वातावरण को बदलकर हमे प्राण-वायु देती है जिसमे वातावरण शुद्ध रहता है। ऐसा माना गया है कि औसतन 50 टन भार वाला एक हरा-भरा वृक्ष एक साल मे करीबन एक टन आक्सीजन छोड़ता है। वृक्ष दूषित पानी को भी साफ करते है और साथ ही शोर से होने वाले प्रदूषण को भी कम करते हैं। इस तरह से वृक्ष प्रदूषण रोकने मे हमारी बहुत मदद करते हैं। हर व्यक्ति को अपने आंगन में, खेत में, जमीन पर, रेल मार्गों के साथ-साथ, सडकों के किनारे और कारखानो वाली बस्ती मे वृक्ष जरूर लगाने चाहिये ताकि उनका जीवन इस प्रदूषित वातावरण मे भी सुरक्षित रह सके।

प्रदूषण रोकने के लिये पर्यावरण सरक्षण आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है। विकास के नाम पर आज हम भावी पीढी के लिये जहरीली वायु, दूषित जल, बंजर भूमि, नगे पहाड़, कोलाहल पूर्ण वातावरण और मौसम के घातक परिवर्तन

जैसी समस्याएं छोड़ रहे हैं। इन सभी समस्याओं के समाधान के लिये 5 जून, 1972 को प्रथम अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण सम्मेलन का आयोजन हुआ और तब से 5 जून हर वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में मनाया जाने लगा है। पर्यावरण संरक्षण के लिये भारतवर्ष में 1976 में 42 वें संविधान संशोधन के जरिये हमारे संविधान में एक नया 'नीति निर्देशक' सिद्धान्त (अनुच्छेद 48 ए) जोड़ा गया जिसके अनुसार 'हर एक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह वनों, झीलों, नदियों एवं वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करे और उसे बेहतर बनाये तथा सभी जीवधारियों के प्रति करुणा भाव अपनाये। उपरोक्त समस्याओं की ओर अगर पूर्ण मनोयोग से दृष्टिपात किया जाये तो यह साफ जाहिर होता है कि यदि वृक्षारोपण के महत्व को स्वीकारते हुए पेड़ पौधों को विकसित किया जाये तो इससे जहरीली वायु, दूषित जल, बंजर भूमि, नंगे पहाड़, कोलाहल पूर्ण वातावरण और मौसम जैसी जटिल समस्याओं का समाधान करने में बहुत सहायता मिलेगी। इसलिये पेड़-पौधों को लगाना और उनकी रक्षा की भावना रखना हर व्यक्ति और खासकर विद्यार्थियों के लिये बहुत जरूरी है। इससे आने वाली पीढ़ी को प्रदूषित वातावरण से मुक्ति मिल सकेगी।

द्वितीय भाग

पानी और हवा का विश्लेषण

(प्रायोगिक)

को अपने साथ बहा ले जाता है जो कि कुछ समय में पानी में गलकर ह्यूमिक अम्ल (Humic acid) का निर्माण करते हैं। इसके साथ ही यह पानी मनुष्यों एवं पशुओं के मल को भी अपने साथ बहाकर ले जाता है जिसमें रोग उत्पन्न करने वाले हानिकारक सूक्ष्म जीवाणु होते हैं। इस तरह का पानी जो शहर, गांव एवं औद्योगिक बस्तियों से आता है, अपने साथ अस्वीकृत खनिज तथा विषाक्त पदार्थ बहा ले आता है। अतः वर्षा का पानी हानिकारक होता जाता है। ऐसे पानी में शैवाल (Algae), भूमि के जीवाणु, फफूंदी एवं प्राणी जगत् के मुख्य जीव जैसे मोलस्का, स्पॉंज एवं प्रोटोजोआ भी हो सकते हैं।

(ख) भूमिगत पानी :

छिछले कुए का भूमिगत पानी संदेहास्पद होता है क्योंकि उसमें अकार्बनिक व कार्बनिक अशुद्धियां व अनेक तरह के हानिकारक सूक्ष्मजीवी भी पाये जाते हैं। *गहरे कुओं का पानी भारी होता है क्योंकि उसमें कैल्शियम, मैग्निशियम के बाई* कार्बोनेट्स, सल्फेट्स, फ्लोराइड व कैल्शियम, मैग्निशियम और सोडियम के नाइट्रेट्स पाये जाते हैं।

पानी के वितरण के कई स्रोत होते हैं और हर प्रकार के स्रोत में कई तरह की अशुद्धियां पाई जा सकती हैं। इसके लिये यह आवश्यक हो जाता है कि पानी की शुद्धि व आरोग्यता के लिये पूर्णतया परीक्षण किया जावे जिससे मनुष्यों और जानवरों का स्वास्थ्य सुरक्षित रखा जा सके तथा जानवरों से होने वाले उत्पादन में भी वृद्धि हो सके। शुद्ध एव आरोग्यप्रद पानी, जो कि डेयरी, कुक्कुटशाला और वध-शाला इत्यादि में शुद्ध दूध, अण्डे और मांस के उत्पादन के लिये वितरित किया जाता है, से जन-स्वास्थ्य की भी रक्षा होती है।

पानी का नमूना एवं उसका परीक्षण :

पानी के नमूनों को एकत्रित करके उनका परीक्षण निम्न उद्देश्यों के लिये किया जाता है —

उद्देश्य :

(1) शुद्धता की स्थिति को बनाये रखना।

(2) पानी का उपलब्ध स्रोत मनुष्यों व जानवरों के काम आ सके, इसका पता लगाना।

(3) तुलनात्मक परीक्षणों के द्वारा पानी के सबसे उत्तम स्रोत का चयन करना।

(4) पानी की योग्यता का घरेलू उपयोग के लिये, चमड़े व ऊन की धुलाई के लिये और बूचड़खानों के लिये पता लगाना।

(5) नदी के पानी में होने वाले प्रदूषण का पता लगाकर उसके उद्गमस्थल की खोज करना ।

(6) नदी व कुओं के पानी के गुणों मे वर्षा, बाढ व अकाल के समय होने वाले परिवर्तन का पता लगाना ।

(7) पानी का धातुओं पर होने वाले प्रभाव का पता लगाना ।
(उदाहरण – धातु की टंकियां व नल जो कि पानी के वितरण में काम आते हैं ।)

(8) पानी को शुद्ध करने एवं उसे मृदु बनाने वाले रसायनो की क्षमता का पता लगाना ।

(9) गहरे कुओं मे विभिन्न गहराइयो पर पानी के गुणो मे होते रहने वाले परिवर्तनों को जांचना ।

(10) हैजा, दस्त, डिफ्थीरिया, एन्थ्रॅक्स, लगडी, खुरपका – मुखपका और रिण्डरपॅस्ट इत्यादि पानी से फैलने वाली बीमारियों का महामारी के समय जीवाणुओ वाले पानी के स्रोतों का पता लगाना ।

(11) गंठिया व वृक्क तथा अन्य बीमारियो से पीडित मनुष्यो और जानवरों के लिये उपलब्ध पानी की योग्यता का पता लगाना ।

(12) किसी भी स्थान पर पाये जाने वाले पानी को उपयोग मे लेने से पहले उसको शुद्ध करने के लिये अच्छा व सस्ता तरीका निकालना ।

(13) नलों से या भूमि के नीचे बिछे गट्टर से निकले गंदे पानी के रिसाव का पता लगाना ।

पानी के नमूने इकट्ठे करना :

पानी का नमूना लेते समय बहुत सावधानिया रखनी चाहियें ताकि वह किन्ही बाहरी कारणो से सदूषित नहीं हो । इसके साथ पूर्ण जानकारी देनी चाहियें ताकि उसका सही परीक्षण हो सके । पानी का नमूना लेते समय निम्न सावधानियां रखनी चाहिये :–

(अ) पानी के नमूने का प्रयोगशाला में किस तरह का विश्लेपण करना है जैसे– भौतिक, रासायनिक, जैविक व सूक्ष्मदर्शी परीक्षण ।

(ब) पानी के नमूने को अलग-अलग समय में तथा अनेक बार इकट्ठा किया जाना चाहिये जिससे प्रयोगशाला में उसका विश्लेपण करके सही परिणाम प्राप्त किया जा सके ।

(स) पानी के नमूने को इकट्ठा करते समय उसके बहाव की गति मे होने वाले परिवर्तन को ध्यान में रखना चाहियें ।

(द) विश्लेषण से निकले परिणामों को पूर्णरूप से उपयोग में लाना चाहिये।

बोतल का संकलन :

पानी के नमूने बोरो-सिलिकेट काँच, कठोर रबर अथवा पोलीथीन की बोतलों में इकट्ठे किये जाने चाहिये। जीवाणुओं के परीक्षण के लिये कानिंग के काँच की बनी रंगहीन व अच्छे ढक्कन वाली बोतल (जिसमें हवा व धूल न जा सके) ही काम में लेनी चाहिये। जब पानी के नमूने को कार्बनिक पदार्थों के विश्लेषण के लिये इकट्ठा किया जाये तो उसे हरे या गहरे भूरे रंग की बोतल में ही लेना चाहिये। पानी में शेष बची क्लोरीन की जांच के लिये गहरे रंग की बोतल ही काम में लेनी चाहिये। रेडियोधर्मी तत्वों की जांच के लिये पोलीथीन की बोतल काम में ली जानी चाहिये।

बोतल तैयार करना :

बोतल एवं उसके ढक्कन को अच्छे साबुन के पाउडर एवं साफ पानी से धोना चाहिये। फिर बोतल को गंधक के अम्ल से तथा बाद में शुद्ध पानी से बार-बार धोना चाहिये। धुली हुई बोतल को अच्छी तरह सुखाकर उस पर ढक्कन को लगाकर रख देना चाहिये। पोलीथीन की बोतल को शुद्ध पानी में या उबलते हुए शुद्ध पानी में रखकर साफ करना चाहिये। काँच की बोतल को जीवाणु रहित करने के लिये उसे ओटोक्लेव (Autoclave) में 15 पौण्ड के दबाव पर बीस मिनट तक या 160° सी पर गर्म हवा के ओवन (Hot air oven) में नब्बे मिनट तक रखना चाहिये।

नमूने एकत्रित करने की सामान्य विधियां

पानी के नमूने के लिये 5 लीटर भराव-क्षमता वाली ढक्कनदार कांच की बोतल को काम में लेना चाहिये। पानी को कीप या नलिका की सहायता से एकत्रित न करके सीधा जीवाणु रहित बोतल में ही एकत्रित करना चाहिये। जो बोतल नमूने के पानी के लिये काम में ली जा रही है, उसे उसी पानी से एक बार साफ करना चाहिये। यह सावधानी बरतनी चाहिये कि हाथ से लगकर पानी बोतल में न चला जाय। बोतल को पैंदे से पकड़ना चाहिये और उसमें ¾ ही पानी भरना चाहिये क्योंकि पानी तापक्रम के कारण ऊपर उठकर बोतल को तोड़ सकता है।

नमूने के प्रकार :

(अ) ग्रेब नमूना (Grab Sample) : पानी का वह नमूना जो पोखर या झील के किसी भी स्थान से एकाएक लिया गया हो।

(ब) कम्पोजिट नमूना (Composit sample) : पानी का वह नमूना जो विभिन्न जगहों से अलग-अलग गहराई (लम्बवत् व समानान्तर) से लेकर एक साथ मिला दिया गया हो।

(स) इंटीग्रेटेड नमूना (Integrated Sample) . पानी का वह नमूना जिसे किसी निश्चित समय के अन्तर पर नदी या स्रोतों से इकट्ठा किया जाता है। फिर ऐसे नमूनों को एक साथ मिलाकर उसका एक भाग लेकर परीक्षण किया जाता है। ऐसा करने से बहते हुए पानी में उत्पन्न होने वाली विभिन्नताओं का पता लगाया जा सकता है।

(द) प्रतिनिधि रूप का नमूना (Representative Sample) : पानी का नमूना जो भिन्न-भिन्न समय पर बार-बार लिया जाता है। बार-बार पानी के नमूने का लेना उसके उपयोग मे लेने के उद्देश्य व तद्देशीय जनसख्या पर निर्भर करता है।

पानी के नमूनों को विभिन्न स्रोतों से एकत्रित करने के तरीके :

धरातल के स्रोत :

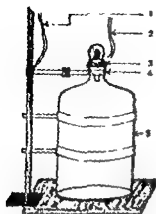
तालाब एवं झीलें : पानी के नमूनो को किनारे से काफी दूर जहां पानी की ज्यादा गहराई हो वहां से इकट्ठा करना चाहिये। नमूने के पानी को ठीक ढंग से एकत्रित करने के लिये पानी मे उठे हुए धूल के कणों को ठीक से नीचे बैठने देना चाहिये। पानी का नमूना लेने वाली बोतल को उसके पैंदे से पकड़ना चाहिये। ढक्कन लगी बोतल को पानी में एक से दो फीट की गहराई तक उल्टी अवस्था में ले जाना चाहिये। बोतल का मुंह ऊपर उठाते हुए उसे तिरछी अवस्था मे करके उसका ढक्कन हटा लेना चाहिये जिससे बोतल के अन्दर की हवा बाहर निकल सके तथा पानी अन्दर चला जाये। बोतल को उसके तीन चौथाई भाग तक भरकर उस पर ढक्कन लगाकर बाहर निकाल लेना चाहिये। नाद (Water trough) से भी इसी विधि से पानी के नमूने इकट्ठे करने चाहिये।

नदियां एवं झरने : नदी व नाले से नमूने के रूप मे पानी उस जगह से इकट्ठा करना चाहिये जहा पानी सही धारा के रूप मे बह रहा हो। किनारे से पानी का नमूना कभी भी नहीं लेना चाहिये। मझधार ही पानी के नमूने को लेने की सही जगह होती है। कम्पोजिट व इंटीग्रेटेड पानी के नमूने भी इसी तरह से लेने चाहिये।

कुएं

छिछले कुएं : नमूने की बोतल को लोहे अथवा किसी धातु के ढाचे (Stand) पर पेचो की सहायता से कस देना चाहिये (चित्र 11)। बोतल के ढक्कन और धातु के ढाचे को दो अलग-अलग रस्सियो से बांध देना चाहिये। धातु के ढाचे को व बोतल को कुएं की गहराई मे उतारते समय इस बात का पूरा ख्याल रखना चाहिये कि बोतल कुए की दीवार से न टकराने पाये। जब बोतल करीब आठ फीट तक पानी के अन्दर तक चली जाये तब ढक्कन वाली रस्सी को एक हल्का सा झटका देना चाहिये।

इस प्रकार ढक्कन बोतल से अलग हो जायेगा और हवा के बुलबुले बाहर निकलने लगेंगे व पानी बोतल के अन्दर भरने लगेगा। जब पानी की बोतल से हवा के बुलबुले निकलने बन्द हो जाये तब इस बात का संकेत होता है कि बोतल पानी से पूरी भर गई है। बोतल को कुएं से बाहर निकाल कर उसके ऊपर ढक्कन लगा देना चाहिये।



चित्र 11. छिछले कुए से पानी का नमूना लेने वाली बोतल। (1) धातु के ढाचे पर बन्धी रस्सी, (2) रस्सी, (3) बोतल के ढक्कन पर बन्धी रस्सी, (4) शिकंजा और (5) बोतल।

गहरे कुएं : कांच की एक बोतल लेते है। उस पर दो छिद्र वाला रबड़ का ढक्कन लगा देते है (चित्र 12)। ढक्कन के एक छिद्र में कांच की एक लम्बी नली



चित्र 12. गहरे कुएं से 300' तक गहराई से पानी का नमूना लेने वाली बोतल। (1) रस्सी, (2) धातु का छल्ला, (3) तांत, (4) रबड़ की नली, (5) रबड़ के पट्टे, (6) रबड़ का ढक्कन, (7) सीसे ... (8 ... की कम लम्बाई वार ... लम्बी नली और (1 ... की बोतल।

गर्दन पर ठीक से बाध देते है। बोतल की गर्दन को छोड़कर पूरी बोतल पर सीसे (Lead) का आवरण चढा देते हैं। यह आवरण बोतल को भार प्रदान करता है तथा कुएं की दीवार से टकराकर टूटने से भी बचाता है। इस पूरे उपकरण को कुए में इच्छित गहराई तक डुबा देते हैं और रस्सी को एक तेज झटके द्वारा जोर से हिलाते हैं। इस प्रकार की क्रिया से रबड की नली कांच की नली पर से हट जाती है। बोतल मे कांच की एक नली से पानी अन्दर आता रहता है तथा दूसरी नली से वायु बाहर निकलती रहती है। ज्योंही पानी की सतह पर बुलबुले आने बन्द हो जायें, बोतल को कुए से बाहर निकालकर उसकी काच की नलियो पर रबड की नली फिर से लगा देते है।

जिन कुओं पर पम्प लगे हों, ऐसे कुएं के पानी का नमूना लेते समय पम्प चलाकर नल में ठहरा हुआ पानी कुछ देर तक निकलने देना चाहिये, ताकि पानी का सही नमूना लिया जा सके। पानी का नमूना लेने से पहले नल का मुंह अच्छी तरह से साफ कर लेना चाहिये।

नल :

पानी का नमूना लेते समय नल का मुंह अच्छी तरह से साफ होना आवश्यक है। रात या दिन भर नल में ठहरे हुए पानी का नल के धातु पर होने वाले प्रभाव के परीक्षण के लिये जब पानी का नमूना इकट्ठा करना हो, तब पानी को नल खोलते ही इकट्ठा कर लेना चाहिये। जब पानी के नमूने को सूक्ष्मजीवी परीक्षण के लिये लिया जाता है तब सबसे पहले नल के मुह को ब्लो लेम्प से गर्म करना चाहिये, जिससे उस पर लगे जीवाणु मर जायें। पानी का नमूना लेते समय ब्लो लेम्प को नल के मुंह के पास रखा जाना चाहिये जिससे कि वायु के जीवाणु बोतल में न आने पावे। सूक्ष्मजीवी परीक्षण के लिये नल से कुछ समय तक पानी निकालने के बाद 200 एम. एल. पानी नमूने के रूप में एकत्रित करना चाहिये। पानी का नमूना लेने के बाद बोतल को शीघ्र ही प्रयोगशाला मे ठंडी ([illegible] से 8° सी.) अवस्था मे पहुंचा देना चाहिये ताकि उसका परीक्षण छह घंटे के भीतर हो जाये। किसी भी अवस्था में पानी की बोतल को बारह घंटे के भीतर प्रयोगशाला में पहुंचा देनी चाहिये जिससे पानी का विश्लेषण सही परिणाम दे सके।

प्रयोगशाला में परीक्षण होने तक पानी के नमूनों को सुरक्षित रखने के तरीके और उनके अधिकतम भण्डारण की अवधि :–

विश्लेषण	सुरक्षित	अधिकतम भण्डारण का समय
1	2	3
स्वाद	तुरन्त विश्लेषण	—
आविलता (टरबिडिटी)	उसी दिन विश्लेषण करें या अंधेरे मे रखें।	दो दिन

	2	3
चालकता	तुरन्त विश्लेषण	—
नाइट्रेट	तुरन्त विश्लेषण या पी. एच. 2 तक H_2SO_4 मिलावें व ठण्डा रखें	दो दिन
क्षारता	प्रशीतन	चौदह दिन
फ्लोओराइड	—	अट्ठाईस दिन
आयरन	तुरन्त विश्लेषण या एक एम. एल. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल प्रति 100 एम एल. नमूना	चौदह दिन
क्लोरीन	तुरन्त विश्लेषण	—
जीवाणु	छह से आठ डिग्री तापक्रम पर ठण्डा रखना	छह से बारह घंटे

पानी के नमूने की बोतल पर नीचे लिखे अनुसार सूचक-पत्र तैयार करके लगाना चाहिए।

(1) नमूना किस परीक्षण के लिये सौंपा गया— भौतिक/रासायनिक/सूक्ष्मजीवी/सूक्ष्मदर्शी।

(2) नमूना किस के द्वारा सौंपा गया— इकट्ठा करने वाले का नाम व पता

(3) नमूने लेने का स्रोत : वर्षा/धरातल/कुआं/नल का पानी

(4) नमूना लेने की जगह— पता

(5) नमूना किसके सामने लिया गया- व्यक्ति का नाम, पता व हस्ताक्षर

(6) नमूना लेने वाले अधिकारी के हस्ताक्षर– ....

प्रयोगशाला में नमूना भेजने की विधि :

पानी के नमूने की बोतल को सावधानीपूर्वक बन्द करके जल्दी से जल्दी प्रयोगशाला में भेज देना चाहिये। जब पानी के नमूने को सूक्ष्मजीवी परीक्षण के लिये भेजा जाता है तो उसे छह से आठ डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर रखा जाता है जिससे कि जीवाणुओं की संख्या में परिवहन के समय वृद्धि या कमी न हो। इसके लिये बोतल को बर्फ के साथ थर्मस फ्लास्क में रखा जाता है। उन पानी के नमूनों के लिए, जिनमें शेष बची क्लोरीन का या गन्दे नाले के पानी में शेष बची क्लोरीन का परीक्षण करना हो तो, विशेष सावधानी रखनी चाहिये। इसके लिए सोडियम थायोसल्फेट से साफ की गयी बोतल में नमूना इकट्ठा करना चाहिये।

पानी के नमूनों का भौतिक परीक्षण

परिचय :

भौतिक परीक्षण के द्वारा पानी के गुणों का तुरन्त उसी जगह पर पता कर सकते हैं। सबसे पहले पानी के गंध की पहचान करनी जरूरी होती है। इस परीक्षण से पानी के रासायनिक व जैविक गुणो का प्राथमिक आभास हो जाता है, परन्तु इससे किसी अन्तिम निष्कर्ष पर नही पहुंचना चाहिए। इसके लिये दूसरे प्रयोग भी करने चाहिए। रंगीन पानी कार्बनिक पदार्थ तथा जीवाणुओ का होना दरसाता है। अतः ऐसी परिस्थितियों में पानी का जैविकी परीक्षण करना चाहियें। अकार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति के कारण पानी गंदा दिखाई देता है और ऐसे पानी का रासायनिक परीक्षण करना जरूरी होता है। दुर्गन्धयुक्त पानी को मनुष्य व जानवर दोनो ही पसन्द नही करते। गंदले पानी को मनुष्य कभी स्वीकार नही करता परन्तु ऐसे पानी को जानवर पी लेते हैं। भौतिक परीक्षण के लिये पानी के उपलब्ध नमूने में निम्न गुणों की जाच करनी चाहिये—

(1) रग (2) गंध (3) स्वाद (4) कार्बनिक पदार्थ (5) तापक्रम (6) मान (पी. एच.) (7) गंदलापन।

(1) रंग (Colour) :

प्रदूषण के कारण जल रंगीन हो सकता है। पानी के रंग के परीक्षण के लिये नपना जार (Nessler cylinder) को उपयोग में लाते हैं। यह प्रयोग फैली हुई (Diffused) सूर्य की रोशनी में अथवा सफेद कृत्रिम रोशनी मे करना चाहिये। रग का एक फुट की गहराई से पता लगाना चाहिये और पानी के नमूने की शुद्ध आसुत जल से तुलना करनी चाहिये। पानी में गंदगी को एक समान फैलाने के लिये कम से कम उसे पच्चीस बार हिलाना चाहिये। सौ सी. सी. पानी को लेकर आसुत पानी से उसका तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। पानी का परीक्षण करते समय उसको ऊपर से लम्बवत् देखना चाहिये।

आसुत पानी का रंग एक फुट की गहराई पर पीले-नीले से गुलाबी रंग का दिखाई देता है। पानी का हरा रंग उसमें एक कोशीय शैवाल (Algae) का होना दरसाता है। हरा-पीला रंग पानी मे प्राकृतिक वनस्पति के कारण होता है, जबकि पानी में

पीला रंग कार्बनिक पदार्थों अथवा लोहे की उपस्थिति के कारण दिखाई देता है। आवश्यकता हो तो पानी को छानकर या सेन्ट्रीफ्यूज (Centrifuge) करके उसके रंग का निर्धारण करना चाहिए।

लोविबोन्ड नेस्लराईजर की सहायता से पानी के रंग की प्रकृति का व उसके गहरेपन का परीक्षण कर सकते हैं। हैजेन रंग स्टेण्डर्ड से लोविबोन्ड नेस्लराईजर से तुलना की जाती है। इसमें नौ रंग के स्टेण्डर्ड होते हैं जिसका मूल्य पांच से सत्तर अंक तक पढ़ने के लिये तालिका होती है। इसके अलावा पांच हैजेन इकाइयाँ से ज्यादा वाला पानी खाद्य प्रक्रिया, उद्योगों, कपड़े, डेयरी और कागज व लाण्ड्रियों के लिये अनुपयोगी हैं।

(2) गंध (Odour) :

पानी में गंध उसके स्वाद से सम्बन्ध रखती है। अगर पानी के नमूने का स्वाद मरी हुई मछली जैसा हो तो गंध भी वैसी ही होती है। पानी में गंध को पहचानने के लिये सौ सी.सी. नमूने का पानी एक कांच के कोनीकल फ्लास्क (Conical Flask) में लेकर ढक्कन लगाते हैं, फिर उस पानी के नमूने को पांच मिनट तक हिलाकर तथा उस पर से ढक्कन हटाकर जल्दी से उसे सूंघते हैं जिससे कि सही परिणाम निकल सके। जब पानी में गंध हल्की हो तब नमूने के पानी को 40° सी तापक्रम तक गर्म किया जाता है, तथा फ्लास्क पर से ढक्कन हटाकर उसे सूंघा जाता है और आसुत जल के साथ उसकी तुलना की जाती है। चाक, सिलिका (Silica) एवं पीट (Peat) मिले पानी की गंध मिट्टी जैसी होती है। पानी में खरपतवार, जैसे चारा, घास व पेड़ों की पत्तियां, जब पानी में सड़ती हैं तब पानी में सड़ी हुई मछली जैसी गंध पैदा हो जाती है। यह गंध सल्फर युक्त हाइड्रोजन जैसी होती है। सड़ा हुआ मल-मूत्र भी सड़ी हुई मछली जैसी ही गंध देता है और जब यह गंदगी किसी गहरे कुएं के पानी में मिल जाती है तब कुएं का पानी सल्फर युक्त हाइड्रोजन जैसी गंध देता है। पानी में जब सड़ी-गली घास व पत्तियों पर फफूंदी उग आती है तो अंगूर की कच्ची शराब जैसी गंध आती है, जबकि क्लोरीन युक्त पानी, जिसमें कुछ अंश फिनोल (Phenol) के भी मिले हुए हों, तो क्लोरोफिनोल की बहुत तेज गंध आती है।

(3) स्वाद (Taste) :

सबसे पहले यह ज्ञात कर लेना चाहिये कि लिया गया पानी का नमूना हानिकारक है या नहीं, क्योंकि इसमें रोग के कीटाणु भी हो सकते हैं और उससे स्वाद का परीक्षण करने वाले व्यक्ति को बीमारी भी हो सकती है। अगर पानी का नमूना हानिरहित हो तो सीधे बोतल से ही उसको चख सकते है। पानी के स्वाद को परीक्षण के द्वारा दो अवस्थाओं में पहचाना जाता है – पहली बार जब उसे

मुंह में लिया जाता है तथा दूसरी बार जब मुंह के द्वारा बाहर निकाला जाता है। समुद्र व गहरे कुओं का पानी नमकीन होता है, लोहा व मैग्नीशिया पानी को कड़वा बनाते हैं। स्याही जैसा कड़वा स्वाद आयनिक (Ionic) पानी का, और वेस्वाद या फीका स्वाद मृदु पानी का होता है। अच्छा व बहुत रुचिकर (Highly palatable) स्वाद वाला पानी पूर्ण रूप से पीने के योग्य होता है जो शरीर को आवश्यक खनिज उपलब्ध करवाने के साथ-साथ संतुष्टि भी प्रदान करता है, जबकि बगैर स्वाद (Unpalatable) वाला पानी खनिजों की अनुपस्थिति के कारण पीने के लिये अस्वीकार्य होता है। पीटयुक्त या प्रदूषित पानी निश्चित रूप से पीने के लिये अनुपयोगी माना गया है।

(4) कार्बनिक पदार्थ (**Organic matter**) :

कार्बनिक पदार्थों का पानी में पाया जाना यह चेतावनी देता है कि पानी गंदे पानी से, मृत पशुओ से या फिर वनस्पति की उपस्थिति के कारण दूषित हो गया है। इससे हानिकारक बीमारी पैदा करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं की संख्या मे वृद्धि होती है जो कि पानी को बहुत ही हानिकारक बना देते है। इसी के साथ जब वातावरण का तापक्रम शारीरिक तापक्रम के बराबर हो जाता है तो इन जीवाणुओं की संख्या और भी बढ़ जाती है। मृतजीवी किस्म के जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि 20 से 22° सी. तापक्रम पर होती है और इससे पानी में कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति का संकेत मिलता है। कार्बनिक पदार्थों का परीक्षण करने के लिये 100 सी.सी. क्षमता के कोनीकल फ्लास्क में 50 सी.सी. पानी का नमूना भरते हैं। इसी प्रकार एक दूसरे खाली फ्लास्क में इतनी ही मात्रा में आसुत पानी भी लेते है। दोनो पानी के फ्लास्कों को चार से पांच मिनट की अवधि तक हिलाते है। फिर उसमें उठने वाले बुलबुलो या झाग की आसुत पानी से तुलना करते हैं। पानी की सतह पर बुलबुलो का देर तक रहना उसमें कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति को दरसाता है। आसुत पानी की सतह पर छोटे-छोटे बुलबुले बनते हैं तथा वे कुछ ही क्षणों मे समाप्त हो जाते हैं।

(5) तापक्रम (**Temperature**) :

जब पानी का नमूना एकत्रित किया जाता है तब उसी समय थर्मामीटर से पानी का तापक्रम भी दर्ज करना चाहिये। इसको अलग-अलग गहराई पर लेना चाहिये। सही तापक्रम लेने के लिये नमूने की बोतल को अच्छे थर्मस फ्लास्क मे रखना चाहिये। ज्योंही पानी के नमूने को बाहर निकालते है, उसका तापक्रम ले लेना चाहिये। इससे उसकी गहराई व स्रोतों के प्रकार का पता चलता है। गहरे पानी के स्रोतों का तापक्रम छिछले पानी के स्रोतों से ज्यादा होता है। बडे जलाशयों मे गहराई के अनुसार पानी का तापक्रम भिन्न होता है। पानी मे गंदलापन, कार्बनिक पदार्थ एवं तापक्रम (22–37° सी.) का ज्यादा समय तक बना रहना घातक प्रदूषण की उपस्थिति का द्योतक होता है।

(6) मान (Reaction) :

लाल व नीले लिट्मस पेपर की सहायता से पानी के पी.एच. का पता लग जाता है। सही निर्धारण के लिये केलोरीमीटर विधि या पी.एच. मीटर काम में लिया जाता है। दो परखनलियों में पानी के नमूनें को लेकर एक में लाल व दूसरी में नीला लिट्मस पेपर डालते हैं, अगर लाल लिट्मस पेपर नीला हो जाय तो प्रतिक्रिया क्षारीय होती है और जब नीला लिट्मस पेपर लाल हो जाय तो अम्लीय प्रतिक्रिया दरसाता है। पानी का पी एच 7.0 से 8.5 तक होना चाहिये। पानी के पी एच. का पता लगाना बहुत जरूरी होता है क्योंकि ज्यादा अम्लीय या ज्यादा क्षारीय पानी नलों की धातु से क्रिया करके उनकी कुछ मात्रा अपने में घोल लेता है। यह पानी को अजीब तरह का स्वाद देता है और पानी को कठोर बना देता है। यह परीक्षण जन-स्वास्थ्य एवं पशुओं के स्वास्थ्य की सुरक्षा तथा कृषि कार्यों के लिए भी आवश्यक है।

(7) गंदलापन (Turbidity) :

एक 250 सी.सी. क्षमता के गोल पैंदे वाले काच के फ्लास्क में 100 सी.सी. नमूने का पानी लेना चाहिये। एक सफेद कागज फ्लास्क के पीछे रखकर सामने से देखते हुए उसका निरीक्षण करना चाहिये। तुलना के लिये उतना ही आसुत पानी लेकर उपरोक्त विधि द्वारा पानी का निरीक्षण करना चाहियें। छोटे से छोटे कणों का भी सावधानीपूर्वक निरीक्षण करना चाहिये।

पानी में गंदलापन, खनिज अथवा कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति के कारण हो सकता है। यह प्रदूषण का सूचक होता है। इस तरह का पानी पीने के काम में नहीं लेना चाहिये। नमूने के पानी को कुछ देर तक रखना चाहिये या उसे सेन्ट्रीफ्यूज करके पैंदे पर आई गदगी को सूक्ष्मदर्शी की सहायता से जांचना चाहिये। खनिज पदार्थों की उपस्थिति कोई विशेष महत्व नहीं रखती। ऐसे पानी को छानकर भी साफ किया जा सकता है जबकि कार्बनिक पदार्थों की उपस्थिति गम्भीर प्रकार के प्रदूषण की द्योतक होती है। ऐसे कार्बनिक पदार्थ पानी में वानस्पतिक तन्तु और मांस के तंतु के रूप में दिखाई देते है और उसमें पाये जाने वाले जीवाणु छानने की विधि से भी पानी से अलग नहीं किये जा सकते और ये प्रदूषण के सूचक होते है। पानी का नमूना हल्के रंग का, दूधिया रग का, गंदला अथवा बहुत ज्यादा गंदला भी हो सकता है। उपभोक्ता के लिए पानी मे किसी भी चीज की उपस्थिति को आंख द्वारा देखना ज्यादा महत्वपूर्ण है। जेकसन केण्डल टरबीडीटी मीटर (Jackson candle turbidity meter) द्वारा पानी में पाये जाने वाले गुदलेपन का पता लगाया जाता है।

पानी के नमूनों का रासायनिक परीक्षण

औद्योगिक कारखाने देश में धन की बढ़ोतरी तो करते है किंतु ये वातावरण को प्रदूषित भी करते हैं, जिसके कारण पानी का संदूषण बढ़ता ही जा रहा है जो मनुष्यों, पशुओं और पौधों के लिये अत्यन्त ही घातक है। छिछले कुओं का और नालों का पानी ज्यादातर इनसे संदूषित होता है जबकि गहरे कुओ के पानी मे धरातल के पानी की अपेक्षा रासायनिक तत्वो की मात्रा ज्यादा होने का अंदेशा बना ही रहता है। जिस पानी मे रासायनिक तत्व मैक्सिमम परमिशियल लिमिट (M.P.L.) तक हो, वह पानी गर्मी के मौसम में पीने के लिये हानिकारक हो सकता है जैसे कि जब वातावरण का तापमान बढ़ जाता है और पानी का वाष्पीकरण होता है और सूखे घास में पानी की मात्रा कम होना जिससे गर्मियों मे सामान्य से अधिक पानी पीना। दूध देने वाले कम उम्र के और कमजोर पशुओं को भी पानी में पाये जाने वाले रसायन हानि पहुंचाते हैं। मरुक्षेत्र मे क्षारीय कुओं का पानी जब जानवर पीते हैं तो उनकी सामान्य शारीरिक क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है और यहां तक कि जानवर मर भी सकते है। जानवर ऐसी अवस्था में पानी पीना कम कर देते हैं और फलस्वरूप वे चारा भी कम खाते हैं। पानी मे मैग्नीजइअम् की मात्रा ज्यादा होने पर उनमें अक्सर दस्त की शिकायत रहती है। जिस पानी में रसायनों की मात्रा मैक्सिमम परमिशिवल लिमिट के पास है वहां यदि कुछ बातों का ध्यान रखा जाये तो पशुओं को काफी हद तक नुकसान से बचाया जा सकता है, जैसे पानी की कुण्डी को समय-समय पर साफ करके पानी को बदलते रहना, इससे वाष्पीकरण के कारण पानी में हानिकारक रसायन की बढ़ी हुई मात्रा का असर नही होगा और वर्षा का या दूसरी जगह से अच्छा पानी लाकर वहां के उपलब्ध पानी मे मिलाकर पिलाना।

पानी के नमूने का रासायनिक परीक्षण एक प्रारम्भिक परीक्षण है और इसके द्वारा पानी मे पाये जाने वाले गुणो को परखने में सहायता मिलती है। इस परीक्षण द्वारा यह पता लग जाता है कि आगे इस पानी के नमूने का कौनसा परीक्षण विस्तार से किया जाना चाहिये। अगर पानी में विषैले पदार्थ उपस्थित हो तो ऐसे पानी का उपयोग नही करना चाहिये। विशेषतया यह परीक्षण कार्बनिक प्रदूषण के बारे मे सूचना देता है। यह परीक्षण पानी में पाये जाने वाले धात्विक व अधात्विक

दोनों प्रकार की अशुद्धियों की उपस्थिति जानने के लिये किया जा सकता है। मनुष्यों और जानवरों के पीने के पानी में इनकी एम.पी.एल. का विवरण सूची संख्या 1 से 4 तक में दिया गया है। कुछ अधात्विक अशुद्धियां निम्नलिखित प्रकार की हैं–

अधात्विक अशुद्धियां (गुण सम्बन्धी)

अमोनिया (Ammonia) :

एक परखनली में 10 एम.एल. नमूने के पानी को लेकर उसमें कुछ बूंदें नेस्लरस रिएजेन्ट की डालते हैं। गहरा पीला या भूरा या काला रंग अथवा अवक्षेप का दिखाई देना अमोनिया की उपस्थिति बताता है।

अनुमान : अमोनिया पानी में स्वतंत्र रूप से अथवा अमोनिया के लवण के रूप में पाया जाता है। यह नाइट्रोजनयुक्त कार्बनिक पदार्थों के प्रथम आक्सीकरण से बनती है। अमोनिया की सूक्ष्म मात्रा की उपस्थिति भी पानी को संदेहास्पद बना देती है और यह इस बात का संकेत देती है कि पानी का हाल ही में गंदे पानी अथवा पशुओं या मनुष्यों के मल-मूत्र द्वारा संदूषण हुआ है। पानी में अमोनिया का न पाया जाना शुद्ध पानी का द्योतक नही है। नाइट्रेटयुक्त पानी जब लोहे के नलों से गुजरता है तो नाइट्रेट, अमोनिया में अवकृत हो जाते हैं।

मुक्त अमोनिया की मात्रा का ज्यादा पाया जाना और एल्ब्यूमिनाइड अमोनिया की कम मात्रा का पाया जाना यह दरसाता है कि पानी में गदगी अथवा, पशु पदार्थों का विघटन हो रहा है तथा नत्रजन की उपस्थिति वानस्पतिक पदार्थों का होना दरसाता है।

मुक्त अमोनिया का एम.पी.एल 0.05 पी.पी.एम. तथा एल्ब्यूमिनाइड अमोनिया का 0.1 पी.पी.एम. है।

क्लोराइड (Chloride) :

एक परखनली में 10 एम.एल. नमूने के पानी को लेकर उसमे कुछ बूंदें हल्के सिल्वर नाइट्रेट घोल की डालने पर अगर सिल्वर क्लोराइड्स का सफेद अवक्षेप आता है तो इससे क्लोराइड की उपस्थिति का पता चलता है।

अनुमान : सभी तरह के पानी में मुख्यत. क्लोराइड की उपस्थिति सोडियम क्लोराइड के रूप में होती है। इसके साथ-साथ मैग्नीशियम, पोटेशियम व कैलशियम के क्लोराइड्स भी मिलते है। स्वास्थ्य के लिहाज से क्लोराइड की कम मात्रा का होना विशेष महत्व नही रखता, लेकिन जब इसकी मात्रा बहुत ज्यादा हो तो पानी पीने योग्य नहीं रहता है। जिस पानी में क्लोराइड के साथ कार्बनिक पदार्थ भी अगर ज्यादा मात्रा में हो तो इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि पानी हाल ही में मल या मूत्र द्वारा दूषित हुआ है। गंदे व दूषित पानी में नाइट्रेट व क्लोराइड की मात्रा साथ-साथ बढ़ती है।

सल्फेट (Sulphate) :

एक परखनली में 10 एम.एल. नमूने के पानी को लेकर उसमे कुछ बूंदें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की डालते हैं। इसमें दस प्रतिशत बेरियम क्लोराइड की कुछ बूंदें भी डालते हैं। अगर सफेद अवक्षेप प्राप्त होता है जो कि हल्के अम्ल में अघुलनशील हो तो यह सल्फेट की उपस्थिति दरसाता है और जब सल्फेट कम मात्रा मे हो तो उसे गर्म करने पर सफेद अवक्षेप आता है।

अनुमान : अगर सल्फेटयुक्त पानी नित्य पीने के काम मे लिया जाता है तो उससे मनुष्यों मे दस्त व जानवरों में स्काउर (Scour) की बीमारी पैदा हो जाती है। मैग्नीशियम सल्फेट की उपस्थिति के कारण पानी कठोर हो जाता है और ऐसा पानी पीने योग्य ही नही अपितु औद्योगिक कारखानों के लिये भी ठीक नही रहता है।

नाइट्राइट्स (Nitrites) :

एक परखनली में 10 एम.एल. नमूने के पानी को लेकर उसमें कुछ बूंदें सल्फानेलिक अम्ल (Sulphanalic acid) की डालकर उसे अच्छी तरह हिलाते है तथा फिर उसमें कुछ बूंदें अल्फानेफ्थेल्मीन घोल (Alphanaphthalamine solution) की डालकर परखनली को हिलाकर कुछ देर के लिये रख देते हैं। अगर उसमें गुलाबी रंग आ जाये तो वह नाइट्राइट्स की उपस्थिति बताता है।

अनुमान : मिट्टी व पानी में नाइट्रेट्स अवकृत होकर नाइट्राइट्स बनाते है। यह क्रिया लोहा, शीशा और जस्ता जैसी धातुओं के अवकरण से होती है। यह जानवरों के कार्बनिक पदार्थों एवं सड़े हुए मल-मूत्र जैसी गन्दगी से पानी का दूषित होना दरसाता है। ऐसा पानी रोगयुक्त होता है इसलिए पीने के लिए बहुत हानिकारक होता है।

नाइट्रेट्स (Nitrates) (जब नाइट्राइट्स अनुपस्थित हो) :

नाइट्रेट्स के परीक्षण के लिये नाइट्राइट का परीक्षण ऊपर लिखी विधि को दोहराकर करते हैं तथा उसमें एक चुटकी भर जस्ते का पाउडर डालकर उसे पांच मिनट बाद देखते हैं। अगर परखनली में गुलाबी रंग आ जाये तो वह नाइट्रेट्स की उपस्थिति बताता है।

अनुमान : पानी मे पाये जाने वाले नाइट्रेट्स प्रायः पशुओं के कार्बनिक पदार्थों से प्राप्त होते हैं, जैसे नालियों मे बहने वाली गंदगी, पशुओं का मल तथा गडे हुए शव आदि। पानी में अधिक मात्रा में नाइट्रेट्स व क्लोराइड्स का होना मल-मूत्र की गंदगी द्वारा पानी का संदूषण होना बताते हैं। वाहित मल द्वारा पानी का संदूषण होने पर नाइट्रेट, नाइट्राइट व अमोनिया के साथ उपस्थित होते हैं तथा वह यह भी दरसाता है कि पानी में सफाई की क्रिया भी साथ-साथ चल रही है। ऐसे पानी का जिसमे नाइट्रेट की मात्रा अधिक हो, जीवाणविक परीक्षण करना चाहिये।

फ्लोरीन (Fluorine) :

एक परखनली में 10 एम.एल. नमूने के पानी को लेकर उसमें कुछ बूंदें फेरिक क्लोराइड के घोल की डालते हैं। स्वच्छ, सफेद अवक्षेप का दिखाई देना फ्लोरीन की उपस्थिति बताता है। इस क्रिया को धूप की रोशनी में देखना ज्यादा ठीक रहता है।

अनुमान : फ्लोरीन की अशुद्धि, हाइड्रोजन फ्लोराइड या सिलिकॉन फ्लोराइड के रूप में पानी में प्रवेश करती है। अक्सर गहरे कुओं के पानी में इसकी मात्रा ज्यादा पायी जाती है और इस तरह का पानी पीने से अक्सर मनुष्यों व जानवरों के शरीर में अनेक प्रकार के विकार पैदा हो जाते हैं। सुपरफॉस्फेट, चमकीली ईंटे, कांच इत्यादि का सामान बनाने वाले कारखानो से बाहर निकलने वाले पानी में फ्लोरीन की मात्रा जरूरत से ज्यादा पाई जाती है।

पीने के पानी में फ्लोरीन की मात्रा कम होने से दन्त केरीज (Dental caries) की बीमारी उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में फ्लोरीडेसन विधि द्वारा पानी में जरूरत के अनुसार फ्लोरीन मिलाया जाता है। फ्लोरीन एक उच्च क्षमता वाला विषाक्त तत्व है और अधिक फ्लोरीन की मात्रा वाले पानी को लगातार पीने से कार्बुरित दांत (Mottled teeth), कब्ज और अनेक तरह के चर्म रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इससे चलने-फिरने में कठिनाई, कमजोरी तथा दूध की मात्रा में कमी और खासकर हड्डियो (लम्बी व जबड़ों की) में बाह्य विकृत वृद्धि आदि प्रमुख लक्षण दिखाई देते हैं।

साइनाइड; प्रूसीन ब्लू रिएक्शन (Cyanide; Prussian blue reaction) :

एक परखनली में 10 एम एल. नमूने के पानी को लेकर उसमे कुछ मात्रा फेरस सल्फेट घोल की डाले। मिश्रण को कुछ समय तक गर्म करके उसमे थोड़ा सा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल तब तक डालें जब तक कि स्वच्छ घोल प्राप्त न हो जाय। अगर नीला रंग प्राप्त होता है तो उससे साइनाइड की उपस्थिति का पता लगता है।

अनुमान : फोटोग्राफी का सामान तथा हवाई जहाज बनाने वाली फैक्ट्रियों से निकली गंदगी मे साइनाइड पाया जाता है। पीने के पानी मे साइनाइड की मात्रा अंशों में भी नही होनी चाहिये। इसकी विषाक्तता के कारण पशुओं मे हल्के दस्त आना, आखो से आंसू बहना, मांसपेशियों का ऐंठना, सुस्त होना, चलते समय लड़खड़ाना, सास लेने में कष्ट होना, मुह खोलकर सांस लेना और मुंह से झाग गिरना आदि लक्षण प्रायः देखने को मिलते हैं।

ठोस पदार्थ (Total Solids) :

पानी में घुले हुए ठोस पदार्थों की मात्रा का पता लगाने के लिये 250 एम.एल. पानी लें, अगर पानी बहुत कठोर हो तो 50 एम एल. पानी की मात्रा ही काफी होती है। पानी का नमूना कम होने से उसके वाष्पीकरण में कम समय लगता है तथा उसमें बचा हुआ पदार्थ शीघ्र ही सूख जाता है। अगर पानी मे कुछ तैरते और न घुलने वाले ठोस पदार्थ हों तो उस पानी को छान लेते हैं। जांच के लिये छना हुआ पानी काम में लेते हैं ताकि पानी में घुलनशील ठोस पदार्थों का अलग से पता लगाया जा सके।

एक खाली क्रूसिबल (Crusebal) को तोल (a) कर उसमे 50 एम.एल. नमूने का पानी लेते हैं। क्रूसिबल को वाटर बाथ के मुंह पर रख देते हैं और 50 एम.एल. नमूने का पानी पूरा उड़ने देते है। पानी उड़ने के बाद क्रूसिबल को गर्म हवा के ओवन में 180° सी. पर एक घंटे के लिये रहने देते हैं। उसमे से जब पानी पूर्ण रूप से उड़ जाये तब उसे बाहर निकाल कर ठंडा करते हैं। क्रूसिबल का भार दुबारा (b) ज्ञात करते हैं। जब 50 एम.एल नमूने के पानी का वाष्पीकरण किया जाता है तो ठोस पदार्थों का भार निम्न तरीके से निकाला जाता है–

$$\text{पानी में घुले ठोस पदार्थों का भार (पी.पी.एम.)} = \frac{(a-b) \times 1{,}000}{50}$$

अनुमान : ठोस पदार्थों की मात्रा पानी के स्रोत पर निर्भर करती है। जैसे वर्षा के पानी मे धरातल के पानी तथा गहरे कुओ के पानी के अनुपात मे बहुत कम मात्रा मे ठोस पदार्थ होते है। छिछले कुओं के पानी में ठोस पदार्थ बहुत ज्यादा मात्रा मे पाये जाते हैं। जिस पानी में मृदुपन ज्यादा हो वह स्वास्थ्य के लिए ज्यादा अच्छा नही होता है। इस तरह का पानी घरेलू व कारखानो के उपयोग के लिये बेहतर होता है। अत्यन्त कठोर पानी, पीने के लिये, घरेलू काम के लिये व कारखानो के लिये ठीक नही रहता। बहुत कठोर पानी पीने से वृक्क-पथरी (Renal calculi), गलगण्ड (Goitre), दुष्पचन तथा पेट मे विकार पैदा होते देखे गये हैं।

पानी की कठोरता (Hardness) :

एक 50 एम एल के बीकर में 10 एम एल. नमूने का पानी लेकर उसमे दो बूंदें अमोनिया बफर (Ammonia buffer) व दो बूंदें यूरोक्रोम ब्लैक 'टी' (Eriochrome Black 'T') मिलाते हैं। अब पानी के नमूने को ई डी.टी.ए. (E D T.A.) घोल के साथ टाइट्रेट (Titrate) करवाते है। जब उसका रंग हल्का स्याही जैसा नीला हो जाये तब ई डी.टी.ए. की बूंदें नमूने के पानी मे डालनी बन्द कर देते हैं।

पानी की कठोरता (पी.पी.एम.) = कुल काम में आई ई.डी टी.ए. की मात्रा × 100

अनुमान : कठोर पानी वह पानी होता है, जिसे साबुन के साथ काम में लिया जाय तो आसानी से झाग नही बनते । बाइकार्बोनेट लवण प्राकृतिक पानी में मुख्यत: सामान्य रूप मे पाये जाते हैं तथा उनकी उत्पत्ति पानी में घुलने वाली कार्बन डाइआक्साइड की कैल्शियम और मैग्नीशियम कार्बोनेटों पर रासायनिक क्रिया के कारण होती है । सल्फेट्स व कैल्शियम और मैग्नीशियम क्लोराइड के लवण भी पानी को कठोर बनाते हैं । पानी में कठोरता होने से और उसे पीने पर कई तरह की बीमारियां जैसे गलगण्ड, वृक्क पथरी व पेट की बीमारियां इत्यादि पैदा हो जाती हैं जब पानी को गर्म किया जाता है तब उसमें से कार्बन डाइआक्साइड निकल जाती हैं है और कैल्शियम व मैग्नीशियम के कार्बोनेट्स अवक्षेपित होकर उसके बर्तनों व बायलरों की दीवारो पर परत (Fur) के रूप में जम जाते हैं । बायलर स्केल, सल्फेट के जमाव के कारण होता है तथा जब पानी को निश्चित दाब पर गर्म करते हैं तो ये पानी के घोल के बाहर फेंक दिये जाते हैं । कठोर पानी भेड़ पर रहने वाले बाह्य परजीवियों के नियन्त्रण के लिये रासायनिक स्नान मिश्रण (Sheep-dips) बनाने के काम मे भी नही आता है ।

क्लोराइड्स की मात्रा का पता लगाना (Quantitative estimation for chlorides) :

एक बीकर में 10 एम एल. पानी का नमूना लेकर उसमे पोटेशियम क्रोमेट (Potassium chromate) की दो बूदें डालते है । इसे सिल्वर नाइट्रेट के घोल के साथ लाल रंग आने तक टाइट्रेट करवाते हैं ।

पानी मे क्लोराइड्स की मात्रा (पी.पी एम) = कुल काम मे आई सिल्वर नाइट्रेट की मात्रा × 100

अनुमान : पानी में क्लोराइड साधारणतया सोडियम क्लोराइड के रूप मे पाया जाता है । शुद्ध पानी मे लवण की मात्रा सीमित रहती है तथा गदे पानी मे भी उसकी मात्रा कम रहती है, जबकि मूत्र मे यह अधिक मात्रा में पाया जाता है । धरातल के पानी मे क्लोराइड 2 पी.पी एम. से अधिक नही पाया जाता, जबकि गहरे कुओं के पानी मे क्लोराइड्स की मात्रा अधिक होती है । पानी में क्लोराइड के साथ सोडियम आयन जब बढ़ जाते हैं तो यह सोडियम क्लोराइडयुक्त पानी सूअरों के लिये हानिकारक पाया गया है । सूअरो में आसपास की वस्तुओ का ज्ञान न होना, अंधापन, उदासी, अपच, खुजली, बेहोशी व चौबीस घंटे मे सूअर की मृत्यु तक के लक्षण देखे गये है । कभी-कभी इसमें पशु खाना-पीना छोड़ देते हैं, मुंह से लार गिरती है, वे पूर्ण रूप से थके-से लगते हैं और उनकी मृत्यु तक हो जाती है । इस अवस्था मे पशु को नमकयुक्त पानी नही पीने देना चाहिये । ऐसे पशुओं के रक्त में कैल्शियम की मात्रा में कमी हो जाती है अत: उनको कैल्शियम देना ठीक रहता है ।

नाइट्राइट की मात्रा का परीक्षण (Quantitative estimation for nitrites) :

नाइट्राइट के लिए स्टेण्डर्ड ग्राफ बनाना :—

100 एम. एल. के दस नपना जार लें। प्रत्येक जार में स्टाक नाइट्राइट घोल की 0 0, 0.1, 0.2, 0.5, 1.0, 1.5, 2.0, 2.5, 3.5 और 4.0 एम. एल. मात्रा लें। हरेक जार में आसुत पानी मिलाकर उसकी मात्रा 50 एम. एल. कर लें। प्रत्येक जार में पहले एक एम. एल. भाग ई. डी. टी. ए. घोल व बाद में सल्फानिलिक अम्ल डालें। उसे हिलाकर दस मिनट के लिए रखें। प्रत्येक जार में एक एम. एल. नेप्थलमीन हाइड्रोक्लोराइड और सोडियम एसिटेट बफर का घोल मिलाकर रखें। पहले से आखिर तक के जार में से घोल को निकाल कर एक-एक परखनली में डालें और उन पर 1 से 10 तक हिसाब से संख्या लिख दें। पहली परखनली रखकर कोलोरिमीटर को 100 प्रतिशत ट्रांसमिसन पर 520-550 mμ फिल्टर लगाकर सेट करते हैं। फिर कोलोरिमीटर में 0.1 से 4.0 एम. एल. स्टेण्डर्ड वाली परखनली रख कर रीडिंग उतार लेते हैं। फिर एक ग्राफ पेपर पर स्टेण्डर्ड नाइट्राइट का कर्व बना लेते हैं। इसके लिये ग्राफ पेपर पर एक तरफ ट्रांसमिसन की प्रतिशत और दूसरी तरफ नाइट्राइट स्टेण्डर्ड की रीडिंग के बिन्दु अंकित कर लेते हैं। इस प्रकार हर बिन्दु को मिलाकर एक स्टेण्डर्ड कर्व बना लेते हैं।

विधि :– एक जार में 50 एम. एल. पानी का नमूना लेते है और उसमें एक एम. एल. भाग ई डी टी. ए और सल्फानिलिक अम्ल का मिलाते हैं। इसको हिलाकर दस मिनट के लिए रख देते हैं। इसमें एक एम एल नेप्थलमीन हाइड्रो-क्लोराइड और सोडियम एसिटेट बफर का घोल मिलाकर रख देते है। इसमे गुलाबी रंग दिखने पर इसे एक परख नली में लेते हैं।

अब कोलोरिमीटर को 100 प्रतिशत ट्रांसमिसन पर ऊपर बनाये गये दस नमूने में से पहले नमूने की भरी हुई परखनली को रखकर सेट करते हैं (जो स्टेण्डर्ड कर्व के लिये बनाया गया था)। पानी के नमूने की परखनली, जिसमें गुलाबी रंग आया था, कोलोरिमीटर में रखते है और उसकी रीडिंग ले लेते हैं। इस रीडिंग को स्टेण्डर्ड ग्राफ मे रखकर नाइट्राइट (μg नाइट्राइट एन) का पता लगा लेते हैं और नीचे दिये तरीके के आधार पर नमूने के पानी में नाइट्राइट की मात्रा ज्ञात कर लेते हैं।

$$\text{mg/l नाइट्राइट एन} = \frac{\mu g \text{ नाइट्राइट एन}}{\text{नमूने के पानी की मात्रा}}$$

$$\text{mg/ नाइट्राइट } (NO_2) = \text{mg/l नाइट्राइट एन} \times 3.29$$

नाइट्रेट्स की मात्रा के लिये परीक्षण (फीनोल डाई सल्फोनिक अम्ल का तरीका) :

नाइट्रेट्स के लिए स्टेण्डर्ड ग्राफ बनाना : सौ एम. एल. के नौ नपना जार लें।

हर एक जार में स्टेण्डर्ड नाइट्रेट घोल को 0.00, 0.05, 0.10, 0.15, 0.
0 25, 0 30, 0.35 और 0.40 एम.एल.मात्रा लें। अब हरेक जार में 2 एम.
फिनोल डाइसल्फोनिक अम्ल व उसमें पीला रंग आने तक 6 से 7 एम.
पोटेशियम हाइड्रोआक्साईड घोल की मात्रा डालें। हर एक जार मे आसुत
मिलाकर उसकी मात्रा 50 एम. एल. कर लें। इस बनाये गये स्टेण्डर्ड घोल
अलग-अलग परखनलियो में लेकर उसमे पहले 1 से 9 नम्बर तक हिसाब से
दें। नाइट्रेट के लियें कोलोरिमीटर में 400 से 425 mμ का बैंगनी
(Violet) का फिल्टर लेते है और एक नम्बर की परखनली उसमें रखकर 1
प्रतिशत ट्रांसमिसन पर सेट कर लेते हैं। अब 2 से 9 नम्बर तक की परखन
को स्टेण्डर्ड कोलोरिमीटर मे एक के बाद एक रखकर रीडिंग ले लेते हैं। ग्राफ पे
पर एक तरफ ट्रासमिसन की प्रतिशत अंकित करते हैं और दूसरी तरफ ना
स्टेण्डर्ड की रीडिंग के बिन्दु अंकित कर लेते हैं। इस प्रकार ग्राफ पेपर पर लगाये
सभी बिन्दुओं को मिलाकर एक स्टेन्डर्ड कर्व बना लेते है। जब कभी नया स्टे
ग्राफ बनाना हो तो काम में आने वाले सभी रसायन घोल ताजे बनाकर ही काम
लेने चाहिये।

विवरण : पानी के नमूने में क्लोराइड की मात्रा का पता लगाते हैं और उ
लिये जितना सिल्वर नाइट्रेट काम में आया हो वह अलग से लिख लेना चाहि
अब 10 एम. एल. नमूने का पानी लेकर उसमें उतना सिल्वर सल्फेट का घोल डा
जितना कि सिल्वर नाइट्रेट काम में आया था। उसे पन्द्रह मिनट के लिये र
फिर उसे छान लें और छने हुए घोल को होट एयर ओवन में रखें ताकि उसमें से प
पूर्णतया उड जाये। इसमें 2 एम. एल. फीनोल डाइ सल्फाइड अम्ल और
असुत जल मिला दें। अब पोटेशियम हाइड्रोआक्साइड की मात्रा उतनी ही मिल
जितनी स्टेण्डर्ड कर्व ग्राफ बनाने के वक्त मिलाया गया था। उसमे आसुत
मिलाकर उसकी मात्रा 50 एम. एल कर लेवे और उसे अच्छी तरह हिलाकर
परखनली मे निकालें। स्टेन्डर्ड ग्राफ के लिये तैयार की गयी पहली परखन
कोलोरिमीटर मे रख कर उसे 100 प्रतिशत ट्रांसमिसन पर सेट करें। उपरो
तैयार किये गये नमूने के पानी को एक परखनली मे लेकर कोलोरिमीटर में रख
रीडिंग नोट करे। रीडिंग को ग्राफ के स्टेण्डर्ड कर्व के मार्फत देखकर नाइट्रेट
मात्रा का पता निम्न तरीके से लगाएँ–

$$\text{नाइट्रेट एन की मात्रा} = \frac{\text{नाइट्रेट की मात्रा} \times 1,000 \; (\text{स्टेण्डर्ड कर्व में नमूने की रीडिंग})}{\text{नमूने की ली गयी मात्रा}}$$

नाइट्रेट No_3 के रूप में, mg/लीटर NO_3 = नाइट्रेट एन
मात्रा × 4.4

फ्लोराइड की मात्रा के लिये परीक्षण (एलीजरीन फोटोमिटरिक तरीका) :

फ्लोरीन के लिये स्टेण्डर्ड कर्व ग्राफ बनाना : आठ नपना जार 150 एम. एल. क्षमता वाले लें। फ्लोराइड का स्टेण्डर्ड घोल बनाकर हर जार मे 0.00, 0.05, 0.10, 0.15, 0.20, 0.25, 0.30 और 0.35 एम. एल. घोल भरें और उनमे 100 एम. एल. निशान तक आसुत जल भर लें। अब हर जार में 5 एम. एल. एलिजरीन लाल और 5 एम. एल. जरकोनिल अम्ल डालें। इस मिश्रण को कमरे मे ही एक घंटे तक पड़ा रखें। आसुत पानी को एक परखनली मे लें और 520 से 550 $m\mu$ का ग्रीन फिल्टर लगाकर कोलोरिमीटर को 100 प्रतिशत ट्रांसमिसन पर सेट करें। अब परखनलियों मे 0.00 से 0.35 मिलीग्राम प्रति लीटर का फ्लोरीन स्टेण्डर्ड लें और उसे बारी-बारी कोलोरिमीटर मे रखकर ट्रांसमिसन की रीडिंग लिखते जायें। स्टेण्डर्ड कर्व ग्राफ बनाने के लिये ग्राफ पेपर पर एक तरफ ट्रासमिसन का प्रतिशत अंकित करें और दूसरी तरफ फ्लोरीन की स्टेण्डर्ड रेंज लिखें। अब ग्राफ पेपर पर अंकित हर बिन्दु को मिलाकर फ्लोरीन का स्टेण्डर्ड कर्व ग्राफ तैयार करें। जब भी एलिजरीन लाल या जरकोनिल अम्ल का घोल समाप्त हो जाये और उनमे से अगर एक भी दुबारा बनाना पड़े तो उसके लिये फ्लोरीन का स्टेन्डर्ड कर्व ग्राफ भी नया बनाना चाहिये।

विधि : जब पानी के नमूने मे फ्लोरीन की मात्रा ज्ञात करनी हो तो, नमूने के पानी की 100 एम. एल. मात्रा एक जार मे लें और उसमे 5 एम. एल. एलिजरीन लाल और पांच एम. एल. जरकोनिल अम्ल को डालकर उसे एक घटे तक कमरे में रखे रहने दें। उस जार में से 5 एम. एल. घोल एक परखनली मे लें। अब फोटो कोलोरिमीटर को आसुत पानी का उपयोग करते हुए 100 प्रतिशत ट्रांसमिसन पर सेट करें। नमूने के पानी से भरी हुई परखनली को फोटो कोलोरिमीटर मे रखें और रीडिंग नोट करें। इस रीडिंग द्वारा स्टेण्डर्ड ग्राफ की सहायता से फ्लोराइड (ए) की मात्रा का पता लगाएँ और निम्नांकित तरीके के द्वारा mg/ लीटर फ्लोरीन निकाल लें।

$$\text{mg/लीटर फ्लोरीन} = \frac{\text{ए} \times 1{,}000}{\text{नमूने के पानी की ली गयी मात्रा एम. एल. में}}$$

प्रदूषित व गट्टर के पानी में बी. ओ. डी. की मात्रा (Biochemical demand in polluted water and sewage) :

एरोबिक जीवाणु बायोकेमिकल क्रिया द्वारा सड़ने वाले कार्बनिक पदार्थों को स्थिरता बनाये रखते है और उनकी इस क्रिया के लिए एक लीटर पानी में घुली हुई जितनी मि.ग्रा. आक्सीजन की जरूरत पड़ती है उसे बी. ओ. डी. कहते हैं। बी. ओ. डी. का पता लगाने के लिये नमूने के पानी को 20° सी. तापक्रम पर पांच दिनों तक रखा जाता है और उसमें जितनी घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा कम हो

जाती है उसे अवित कर लेते हैं। बायोकेमिकल क्रिया में जीवाणु अपने भोजन के लिए कार्बनिक पदार्थों को विभाजित करके उनका आसानी से अच्छी तरह उपयोग कर सकते हैं। जीवाणुओं की इस क्रिया को आसान करने के लिये गट्टर के पानी का पी एच. 6 5 से 8 होना चाहिये। उसमें नाइट्रोजन व फासफोरस मिलाने से बी ओ डी. की क्रिया तीव्र हो जाती है। जब कारखानों के अवशेष बहुत ही ज्यादा तादाद मे नदी या दूसरे जल-स्रोत में मिल जाते हैं तो पानी मे घुली ऑक्सीजन की मात्रा इतनी कम हो जाती है कि मछलियां व पानी में रहने वाले अन्य जीव उसमें जी ही नही सकते। इस प्रदूषण के कारण पानी का रंग काला, भूरा, लाल इत्यादि हो सकता है और उसमें बदबू आती रहती है। इस तरह के पानी को पीने से मनुष्यो व जानवरो मे कई तरह की बीमारियां हो जाती हैं जिनमें शारीरिक दर्द, चर्म रोग, फुंसियां, कब्ज, अपच, पेचिश व आंतो के रोग व कैंसर प्रमुख हैं। इसके कारण फसलो पर भी बुरा असर पड़ता है, जैसे कि फसल की उपज घट जाना या जमीन बंजर हो जाना आदि। जब नदियो का गंदा पानी उसके दोनों किनारों पर बने कुओं मे रिसता है तो पानी के मुख्य स्रोत भी दूषित हो जाते हैं। वर्तमान में सतही पानी की तरह भूमिगत पानी के प्रदूषण की समस्या भी बढ रही है। पानी के स्रोतों के प्रदूषण के लिए कपड़ा रंगाई-छपाई, रेशा, चर्म व अन्य रसायन उद्योग आदि प्रमुख घटक हैं।

यन्त्र . काच की ढक्कन सहित 300 एम. एल. क्षमता की छः बी. ओ. डी. बोतलें, बी ओ. डी. इन्क्यूबेटर, सल्फ्यूरिक अम्ल, सोडियम थायोसल्फेट, एलकली आयोडीन एजाईड घोल, मैंगनीज सल्फेट घोल, गट्टर का पहले का रॉ (*Raw*) व बाद में साफ (*Treat*) किया हुआ पानी।

विधि . बी. ओ. डी. की 300 एम. एल. क्षमता वाली छः बोतलें लें। उनमे से दो बोतलें ब्लैंक (Blank) टाइट्रेसन के लिये ले। उन बोतलो मे ब्लैंक टाइट्रेसन के लिये डाइल्यूसन के लिये तैयार किया गया पानी (परिशिष्ट प्रथम) भरें। फिर दूसरी दो बोतलो मे गट्टर का पानी लें। अब 1.5 एम. एल. गट्टर के पानी (रॉ) का नमूना लें (0.5 प्रतिशत) और बाकी आसुत जल मिलाएं। फिर दो दूसरी बोतलो मे गट्टर का साफ किया हुआ पानी लें। उनमें 60 एम. एल. गट्टर का साफ (Treated) किया पानी (20 प्रतिशत) और बाकी आसुत जल मिलाएं। ब्लैंक के लिये बनायी गयी दोनों बोतले ले और उनमे से एक पर शून्य दिन और दूसरी पर पांचवां दिन लिखे। शून्य दिन वाली बोतल लें और उसमे 2 एम. एल. मैंगनीज सल्फेट और उतना ही एलकली आयोडीन घोल डाले और उन्हें अच्छी तरह मिला-कर उसमे 2 एम. एल. सल्फ्यूरिक अम्ल भी डालें। उसे $\frac{N}{80}$ सोडियम थायोसल्फेट (जो पोटेशियम डाइक्रोमेट घोल द्वारा स्टेण्डराइज किया हुआ हो) से टाइट्रेट करके उसकी रीडिंग लिख लें। उसे ब्लैंक की शून्य दिन की रीडिंग कहा जायेगा।

उसके साथ वाली बोतल को पांच दिनों के लिये बी. ओ. डी. इन्कूवेटर मे 20° सी. पर रखें जिससे उसमे से आक्सीजन कम हो जाए। पांच दिनों बाद उसे बी. ओ. डी. इन्कूवेटर से निकाल कर उसमें 2 एम. एल. मैगनीज सल्फेट और उतना ही एलकली आयोडीन और सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाएं। उसे $\frac{N}{80}$ सोडियम थायोसल्फेट से टाइट्रेट करके उसमें जितनी मात्रा लगे उसे अंकित कर ले। उसे ब्लैंक की पांचवें दिन की रीडिंग कहेगे।

गट्टर के पानी के लिये तैयार की गयी दो बोतलें लें और एक पर शून्य दिन तथा दूसरी पर पांचवा दिन लिखें। उन्हें भी ऊपर लिखे गये तरीके के अनुसार शून्य दिन और पाचवे दिन टाइट्रेट करें। इस प्रकार शून्य दिन और पांचवें दिन की गट्टर के पानी की रीडिंग ज्ञात कर लेते है।

अब बाकी बची हुई दो बोतलें जिनमे गट्टर का साफ किया हुआ (Treated) पानी है, लें और ऊपर लिखी हुई विधि द्वारा इस पानी को भी टाइट्रेट करे। इस प्रकार जो रीडिंग आयेगी उसे शून्य दिन की और पांचवें दिन की ट्रीट किये हुए पानी की रीडिंग कहेंगे।

ऊपर की रीडिंग को काम में लेकर निम्न तरीके से रॉ गट्टर के पानी का बी. ओ. डी. mg/ लीटर का पता कर लेते हैं। ट्रीट किये हुए गट्टर के पानी का बी. ओ. डी. 30 mg/ लीटर होना चाहिये।

$$\text{रॉ पानी का बी.ओ.डी mg/लीटर} = \frac{\begin{array}{c}\text{(रॉ पानी में आक्सीजन की कमी − ब्लैंक मे आक्सीजन की कमी)}\\ \text{(शून्य दिन−पांचवें दिन की रीडिंग) (शून्य दिन−पांचवे दिन की रीडिंग)}\end{array}}{\text{लिये गये गट्टर के रॉ पानी की प्रतिशत}} \times 100$$

$$\begin{array}{c}\text{ट्रीट किये गये गट्टर के पानी}\\ \text{मे बी.ओ.डी.mg/लीटर}\end{array} = \frac{\begin{array}{c}\text{(ट्रीट किये पानी में आक्सीजन की कमी − ब्लैंक मे आक्सीजन की कमी)}\\ \text{(शून्य दिन−पांचवें दिन की रीडिंग) (शून्य दिन−पांचवें दिन की रीडिंग)}\end{array}}{\begin{array}{c}\text{ट्रीट करके लिये गये गट्टर के पानी}\\ \text{का प्रतिशत}\end{array}} \times 100$$

केमीकल आक्सीजन डिमान्ड (सी.ओ.डी.) :

डाइक्रोमेट रीफ्लेक्स विधि : इस विधि द्वारा गट्टर के पानी में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा का ज्ञान होता है जिनका शीघ्र ही तीव्र रासायनिक आक्सीडेन्ट के प्रभाव से आक्सीडेसन हो जाता है। इस जांच द्वारा गंदे पानी में पायी जाने वाली कार्बनिक पदार्थों की मात्रा का पता लगता है जिनमें जैविक क्रिया नाशक तत्व भी होते हैं। इसलिये बहते रहने वाले और औद्योगिक कारखानों से निकलने वाले पानी का सी. ओ. डी. परीक्षण करना बहुत जरूरी होता है। सिल्वर सल्फेट केटलिस्ट

की उपस्थिति में स्टेट चेन अम्ल, आलाहाल और एमिनोएसिड पूरी तरह से आक्सीडाइज हो जाते है। डाइक्रोमेट रीफ्लेक्स विधि द्वारा सी. ओ. डी. का परीक्षण करते हैं।

यन्त्र : 300 और 500 एम. एल क्षमता के फ्लास्क, स्टेण्डर्ड पोटैशियम डाइक्रोमेट घोल, फेरोइन इण्डीकेटर, फेरस अमोनिया सल्फेट घोल, सल्फ्यूरिक ऐसिड एवं सिल्वर सल्फेट के दाने।

विधि .– एक 300 एम एल. क्षमता वाले फ्लास्क में 50 एम एल. नमूने का पानी (या 50 एम एल तनुकरण किया हुआ आलीक्वाट्) लें और उसमे 25 एम. एल. (0.25 एम एल प्रतिशत) पोटैशियम डाइक्रोमेट घोल, 75 एम. एल. सल्फ्यूरिक अम्ल और एक ग्राम सिल्वर सल्फेट डालकर अच्छी तरह हिलाकर फ्लास्क को कडेंसर से मिलाएँ और इस मिश्रण को दो घटों तक रिफ्लेक्स करें। फ्लास्क के मिश्रण को उछलने से रोकने के लिए उसमें कांच की छोटी-छोटी गोलिया जरूर रखें। कडेंसर को ठंडा करें और उसमें 25 एम.एल. आसुत जल डालकर हिलाए तथा उसे एक 500 एम.एल फ्लास्क में निकाल ले। रीफलक्स फ्लास्क को चार पाच बार आसुत पानी से और धोए और आसुत पानी से इस मिश्रण का 350 एम एल तक तनुकरण करें। उसमे छह बूदें फेरोइन इंडीकेटर की डालें और उसमे बचे हुए डाइक्रोमेट को स्टेन्डर्ड फेरस अमोनिया सल्फेट घोल द्वारा तब तक टाइट्रेट करें जब तक कि उसका रग नीले हरे से लाल नीला न हो जाये।

एक फ्लास्क मे 50 एम.एल. आसुत पानी और ट्रीट किया हुआ पानी मिलाकर लें और उपरोक्त सभी रसायन भी मिलाए। ऊपर लिखि विधि द्वारा इस नमूने को भी टाइट्रेट करें। ट्रीट किये हुए पानी मे सी ओ डी. 250 mg/लीटर होनी चाहिये। नीचे लिखे तरीके से सी.ओ.डी. का पता किया जाता हैं—

$$\text{सी.ओ डी. mg/लीटर} = \frac{(a-b)\times N\times 8,000}{V}$$

a = ब्लैंक को टाइट्रेट करने के लिये ली गयी अमोनिया सल्फेट की मात्रा

b = नमूने के पानी (रॉ या ट्रीट किया हुआ गट्टर का पानी) को टाईट्रेट करने के लिये ली गयी अमोनियम सल्फेट की मात्रा।

N = फेरस अमोनियम सल्फेट की नारमलिटी (तरीका परिशिष्ट I में दिया गया है।

V = पानी के नमूने की ली गयी मात्रा।

धात्विक अशुद्धियों के लिये पानी का रासायनिक गुण शोधन :

धात्विक अशुद्धियां :

पानी मे पाई जाने वाली धात्विक अशुद्धियों की विषाक्तता का [illegible]

व जानवरों द्वारा पीये गये पानी से उत्पन्न लक्षणों से मालूम पड़ जाता है। कुछ मुख्य धात्विक अशुद्धियां निम्न प्रकार की हैं :—

लोहा

एक परखनली में 10 एम एल. पानी का नमूना लेकर उसमें कुछ बूंदें पोटेशियम फेरो सायनाइड की डालें। पानी के नमूने में नीले रंग का दिखाई देना लोहे की उपस्थिति बताता है।

अनुमान : वितरण के लिए ले जाये जाने वाले भूमिगत पानी में लोहे की कुछ मात्रा पायी जा सकती है तथा यह ज्यादातर नगण्य मात्रा में ही होता है। अधिक मात्रा में होने पर यह पानी के स्वाद में कड़वापन पैदा करता है, पानी गंदा व मटमैला दिखाई देता है। लोहे की उपस्थिति के कारण पानी में लोहे वाले जीवाणुओं (Crenothrix) की संख्या में वृद्धि होती है। ये पानी में से लोहा हटाते हैं और उसे फेरिक हाइड्रोआक्साइड के रूप में एक लसलसे पदार्थ का आवरण बनाकर जमा कर लेते हैं तथा उसी में रहते हैं। दूसरी तरह के लोह जीवाणु गेलिओनेला (Gallionella) कहलाते हैं। ये पानी ले जाने वाले लोहे के नलों की भीतरी सतहों पर एक पतली परत बना देते हैं, जिससे फीते जैसे पदार्थ पानी में लटकते दिखाई देते हैं। कुछ समय बाद ये नलों की भीतरी सतह को भी छोटा कर देते हैं तथा वहां आक्सीकरण की क्रिया द्वारा जंग व जंगयुक्त कठोर गाठें बनाते हैं। अम्लीय व हल्का तथा मुक्त कार्बोलिक अम्लयुक्त व अधिक आक्सीजनयुक्त पानी भी लोहे में जंग उत्पन्न कर सकते हैं।

तांबा :

एक परखनली में पानी का 10 एम.एल. नमूना लेकर उसमें कुछ बूंदें पोटेशियम फेरो सायनाइड की डालें। पानी के नमूने में चाकलेट रंग का दिखाई देना तांबे की उपस्थिति बताता है।

अनुमान : प्राकृतिक पानी में तांबा अनुपस्थित रहता है, मगर जब पानी को किसी तांबे के बर्तन में ज्यादा समय तक रख दिया जाये तब उसमें तांबे के अंश आ जाते हैं और अगर पानी अम्लीय हो तो उसमें तांबा ज्यादा मात्रा में घुलता है। पानी में शैवाल, जीवाणुओं व अन्य परजीवियों की वृद्धि को रोकने के लिये आजकल जलदाय विभाग द्वारा तांबा (कापर सल्फेट) का सफलतापूर्वक प्रयोग किया जाता है क्योंकि ये सभी जीवाणु कभी-कभी भारी संख्या में पानी की टंकियों में तथा फिल्टर हाउस में पानी साफ करने वाली बिछावन की ऊपरी सतहों पर जमा हो जाते हैं। ऐसा सोचा जाता है कि शैवाल व जीवाणु पानी से सारा तांबा सोख लेते हैं। परन्तु इस धातु के लिये ऐसे पानी के नमूने का परीक्षण करना जरूरी है, क्योंकि ऐसे पानी में सूक्ष्म जीवाणुओं के मरने व बाद में उनके सड़ने-गलने से उनमें से कापर सल्फेट

निकलकर फिर से पानी में मिल जाता है। भेड़ में कापर सल्फेट-युक्त पानी पीने पर कै, दस्त, पेट में दर्द, बेहोशी, तेज नाड़ी और श्लेष्मा झिल्लियां रक्तिम दिखाई देती हैं। पशु चारा चरना बन्द कर देता है तथा उसे प्यास ज्यादा लगती है।

सीसा :

एक परखनली में 10 एम. एल. पानी के नमूने में कुछ बूंदें पोटेशियम आयोडाइड की डालने पर अगर तेज पीला अवक्षेप दिखा दे तो यह उस पानी में सीसे की उपस्थिति बताता है। अवक्षेप को उबालने पर वह दिखना बन्द हो जाता है तथा उसे ठंडा करने पर अवक्षेप फिर से सुनहरे पीले रंग के दाने के रूप में दिखाई देने लगता है।

अनुमान : सीसा एक सचयी (Cumulative) विष होता है। सीसे पर सक्षारक क्रिया करने वाले पानी को सीसा विलायक (Plumbosolvent) कहते हैं। अम्लीय प्रकृति का प्राकृतिक पानी जिसका पी. एच. 4.5 से 6.8 हो तो ऐसी अवस्था में उस पानी की संक्षारक प्रवृति ज्यादा रहती है। सीसे के नये नल पर कठोर व अच्छे दोनों प्रकार के पानी का प्रभाव होता है तथा बाद में कठोर पानी के प्रभाव द्वारा नल के भीतरी सतह पर अघुलनशील क्षारीय लेड कार्बोनेट का आवरण बन जाता है। इस प्रकार कुछ समय बाद नये सीसे के नल से सीसे का पानी में घुलना रुक जाता है। भीषण विषाक्तता के कारण शारीरिक अवसन्नता, लड़खड़ाना व उठने में असमर्थता, चक्कर आना व अंधापन आदि प्रमुख लक्षण हैं। दांत पीसना, जल्दी-जल्दी जुगाली करना, गर्दन में ऐंठन आना, जबड़ों से चपचपाहट की आवाज व आंखों की पुतलियों का फैलना आदि लक्षण भी दिखाई देते हैं।

आर्सेनिक :

एक परखनली में 10 एम. एल. पानी का नमूना लेकर उसमें कुछ मात्रा पिसे हुए जस्ते की डालकर उसमें कुछ बूंदें सल्फ्यूरिक अम्ल की डालें। अब एक छनना कागज लेकर उस परखनली को पूर्णतया ढक दें और उस पर कुछ टुकड़े सिल्वर नाइट्रेट के रखें। आर्सीन की उपस्थिति में आर्सीन गैस बनकर निकलती है जिससे सिल्वर नाइट्रेट के टुकड़ों का रंग पहले पीला व बाद में काला हो जाता है। छनना कागज को सिल्वर नाइट्रेट के घोल में डुबोकर परखनली के मुंह पर रख कर भी आर्सेनिक का पता लगा सकते हैं। इसकी भीतरी सतह पानी में आर्सेनिक की उपस्थिति के कारण काले रंग की हो जाती है।

अनुमान – आर्सेनिक शरीर के अंगों में इकट्ठा होते रहने वाला विष है। पानी में इसकी उपस्थिति औद्योगिक प्रदूषण के कारण होती है। अधिक मात्रा में यह आंतों में पीडा करने वाला तथा स्नायु-दबाव बढ़ाने वाला धातु है। कीटनाशक, जूं तथा त्वचा पर उपस्थित अन्य वाह्य परजीवी कीटनाशक, चूहों के लिए विष, खरपतवार हटाने के उद्देश्य से काम में लिया गया आर्सेनिक आदि जब लापरवाही से पानी के

स्रोतों के नजदीक काम में लिया जाये तो यह जल वितरण-प्रणाली को संदूषित कर सकता है। यह खानों के पानी में भी पाया जाता है। पीने के पानी में इसकी उपस्थिति अत्यन्त हानिकारक है। आर्सेनिक की विषाक्तता के कारण पशुओं में तीव्र असन्नता, लड़खड़ाना, कांपना, मांसल ऐंठन, तेज श्वास, बेचैनी, कराहट आदि लक्षण देखे जा सकते हैं। विष का प्रभाव ज्यादा होने पर रोग ग्रस्त पशु की तीन या चार घंटे में मृत्यु भी हो सकती है। पशुओं के सास में लहसुन जैसी गंध, बालो का गिरना, त्वचा का खुरदरा व रूसीयुक्त होना, आंखो का लाल होना, दस्त आना और पिछले पैरों का आंशिक पक्षाघात आदि लक्षण भी प्रमुख रूप से दिखाई देते हैं।

सूची–1. जानवरों के पीने के पानी मे विषैले रासायनिक पदार्थों की सीमित मात्रा* का मार्गदर्शन :

रसायन	ऊपरी सीमा mg/लीटर
आल्यूमिनीयम	5.0
आर्सेनिक	0 2
बैरिलियम[1]	0.1
बारोन	5.0
काडमियम	0.05
क्रोमीयम	1.00
कोबाल्ट	1.00
तांबा	0.5
फ्लोराइड	2.0
लोहा	जरूरत नही
सीसा[2]	0.1
मैंगनीज[3]	0.5
पारा	0.01
नाइट्रेट + नाइट्राइट (NO_3–N+NO_2–N)	100 00
नाइट्राइट (NO_2–N)	10.0
सैलीनियम	0.05
वीनेडियम	0.10
जस्ता	24.0

सूची–2. जानवरों के लिए पीने के पानी मे मैग्नीसियम की सीमित मात्रा**—

जानवर	मैग्नीसियम की मात्रा (mg/L)	(me/L)[4]
मुर्गी[5]	<250	<21
सूअर[5]	<250	<21

चाहे	250	<21
गाय (दूध देने वाली)	250	<21
मांस के लिए गायें	400	33
मादा भेड़ व मेमने	250	<21
वयस्क भेड़ जो सूखे चारे पर रहती है	500	41

सूची–3 जानवरों और मुर्गियों के लिये लवणयुक्त पानी के बारे में मानक ***

पानी में नमक (EC_w)* (dS/m)	निश्चित करना	ध्यान देने योग्य बातें
< 1.5	श्रेष्ठ	सभी तरह के जानवरों और मुर्गियो के पीने योग्य।
1.5– 5.0	बहुत सन्तोषजनक	सभी तरह के जानवरों और मुर्गियो के पीने योग्य। जिन जानवरों ने पहले ऐसा पानी नही पीया हो उनमें कुछ समय के लिए दस्त लग सकती है और मुर्गियों में भी पानी जैसी बीटें होने लगती हैं।
5.0– 8.0	जानवरों के लिए सन्तोषजनक	अगर जानवरों ने ऐसा पानी पहले कभी नही पीया हो तो पहले तो वे मुश्किल से पीयेंगे और फिर पीने के बाद उनको कुछ समय के लिए दस्त लगती है।
	मुर्गियों के लिए अयोग्य	ज्यादातर पानी जैसी बीट और खास तौर से टर्की की शारीरिक बढ़ोतरी ठीक से नही होती है और वे मरने लगती हैं।
8.0–11.0	जानवरों के लिए कम काम मे ले	मांस के लिये रखी गयी गायों, भेड़ों और घोड़ों के लिए सावधानीपूर्वक काम मे लें। दूध देने वाले तथा गर्भावस्था वाले जानवरो को यह पानी नही पिलाएं।
	मुर्गियो के लिये अयोग्य	मुर्गियो के वास्ते काम मे नही लिया जा सकता।
11.0–16.0	बहुत कम उपयोगी	मुर्गियो और सूअरों के लिए बिलकुल ठीक नही। गर्भावस्था, दूध देने वाले पशु, घोड़े, भेड़ व छोटे जानवरों के लिये काफी खतरनाक। सामान्यत: ऐसा पानी नही पिलाना चाहिये,
0		

		जबकि ज्यादा उम्र वाले चौपाये जानवर, मुर्गी आदि कुछ स्थितियों में ऐसे पानी पर निर्वाह कर सकते हैं।
< 16.0	अयोग्य	अत्यधिक नमकयुक्त पानी काफी खतरनाक होने के कारण किसी भी स्थिति में पीने के लिये योग्य नही ठहराया जा सकता है।

सूची–4. मनुष्यों के पीने के पानी में रासायनिक पदार्थों की मात्रा का मार्ग दर्शन:****

		आई.सी.एम.आर. (1975)		डब्लू. एच.ओ. (1971)	
		ऊपरी वांछित मात्रा	अधिकतम रहने योग्य मात्रा	अधिकतम स्वीकृत मात्रा	अधिकतम स्वीकार योग्य मात्रा
पी. एच.		7.0–8.5	6.5–9 2	7.0–8 5	6 9–9.2
घुले हुए ठोस पदार्थ	भाग प्रति दस लाख भाग	500	1500[7]	500	1500
कैल्शियम		75	200	75	200
मैग्नीशियम		50	100	50	150
क्लोराइड		200	1000	200	600
सल्फेट		200	400	200	400
फ्लोराइड		1.0	1.5	0.8–1 0	1.0–1.5
नाइट्रेट		50	—[8]	10	45

1. जानवरों के लिए उपलब्ध नही, समुद्री जीवों के लिए उपयोगी।
2. सीसा शरीर मे जमा होता है और इसकी 0 05 mg/लीटर मात्रा भी विकार पैदा करने लग जाती है।
3. जानवरों के लिए इसकी मात्रा उपलब्ध नही है, मनुष्यों के लिए दी गयी मात्रा यहां बताई गयी है।
4. $me/L = \frac{mg/l \text{ of the element or ion}}{\text{Equivalent weight of element}}$
5. मुर्गी व सूअर के लिए इसकी मात्रा का पता नही, परन्तु यह 250 mg/लीटर से कम होती है।
6. EC_w = पानी की विद्युत संचालकता।
   dS/m = डैसी साइमन/मीटर (640 भाग प्रति दस लाख भाग)।

7. अगर पानी का कोई दूसरा स्रोत न हो तो घुले हुए ठोस पदार्थ 300 एम. जी/लीटर तक की छूट है।

8. मात्रा निर्धारण करने के लिए और सूचना चाहिये। मगर किसी भी हालत में यह 100 एम. जी./ लीटर से ज्यादा नही होनी चाहिये।

---

* National Academy of Science (1972) : National Academy of Sciences and National Academy of Engineering, water quality criteria. United Environmental Protection Agency, Washington D. C. Report No. EPA-R 373-033. p. 592.

** Australian Water Resources Council (1969) : Quality aspects of farm water supplies. Department of National Development, Canberra. 45p.

*** National Academy of Scinces (1972): National Academy of Sciences(1974): Nutrients and toxic substanes in water for livestock and poultry, Washington DC. 93p.

**** W.H.O. (1971) : International Standards of drinking water. 3rd Edi. Geneva.

I.C.M.R. (1975) : Manual of Standards of quality of drinking water supplies. Special report series No. 44.

पानी का जीवाणुओं के लिए परीक्षण

परिचय :

अच्छे स्वास्थ्य के लिए पीने के पानी का जीवाणुओं के लिए परीक्षण उसमें उत्पन्न हुए गट्टर के पानी द्वारा प्रदूषण की उपस्थिति या अनुपस्थिति का पता लगाने के लिए किया जाता है। पानी में साधारणतया निम्न दो तरह के जीवाणु पाये जाते हैं :–

मृतजीवी जीवाणु : **(Saprophytic bacteria) :**

ये पानी में प्राकृतिक रूप में पाये जाते है और शारीरिक गर्मी से नीचे ताप-क्रम पर (20–22° सी.) वृद्धि करते है। ये सड़ने वाले कार्बनिक पदार्थों से अपना पोषण लेते हैं तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से ये कम महत्वपूर्ण है। लेकिन पानी में इनकी उपस्थिति इस बात की सूचक है कि इसमे कार्बनिक पदार्थों की मात्रा ज्यादा है।

बाह्य पानी के जीवाणु **(Adventitious bacteria) :**

ये जीवाणु बाहर के स्रोतों से पानी के अन्दर आते हैं। इनके स्रोत हवा, वर्षा, मिट्टी, बर्फ इत्यादि हैं तथा एक निश्चित समय के बाद ये जीवाणु पानी में जीवित नहीं रह सकते। पीने के पानी मे बाहर से कुछ जीवाणु मनुष्यों एवं पशुओं के मल-मूत्र व नलों में बहने वाली गंदगी से आते है। इसलिए ऐसे पानी का जीवाणुओं के लिये परीक्षण करना अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे पानी में मल-मूत्र के जीवाणु उप-स्थित होते हैं तथा वे ज्यादातर कोलीफार्म, स्ट्रेप्टोकोकसाई तथा क्लोस्ट्रीडियम समूह के होते हैं। क्लोस्ट्रीडियम वेलशाइ की उपस्थिति पानी का ज्यादा समय पहले के संदूषण की सूचना देती है, क्योंकि ये पानी में लम्बे समय तक जीवित रह सकते हैं। जबकि पानी में कोलीफार्म समूह के जीवाणुओं का पाया जाना मल-मूत्र द्वारा हाल ही मे हुए संदूषण का संकेत देता है।

उद्देश्य :

(1) जीवित जीवाणुओं की गणना (Viable bacterial count or standard plate count)

(2) अनुमानित कोलीफार्म की गणना (Presumptive coliform count)

(3) विभेदन कोलीफार्म परीक्षा (Differential coliform test)

उपकरण :

नमूने के लिये काच की बोतल, जीवाणु रहित ग्रेजुएटेड पिपेट (1 व 10 एम एल), स्प्रिट लैम्प या गैस बर्नर (बुनसन या स्प्रिट लैम्प) जीवाणु रहित ब्लैंक के लिये कांच की परखनलियां, कांच के सामान पर लिखने वाली कलम, जीवाणु रहित पेट्री प्लेट (4 से मी व्यास की), पोषक अगर, मेकोन्की अगर, द्रव्य मेकोन्की ब्रोथ, डुयुरन्हस नली, स्टेण्ड, जाली की टोकरी, इन्क्यूबेटर, बी. ओ. डी इन्क्यूबेटर, होट एयर ओवन, ओटोक्लेव, कोलोनी काउन्टर, कॉन्स्टेन्ट तापक्रम का वाटर वाथ, पी. एच. मीटर, फ्लास्क एवं तुला।

उपकरणों को जीवाणुओं से मुक्त करना (Sterilization of equipments) :

सभी कांच के उपकरणों को अच्छी तरह से साफ करना चाहिए, क्योंकि कार्वनिक व अकार्वनिक पदार्थ कलचर के दौरान जीवाणुओं की वृद्धि व प्रजनन मे रुकावट पैदा करते हैं। इसके वास्ते एक अच्छे किस्म के साबुन का पाऊडर काम में लेना चाहिए और उपकरणों को साबुन और पानी से साफ धोकर फिर आसुत पानी से धोकर सुखाना चाहिये। परखनली पर पानी न सोखने वाली रूई का डट्टा लगाना चाहिये। डट्टा न तो ज्यादा कसा हुआ और न ही ज्यादा ढीला होना चाहिए। ब्लैंक की परखनलियां तैयार करने के लिए उनमे 9 एम.एल. आसुत पानी भरकर उस पर रूई का डट्टा लगा देना चाहिये। फिर इन परखनलियों को जाली की टोकरी मे रखकर, एक कागज से ढककर, उसको चारों तरफ से एक धागे द्वारा बांध दें। पेट्रीप्लेट, पिपेट और जाली की टोकरी, जिसमें यह सामान रखा जाता है, सभी को अखबार के पुराने कागज से ढककर जीवाणु रहित कर लेते हैं।

होट एयर ओवन (Hot air oven) : ओवन में थर्मामीटर और तापमान बराबर बनाये रखने के लिये थर्मोस्टेट भी लगा होना चाहिये। जिस सामान को जीवाणु रहित करना होता है उन्हें ओवन में रख देते है और इसे 160° सी. पर सेट करके सभी सामान को डेढ घंटे तक रहने देते है। इतने समय में उसमें रहने वाले सभी सूक्ष्मजीवी मर जाते हैं। ओवन में जीवाणुओं से पानी वाष्प बनकर उड़ जाता है तथा उनका प्रोटीन जम जाता है। जीवाणुओं के प्रोटोप्लाज्म में 85 प्रतिशत नमी होती है जो कि ओवन की शुष्क गर्म हवा से समाप्त हो जाती है तथा नमी समाप्त होने पर जीवाणु मर जाते हैं। इस प्रकार कांच के उपकरणों का ओवन द्वारा स्टरलाइजेशन हो जाता है। ओवन में जो भी सामान रखें तो ध्यान रहे कि उपकरणों पर लगे कागज ओवन की दीवार को न छुएं। स्टरलाइजेशन के बाद तक ओवन का तापक्रम सामान्य (40° सी.) पर न आ जाय तब तक उसका दरवाजा नहीं खोलना चाहिये वर्ना उसमे रखे कागज आग पकड़ सकते हैं और तापक्रम में एकदम गिरावट आ जाने के कारण काच के उपकरण टूट भी सकते है।

ओटोक्लेव (Autoclave) : यह जरा बड़ा होना चाहिये जिससे कि सभी उपकरण इसमें आसानी से आ सकें और उनको समान तापक्रम मिल सके। इस उपकरण के द्वारा सारे जीवाणु 15 पौण्ड हवा के दवाव पर 15 से 20 मिनट मे मर जाते हैं। शर्करा मिले मीडिया (Media) को 10 पौण्ड वायु के दवाव पर आधा या एक घंटा तक ओटोक्लेव करना चाहिए। उच्च दवाव पर शर्करा खराब हो जाती है। ओटोक्लेव की नमी वाली वाष्प, ओवन की सूखी हवा की तुलना में जीवाणुओं को समाप्त करने का एक तीव्र व अच्छा माध्यम है। ओटोक्लेव मे नम वाष्प ज्योंही उसमे रखे उपकरणों के सम्पर्क मे आती है उनका तापक्रम बढ जाता है। इसमें रखे उपकरणों का तापक्रम कम होने के कारण वाष्प उन पर जमती जाती है और वाष्पीकरण की गुप्त ऊष्मा मुक्त हो जाती है और इस प्रकार उपकरण गर्म होते रहते है। वाष्प छोटे छिद्रों से भी हवा को हटाकर उसका स्थान लेती है। ओवन की तुलना में ओटोक्लेव बहुत अधिक प्रभावशाली है क्योंकि वाष्प का अपेक्षित घनत्व गर्म हवा की तुलना मे कम होता है और ज्यों–ज्यों वाष्प उपकरणो पर जमती है, उसका आयतन लगभग $\frac{1}{1700}$ भाग कम हो जाता है जिससे आंशिक शून्यता बढती रहती है और उस खाली स्थान को भरने के लिए तुरन्त ही तेजी से वाष्प, उपकरण की तरफ आती है और उस पर जमती रहती है। ऐसा तब तक होता है जब तक कि उपकरण का तापक्रम वाष्प के तापक्रम के बराबर न आ जाये। प्रभावशाली तरीके से उपकरण पर से जीवाणुओं को समाप्त करने के लिये वाष्प को उपकरणों के सम्पर्क में लाना जरूरी है और इसके लिए हर उपकरण को अलग-अलग रखना चाहिये जिससे वाष्प उस पर आसानी से पहुंच सके। जीवाणुओं में पानी की मात्रा ज्यादा हो जाने के कारण उनके प्रोटीन का थक्का जम जाता है। चमड़े के उपकरण व तेल का ओटोक्लेव द्वारा सूक्ष्मजीवीनाशन नही किया जा सकता। रूई, द्रव माध्यम, रबड के सामान, कपडे, धातु के और कांच के उपकरण इत्यादि को ओटोक्लेव द्वारा अच्छी तरह से जीवाणुरहित किया जा सकता है। आपातकाल में प्रेशर कुकर को भी ओटोक्लेव की जगह काम मे ले सकते हैं।

ओटोक्लेव को काम में लेते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि ओटोक्लेव मे जैसे ही हवा का दाब बढने लगे, तब शुरू मे एक बार उसके अन्दर की गर्म हवा को वाल्व द्वारा पूर्ण रूप से बाहर निकाल देनी चाहिये। अगर ओटोक्लेव मे से गर्म हवा नही निकाली जायेगी तो यह हवा गर्म होकर फैलेगी और इसके कारण ओटोक्लेव हवा का सही दवाव नही दे पायेगा। काम की समाप्ति पर एवं ओटोक्लेव को खोलते समय कुछ दूरी पर खडा होना चाहिये जिससे उसमे तेजी से निकलने वाली वाष्प से कोई दुर्घटना न हो।

स्टेण्डर्ड प्लेट काउंट :

पानी के जीवाणु

पोषक अगर की तैयारी व स्टरलाइजेशन : स्टैंण्डर्ड प्लेट काउंट के लिये काम

में आने वाले पोषक अगर निम्नलिखित सामग्रियों को मिलाकर बनाया जाता है—

अगर पाउडर	15 ग्राम
बीफ (Beef) एक्स्ट्रेक्ट	5 ग्राम
पेप्टोन	10 ग्राम
सोडियम क्लोराइड	5 ग्राम
आसुत पानी	1,000 एम एल.

सभी सामग्रियों को काच के फ्लास्क में डालकर, वाटर बाथ पर रखकर गर्म करके घोल लेते हैं। फिर उसका पी.एच. 7.4 सेट करते हैं। फ्लास्क पर रूई का डाट लगाकर उसे 15 पौण्ड दवाब पर उपरोक्त दी गयी विधि के अनुसार मीडियम को ओटोक्लेव के द्वारा स्टरलाइज करते हैं। जब हवा का दवाब शून्य हो जाय तब मीडियम को ओटोक्लेव से निकाल कर उसे जब तक अन्य कार्य में न लिया जाय, 50° सी. पर वाटर बाथ मे रखना चाहिये या लम्बे समय तक उसे खराब होने से बचाने के लिये रेफ्रीजरेटर में रख देना चाहिये।

ब्लैंक की तैयारी व उसका स्टरलाइज करना : ब्लैंक वह आसुत पानी होता है जिससे नमूने के पानी का तनुकरण किया जाता है। इसके लिये हर परखनली में 9 एम.एल. आसुत पानी लेते है और उस पर रूई का डाट लगाते हैं। उसे जाली की टोकरी में रखकर कागज से ढक देते हैं और 15 पौण्ड दबाव पर ओटोक्लेव करके तैयार करते है।

पानी के नमूने लेना :

इसकी विधि पिछले अध्याय में दी हुई है।

पानी के नमूने का तनुकरण करना :

(1) नल के पानी का परीक्षण करने के लिये उसे 1 : 10 एव 1 : 100 के अनुपात मे तनुकरण करना काफी होता है क्योंकि ऐसे पानी में संदूषण की संभावना कम होती है।

(2) जलाशय के पानी का परीक्षण करने के लिये उसे 1 : 10, 1 : 100, 1 : 1,000 एवं 1 : 10,000 के क्रम तक तनुकरण करते हैं क्योंकि ऐसे पानी मे संदूषण की संभावना ज्यादा रहती है।

(3) कुण्डी के पानी के नमूने के परीक्षण के लिये उसका 1 : 10, 1 : 100, 1 : 1,000 और 1 : 10,000 क्रम तक तनुकरण करते हैं। ऐसे पानी के पशुओं के मल-मूत्र द्वारा संदूषित होने की बहुत ज्यादा संभावना रहती है। नमूना एकत्रित करने के बाद जितना जल्दी हो सके पानी का परीक्षण कर लेना चाहिये। पानी का नमूना लेने के बाद और उसके परीक्षण करने के बीच के समय तक पानी के नमूने की बोतल को 6 से 8° सो. पर बर्फ मे रखनी चाहिये। नमूने का परीक्षण 24 घंटे

तक नहीं किया जा सके और अगर परीक्षण करना जरूरी हो तो ऐसे में परीक्षण के परिणाम पर सोच-समझ कर निर्णय लेना चाहिये ।

पानी के नमूने की बोतल को पच्चीस बार, एक फुट के अन्तराल पर ऊपर नीचे करके जोर से हिलाना चाहिये । इस विधि से पानी में जीवाणुओं के समूह बिखर जाते हैं और नमूने के सही परिणाम निकलते हैं । परीक्षण कार्य करते समय वहां पर बिजली का पंखा नही चलाना चाहिये, तथा सब दरवाजे और खिड़कियां बन्द करके काम करने वाली टेबल को हल्के रासायनिक घोल से साफ करके ब्लो लेम्प की ज्वाला से टेबल के पूरे वातावरण को जीवाणु रहित कर लेना चाहिये ।

पिपेट की सहायता से पानी के नमूने की बोतल में से एक एम.एल. नमूना लेकर उसे 9 एम.एल. वाली ब्लैंक की परखनली में डाल देते हैं । इस प्रकार यह एक 1 : 10 तनुकरण नमूने का पानी तैयार हो जाता है । इस परखनली को हाथ की हथेलियों के बीच अच्छी तरह घुमाकर नमूने को ब्लैंक के साथ मिला देते हैं । अब इस 1 : 10 तनुकरण किये नमूने में से पिपेट द्वारा 2 एम.एल. पानी निकाल कर उसमें से एक एम.एल. पानी एक स्टरलाइज पेट्री प्लेट में तथा एक एम.एल. पानी एक दूसरी ब्लैंक की परखनली मे डालें । इस पहली प्लेट पर 1 : 10 लिख देंगे तथा ब्लैंक की दूसरी परखनली पर 1 : 100 लिखेंगे । अब इस 1 : 100 वाली ब्लैंक परखनली से फिर 2 एम.एल. पानी का नमूना निकाल कर दूसरी पेट्री प्लेट में एक एम.एल. डालें । इसे 1 : 100 तनुकरण की प्लेट कहेंगे । पिपेट मे बचा हुआ एक एम.एल. नमूना ब्लैंक की तीसरी नली में डालें जिसे 1 : 1,000 तनुकरण अनुपात वाला नमूना कहेंगे । अब पिपेट द्वारा इस परखनली से एक एम.एल. नमूना लेकर उसे तीसरी खाली पेट्री प्लेट में डालें और यह प्लेट 1 : 1,000 तनुकरण अनुपात वाली प्लेट कहलायेगी । इस प्रकार 1 : 10, 1 : 100 और 1 : 1,000 तनुकरण, अनुपात की तीन पेट्री प्लेट्स तैयार हो जाती हैं । इस तरह जितने ही तनुकरण अनुपात के पानी का नमूना तैयार करना हो आगे फिर किया जाता है और इस विधि से हमे किसी एक पेट्री प्लेट में 30 से 300 तक जीवाणुओं के समूह मिल सकते हैं । जिस पेट्री प्लेट में 30 से कम और 300 से ज्यादा जीवाणुओं के समूह हो तो वह परिणाम के लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती है ।

पोषक अगर मीडियम को पेट्री प्लेट मे भरना : पोषक अगर को ठंडा करके उसका तापक्रम 50° सी. तक लाए । अब ब्लो लैम्प के पास में 1:10, 1.100, 1:1,000 तनुकरण की प्लेट में 10 एम.एल. मीडियम डाले और प्लेट को धीरे-धीरे टेबल पर गोलाई मे घुमाकर नमूने और मीडियम को अच्छी तरह मिलाएं । इस विधि द्वारा मीडियम मे जीवाणुओं का वितरण एक समान होता है । कुछ समय बाद जब पेट्री प्लेट मे अगर जम जाये तब प्लेट को उल्टा करके 37° सी. तापक्रम

पर 24 से 48 घंटे तक रखा जाता है। प्रयोग की प्रामाणिकता के लिये नमूने के पानी के हर तनुकरण अनुपात की दो या तीन पेट्री प्लेट बनानी ठीक रहती है।

गणना : जीवाणुओ की कोलोनी की गणना के लिये 30 से 300 कोलोनी वाली प्लेट को चुनना चाहिये। उपरोक्त किये गये प्रयोग मे से कोलोनी गणना के लिये एक ही तनुकरण अनुपात की बनायी गयी तीनो पेट्री प्लेट्स के जीवाणुओ के कोलोनी का औसत मान निकाल लेना चाहिये। कोलोनी की गणना कोलोनी काउंटर द्वारा करनी चाहिये और उसकी अनुपस्थिति मे एक बड़ा अवतल लैंस (मैग्नीफिकेसन 1.5 ब्यास) से भी कोलोनी की गणना की जा सकती है। जब मृतोपजीवी जीवाणुओ के परीक्षण का परिणाम लिखना हो तो उसे 'स्टेण्डर्ड प्लेट गणना 20° सी' कहेगे तथा जब बाह्य जल जीवाणुओं के परीक्षण का परिणाम लिखना हो तो उसे 'स्टेण्डर्ड प्लेट गणना 37° सी.' कहेंगे।

एक एम एल. पानी में जीवाणुओं की संख्या का पता लगाने के लिये उस पेट्री प्लेट में गिनती की हुई कोलोनीज को पेट्री प्लेट के तनुकरण अनुपात से गुणा करते है। इस प्रकार निकाले गये परिणाम को निम्नलिखित तालिका से तुलना करके नमूने के पानी की श्रेणी का पता लगा लिया जाता है।

वितरण किये जाने वाले पानी के नियम (माइक्यूल 1891)

श्रेणी	प्रति एम.एल पानी मे जीवाणुओं की संख्या
अत्यन्त शुद्ध पानी	10 से कम
बहुत शुद्ध पानी	10 से 100
शुद्ध पानी	100 से 1,000
मध्यम पानी	1,000 से 10,000
अशुद्ध पानी	10,000 से 1,00,000
बहुत अशुद्ध पानी	1,00,000 से ज्यादा

कोलीफार्म जीवाणु :

पानी मे कई तरह के हानिकारक जीवाणु पाये जाते हैं व प्रत्येक जीवाणु को अलग से पहचान पाना एक कठिन कार्य है। यह एक प्रमाणित तथ्य है कि मनुष्यों व पशुओ के मल में साधारणतया कोलोन बेसिलाई नामक जीवाणु पाये जाते हैं और जब इनके द्वारा पानी का संदूषण होता है तो ई. कोलाई जीवाणु पानी मे आ जाते हैं। पानी में पाये जाने वाले दूसरे जीवाणुओं की अपेक्षा इस जीवाणु का पता आसानी से लगाया जा सकता है। इसलिये पानी की दूषितता का पता लगाने के लिये ई. कोलाई की उपस्थिति के लिये परीक्षण किया जाता है। वैसे कोलोन समूह के जीवाणु हानिकारक नही होते हैं, परन्तु ये हमेशा मल मे पाये जाते हैं इसलिये पानी

में इनका पाया जाना, मल द्वारा पानी के संदूषण का द्योतक है। इससे इस बात का पता लगता है कि ऐसे पानी द्वारा पानी से फैलने वाले कई रोग हो सकते हैं। कोलाई जीवाणु लम्बे समय तक पानी में जीवित नही रह सकता और उसका पानी के नमूने में पाया जाना इस बात का सकेत है कि पानी से फैलने वाली बीमारियों के हानिकारक जीवाणु उस पानी मे विद्यमान हैं।

मेकोन्की अगर मीडियम बनाकर उसे स्टरलाइज करना :

इस मीडियम को निम्नलिखित सामग्री मिलाकर बनाया जाता है—

सोडियम टाउरोकोलेट	2.5 ग्राम
सोडियम क्लोराइड	2.5 ग्राम
पेप्टोन	10.0 ग्राम
अगर	7.5 ग्राम
लेक्टोस	5.0 ग्राम
न्यूट्रल रेड (एक प्रतिशत घोल)	2 0 एम एल.
आसुत पानी	500 एम.एल.
पी.एच.	7.4

मेकोन्की अगर को तैयार करने की विधि, पोषण अगर को तैयार करने की विधि की तरह ही है। लेक्टोस और न्यूट्रल रेड को 10 पौण्ड हवा के दाब पर आटोक्लेव मे रखकर जीवाणु रहित कर लेते हैं और फिर उन्हे ऊपर बनाये गये अगर में मिलाकर मेकोन्की अगर तैयार कर लेते है।

पानी के नमूने का तनुकरण करना उसे पेट्री प्लेट में लेना, उसमें मेकोन्की अगर मीडियम मिलाना, जीवाणुओ की गणना करना आदि सभी ऊपर लिखी विधि के अनुसार ही किये जाते है। गुलाबी रंग की कोलोनीज को कोलोनी काउन्टर की सहायता से गिना जाता है। नमूने के पानी में कोलीफार्म जीवाणुओं की सख्या का पता लगाने के लिये, कोलोनी की संख्या को उसी पेट्री प्लेट के पानी के तनुकरण के अनुपात से गुणा करते हैं। इस विधि द्वारा अनुमानित कोलीफार्म जीवाणुओ की संख्या ही ज्ञात कर सकते हैं क्योकि कुछ जीवाणुओ की कोलोनी अगर मीडियम के नीचे रह जाती है जिससे सही परिणाम नही निकाला जा सकता। परन्तु इस परीक्षण को शीघ्र किये जा सकने के कारण पानी मे कोलीफार्म जीवाणुओ का पता लग जाता है। पानी से फैलने वाले रोगो से बचने मे यह परीक्षण बहुत उपयोगी है।

अनुमानित कोलीफार्म की गणना (Most Probable Number, M.P.N.) :

मेकोन्कीज लेक्टोज वाइल ब्रोथ (सिंगल व डवल स्ट्रेन्थ मीडियम)

(1) सिंगल स्ट्रेन्थ मीडियम बनाना और स्टरलाइज करना :

सोडियम टाइरोकोलेट	5 ग्राम
लेक्टोज	10 ग्राम
पेप्टोन	10 ग्राम
सोडियम क्लोराइड	5 ग्राम
आसुत पानी	1,000 एम. एल.
ब्रोमोक्रिसोल पर्पल (मिथेनोल में एक प्रतिशत घोल)	1 एम. एल.

(2) डबल स्ट्रेन्थ मीडियम बनाना और स्टरलाइज करना :

डबल स्ट्रेन्थ मीडियम बनाने के लिए 1,000 एम. एल. की जगह सिर्फ 500 एम. एल. आसुत जल ही लें और बाकी उपरोक्त सभी अवयव उतने ही मिलाएं। फ्लास्क में लिये गये अवयवों को गर्म करके घोलते हैं तथा उसे पी.एच. 7.2 पर समायोजित करते हैं। अब मीडियम को परखनलियों में समान रूप से वितरित करते हैं व हर एक नली में ड्यूरहेंस ट्यूब को उल्टी अवस्था में रख देते हैं। मीडियम की इन परख नलियों को 15 पौण्ड हवा के दबाव पर 20 मिनट तक ऑटोक्लेव करते हैं। जब एक एम. एल. अथवा इससे भी कम पानी का नमूना मिलाना हो तो सिंगल स्ट्रेन्थ मीडियम काम में लाते हैं, जबकि 10 एम. एल. अथवा उससे अधिक नमूने के पानी को मीडियम में मिलाना हो तो डबल स्ट्रेन्थ मीडियम काम में लेते हैं। इस माध्यम में केवल कोलीफार्म जीवाणु ही पनप कर वृद्धि कर सकते हैं। मीडियम में उपस्थित सोडियम टाइरोकोलेट (बाइल साल्ट) दूसरे जीवाणुओं की वृद्धि को रोक देता है। आंतों में भी बाइल साल्ट पाया जाता है तथा ये कोलीफार्म जीवाणु बाइल साल्ट की उपस्थिति में अपने आपको जीवित रख लेते हैं। कोलीफार्म जीवाणु लेक्टोज को काम में लेकर अम्ल और गैस पैदा करता है। अम्ल के कारण मीडियम का ब्रोमोक्रिसोल ब्ल्यू रंग लाल नीले से पीले रंग में बदल जाता है, जबकि गैस ड्यूरहेन्स ट्यूब में इकट्ठी होकर इसे मीडियम की सतह पर ले आती है।

तनुकरण (Dilution) : इसके लिये पांच ट्यूबों की व्यवस्था वाली विधि काम में लेते हैं। मीडियम की तैयार की हुई कुल 15 परखनलियां लेते हैं। अब पहले सेट की डबल स्ट्रेन्थ मीडियम की पांचों परख नलियों में से हर नली में 10 एम. एल. नमूने का पानी डालते हैं। दूसरे सेट की प्रत्येक मीडियम (सिंगल स्ट्रेन्थ) वाली परखनली में एक एम. एल. नमूने का पानी डालते हैं। तीसरे सेट की प्रत्येक मीडियम (सिंगल स्ट्रेन्थ) वाली परख नली में सिर्फ 0.1 एम. एल. नमूने का पानी डालते हैं। इन सभी परखनलियों को 37° सी. पर चौबीस घंटे तक रखकर इनक्यूबेट करते हैं तथा गैस व बदले हुए रंग की परखनलियों से परिणाम दर्ज कर लेते हैं।

संभावित जीवाणुओं की संख्या (Most Probable Number): दर्ज किये हुए परिणाम के द्वारा मेक्क्रेडी टेवल से तुलना करके (परिशिष्ट द्वितीय) 100 एम. एल. पानी में उपस्थित जीवाणुओ की सख्या ज्ञात कर लेते हैं।

कन्फर्मेटरी परीक्षण (Confirmatory tests) :

ऊपर किये गये परीक्षण की जिन परखनलियों मे अम्ल व गैस का होना दिखाई देता है उन परखनलियों मे से ई. कोलाई के लिये कन्फर्मेटरी परीक्षण किया जाता है। इन परख नलियों मे से हर एक जीवाणुओ को दो ब्रीलयेन्ट ग्रीन बाइल ब्रोथ मीडियम की नलियो में सब-कल्चर किया जाता है। इनमें से एक नली को 30° सी. व दूसरी को 40° सी. पर 48 घण्टों के लिये इनक्यूबेट किया जाता है तथा इनका 8 और 24 घण्टे के पश्चात् ई. कोलाई की बढ़ोतरी के लिये देखा जाता है। ई. कोलाई ही ऐसा जीवाणु है जो 44° सी पर लेक्टोस से अम्ल और गैस पैदा करता है। इसका पता लगाने के लिये 44° सी. पर इन्डोल पैदा करने वाला परीक्षण भी लगाया जा सकता है।

ब्रीलयेन्ट ग्रीन लेक्टोस बाइल ब्रोथ—

पेप्पटोन	10 ग्राम
लेक्टोस	10 ग्राम
सोडियम टाउरोकोलेट	20 ग्राम
ब्रीलयेन्ट ग्रीन	0.0133 ग्राम
आसुत पानी	1,000 एम. एल.

ऊपर दिये गये अवयवों को एक फ्लास्क में लेकर आसुत पानी मे घोलते हैं। इसका पी. एच. 7.2 पर सेट करने के बाद उसे परखनलियो में भरते हैं और 15 पौण्ड हवा के दवाव पर 15 मिनट के लिये ओटोक्लेव द्वारा स्टरलाइज करते हैं।

मेम्ब्रेन द्वारा छानने की विधि (Membrane filtration technique):

यह विधि भी कोलीफार्म जीवाणुओ का पता लगाने के लिये काम में ली जाती है। नमूने के पानी की निश्चित मात्रा सैल्युलोस एसीटेट मेम्ब्रेन के द्वारा छानी जाती है। जीवाणु इसकी ऊपरी सतह पर ही रह जाते हैं। इस सतह को मेकान्की अगर मीडियम की सतह से छुआते हैं और मीडियम की पेट्री प्लेट को 24 घण्टे तक इनक्यूबेट करके परिणाम नोट कर लेते हैं। यह विधि दी गयी दूसरी विधियों के मुकाबले कम समय में कोलीफार्म जीवाणु का पता लगाने में सक्षम है।

कम्प्लीटेड परीक्षण :

यह परीक्षण कन्फर्मेटरी परीक्षण के बाद किया जाता है। इस परीक्षण से पानी के स्टरलाइजेशन से पहले और उसके बाद आने वाले अन्तर का अनुमान लगाया जाता है। इस परीक्षण के लिये कन्फर्मेटरी परीक्षण के काम मे ली गयी

परखनली से एक लूप (Loop) ब्रोथ को ईयोसिन मीथाइलिन ब्ल्यू की तैयार की गई पेट्री प्लेट पर लगाते है। इस प्लेट को 24 घंटे के बाद 35° सी पर इन्क्यूबेट करते है। मेटेलिक लस्टर देने वाली कालोनी को अगर मीडियम की नली पर और लेक्टोस ब्रोथ फरमन्टेशन वाली नली पर लगाकर इन्हें 35° सी. पर 24 से 48 घंटे के लिये इन्क्यूबेट करते है। मीडियम से स्लाइड तैयार करके ग्राम स्टेन (Gram stain) करके उसकी सूक्ष्मदर्शी द्वारा जांच करते हैं। इस परीक्षण मे लेक्टोस ब्रोथ में गैस का बनना, स्लाइड पर ग्राम नेगेटिव बिना स्पोर के जीवाणु का दिखाई देना, कोलीफार्म जीवाणुओ के होने की सूचना देते है।

इयोसिन मीथाइलिन ब्ल्यू अगर :

पेप्टोन	10 ग्राम
डाइपोटेशियम फॉस्फेट K_2HPO_4	2 ग्राम
अगर	20 ग्राम
पानी मे बना 20% लेक्टोस	50 एम. एल.
पानी में बना 1% इयोसिन	40 एम. एल.
पानी में बना 0.5% मीथाइलिन ब्ल्यू	13 एम. एल.
आसुत पानी	900 एम. एल.
पी एच.–8 0	

मीडियम को ओटोक्लेव द्वारा 15 पौण्ड पर 15 मिनट मे स्टरलाइज करके पेट्री प्लेट मे डालें। इसके लिये पहले से तैयार किया हुआ हाइड्रेटेट मीडिया भी काम मे लें तो अच्छा रहता है।

पानी का फीकल स्ट्रेप्टोकोकआई के लिये परीक्षण (Examination of water for faecal streptococci) :

ये जीवाणु गोलाकार, ग्राम पोजेटिव, बिना स्पोर के और बड़ी या छोटी-चेन (Chain) के रूप में दिखाई देते हैं। मीडियम की प्लेट पर इन जीवाणुओं की कोलोनी ओस की बूंदो जैसी दिखाई देती है। यह जीवाणु चमडी, म्यूकस मेम्ब्रेन, दूध व मनुष्यो और जानवरो की आतों मे पाया जाता है। आतो में रहने वाली किस्म हमेशा मल मे पाई जाती है और इसे फीकल स्ट्रेप्टोकोकआई कहते है। इसकी सामान्य किस्में स्ट्रेप्टोकोकआई फीकलिस (मनुष्यों की), स्ट्रेप्टोकोकआई फीइसीयस (सूअर की), स्ट्रेप्टोकोकआई बोविस (गायों की) और स्ट्रेप्टोकोकआई इक्वाइन (घोड़ों की) है। इनको एन्टरोकोकआई भी कहते हैं और इन सभी किस्मो को लेन्सफील्ड क्लासिफीकेशन (Lancefield classification) द्वारा समूह डी (Group–D) का दर्जा दिया गया है।

परीक्षण की विधि (एम पी. एन) :

उपकरण : परखनली का स्टेंड, 25 एम. एल क्षमता की परखनलियां, 10,

1 और 0.1 एम. एल. के पिपेट, स्प्रिट लैम्प, एन्टरोकोकआई अनुमानित ग्रोथ मीडियम (सिंगल और डबल स्ट्रेन्थ मीडियम), (सेन्ड होल्जर और विन्टर, Sandholzer and Winter).

(1) सिंगल स्ट्रेन्थ मीडियम बनाकर स्टरलाइज करना :

ट्रीपटोन	5 ग्राम
यीस्ट् एक्स्ट्रेक्ट	5 ग्राम
ग्लूकोज	5 ग्राम
सोडियम आजाइड	0.4 ग्राम
ब्रोमोथाइमोल ब्ल्यू	0.32 ग्राम
आसुत पानी	1,000 एम. एल.

(2) डबल स्ट्रेन्थ मीडियम बनाकर स्टरलाइज करना :

इसे बनाने के लिये ऊपर लिखी सामग्रियों को तोलकर उसमें 1,000 एम. एल. आसुत पानी की जगह सिर्फ 500 एम. एल. आसुत पानी ही मिलाए।

सारी सामग्री को गर्म करके घोलते हैं और उसका पी. एच. 8.4 पर सेट करके ओटोक्लेव में 15 पौण्ड पर 15 मिनट रखकर स्टरलाइज करते हैं। इस मीडियम द्वारा पीने के पानी, स्विमिंग पूल, गट्टर व अन्य दूषित पानी में फीकल स्ट्रेप्टोकोकआई के होने का पता लगाते हैं। मीडियम को परखनलियो में लेना, नमूने का पानी मिलाना, इनक्यूबेट करना, परिणाम लिखना व इसे मेक्क्रेडी टेबल (परिशिष्ट द्वितीय) से तुलना करके 100 एम. एल. पानी मे उपस्थित जीवाणुओ की संख्या आदि ठीक अनुमानित कोलीफार्म की गणना की तरह ही ज्ञात करते हैं। परीक्षण के लिये मीडियम को 45° सी. पर 24 घंटे के लिये इन्क्यूबेट करते हैं और अम्ल व टरबीडिटी दोनो ही नोट करते हैं। अम्ल बनने के कारण मीडियम का रंग ब्ल्यू से पीला हो जाता है। फीकल स्ट्रेप्टोकोकआई के लिये सोडियम आजाइड सामग्री बहुत ही उपयुक्त है।

पानी के मानक (यू. के. मिनिस्टरी आफ हेल्थ फार वाटर सप्लाई 1939)

पानी की श्रेणी	प्रति 100 एम. एल. पानी में अनुमानित कोलीफार्म जीवाणुओ की संख्या
अति संतोषप्रद	एक से कम
संतोषप्रद	एक से दो
संदेहास्पद	तीन से दस
असंतोषप्रद	दस से ज्यादा

उपचारित पानी :

सौ एम एल. पानी को क्लोरीनेशन करने पर कोलीफार्म जीवाणु समाप्त हो जाते हैं। कोलीफार्म जीवाणुओ का एम. पी. एन. एक से कम होना चाहिये।

अनुपचारित पानी :

नब्बे प्रतिशत नमूनो में कोलीफार्म जीवाणुओं का एम. पी. एन. पूरे साल देखने पर दस से कम होता है।

स्विमिंग पूल का पानी :

श्रेणी	प्रत्येक 100 एम. एल. मे औसत ई. कोलाई
ए	0–50
बी	51–500
सी	501–1,000
डी	1,000 से ज्यादा

पानी का सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा परीक्षण

सूक्ष्मदर्शी यंत्र की सहायता से पानी में पाये जाने वाले हानिकर अविलेय खनिज पदार्थ, वनस्पति, जीवाणु और शैवाल आदि का परीक्षण किया जाता है। ये सामान्य तौर पर आंखों की सहायता से नहीं देखे जा सकते। परीक्षण के लिए पानी के नमूने को सेंट्रीफ्यूज करते हैं या उसके अभाव में पानी के नमूने को कांच की बोतल में 4 से 24 घंटे तक बिना हिलाए रखते हैं। जब इस अवधि में ठोस पदार्थ बोतल के पैंदे में पहुंच जायं तो उसे बिना ज्यादा हिलाये उसमें से ऊपर का पानी बाहर निकाल देते हैं। बोतल के पैंदे से पानी की कुछ बूंदें एक स्लाइड पर लेते हैं और उस पर सावधानी से एक कवर स्लिप रखकर सूक्ष्मदर्शी की सहायता से निम्न प्रकार से (चित्र 13) परीक्षा करते हैं :–

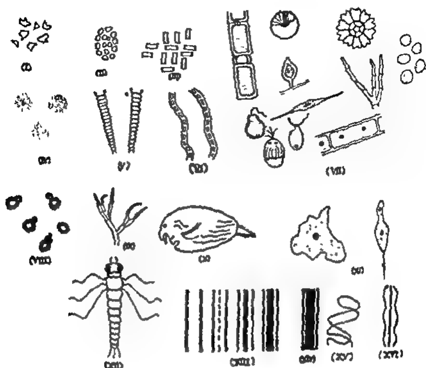
1. जो पानी नदी, नालों व गहरे कुओं से लिया जाता है उसमें रेत के कोण-युक्त कण समूहों में दिखाई देते हैं।

2. चिकनी मिट्टी (Clay) : चिकनी मिट्टी के कण गोल, चिकने, दानेदार व हरे रंग के होते हैं। ये समूहों में भी मिल सकते हैं। तनुकृत हाइड्रोक्लोरिक अम्ल डालने से इन पर कुछ भी असर नहीं होता है।

3. खड़िया मिट्टी (Chalk) : यह चिकनी होती है और क्रिस्टल-युक्त दिखाई देती है। नमूने के साथ स्लाइड और कवर स्लिप के बीच में तनुकृत हाइड्रो-क्लोरिक अम्ल डालने पर इस मिट्टी के कण आंखों से ओझल हो जाते हैं और गैस के बुलबुले दिखाई देते हैं।

4. पानी में अक्सर लोह के आक्साइड भी पाये जाते हैं। लोह पर पनपने वाले तत्वों जीवाणु पानी के नलों में लोहे की दीवारों पर विकसित होते हैं और इस कारण लोह तत्वों के नलों से बाहर आ जाने से पानी का रंग गंदला हो जाता है। यह ललाईयुक्त भूरे-भूरे पदार्थ के रूप में दिखाई देता है। इनकी परीक्षा करने के लिए नमूने के पानी के साथ यानी कि कवर स्लिप और स्लाइड के बीच में एक बूंद पोटेशियम फेरो साय-नाइड की डालें। पानी के नमूने में नीले रंग का दिखाई देना लोहे की उपस्थिति बताता है। अगर अम्लीय पानी तांबे के बर्तन में रखा जाय तो वह अपने में तांबे को घोल लेता है। तांबा युक्त पानी की परीक्षा के लिए पोटेशियम फेरो सायनाइड

की कुछ बूंदें डालने से स्लाइड पर पानी में चाकलेटी रंग दिखाई देगा। यह पानी में तांबे के तत्वों के घुले होने का ज्ञान कराता है।



चित्र 13. पानी का सूक्ष्मदर्शी यंत्र द्वारा परीक्षण। (I) मिट्टी, (II) चिकनी मिट्टी, (III) खड़िया मिट्टी, (IV) लोह के आक्साइड, (V) गेलिओनेला बैक्टीरिया, (VI) क्रिनोथ्रीक्स बैक्टीरिया, (VII) शैवाल, (VIII) यीस्ट्, (IX) फफूंदी, (X) क्रस्टेशियन, (XI) प्रोटोजोआ, (XII) कीड़ा, (XIII) ऊन, (XIV) बाल, (XV) रुई और (XVI) रेशम।

5. पानी में शाक-सब्जियों की गंदगी, शैवाल, फफूंदी, लोहे पर विकसित होने वाले जीवाणु, मैंगनीज जीव तथा क्रस्टेशियन और प्रोटोजोआ आदि पाये जाते हैं। इन जीवाणुओं को प्लेन्क्टन कहते हैं। इनके पानी में रहने से उसमें आपत्तिजनक रंग, स्वाद और गंध पैदा हो जाते हैं। ऐसा पानी प्रदूषण का द्योतक होता है। ऐसे पानी का जैवाणविक परीक्षण करना चाहिये। छानने की विधि द्वारा पानी में से बड़े जीव तो हट जाते हैं परन्तु छोटे जीव-जन्तु छने हुए पानी के साथ निकल जाते हैं।

6. प्रदूषण-युक्त छिछले कुओं व धरातल के पानी में भेड़ की ऊन, बाल एवं मांस के रेशे भी पाये जा सकते हैं। ऐसे पानी में कार्बनिक पदार्थ की अशुद्धियां होने पर यह कहा जा सकता है कि यह नालियों में बहने वाली गन्दगी के द्वारा संदूषित पानी है। भेड़ के ऊन में मेंड्युला (भीतरी भाग) व कोरटेक्स (बाहरी भाग) होते

हैं व उसके दोनों ओर करोती जैसे दांतेदार रेशे भी दिखाई देते हैं, जबकि बालो में मेंड्यूला काफी गहरे रंग का व बड़ा होता है और उसमें कोरटेक्स कम होता है तथा दांतेदार रेशे नही होते हैं। इसकी सतह चिकनी होती है। मैंड्यूला विभिन्न रंगो के भी पाये जाते हैं, तथा हवा की उपस्थिति के कारण उसका रंग गहरा होता है। गंदे पानी में फफूंद भी पायी जाती है। सूक्ष्मदर्शी यंत्र मे रूई के रेशे सांप के आकार में मुड़े हुए से दिखाई देते हैं तथा उनमें मैंड्यूला का अभाव होता है और वे हमेशा समूह में पाये जाते हैं।

13

वायु का जैविक परीक्षण

परिचय :

विकास के वर्तमान दौर में शहर, जनसंख्या और उद्योगों को आश्रय देता है। सुविधा सम्पन्न स्थान की कमी और ठीक से सफाई का न होना, वातावरण में जीवाणुओं की वृद्धि करता है। इसकी चपेट मे हर साल सैकड़ो-हजारो लोग और जानवर आ रहे है। सूक्ष्मजीवी हवा मे प्रजनन नही कर सकते और हवा मे ज्यादातर उनकी वृद्धि मनुष्यो या जानवरों से ही होती है। जीवाणुओ का हवा में उपस्थित होना प्रदूषण का सूचक है। ये स्वस्थ मनुष्यों एवं पशुओ मे रोग उत्पन्न करते हैं और दूध, मांस, अण्डे, पानी एव इनसे बनी खाद्य सामग्री का हवा के जीवाणुओ द्वारा संदूषण होता जाता है। हवा से फैलने वाली कुछ सामान्य बीमारियों मे क्षय रोग, सेप्टिक सोर थ्रोट, एन्थ्रैक्स, न्युमोनिया, मम्पस, इनफ्लूएन्जा, ओरनिथोसिस, रानीखेत और खुले घावों मे फैलने वाले कुछ जीवाणु भी सम्मिमित है। हवा शुद्ध है या अशुद्ध, यह वहा के लोगों और पशुओं की संख्या, वातावरण एवं पेड़-पौधों की सख्या पर निर्भर करती है। धूल में विद्यमान सूक्ष्मजीवी हवा द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर आसानी से पहुच जाते हैं। रहने के स्थान पर सूक्ष्मजीवी की अधिक सख्या में उपस्थिति यह जताती है कि उस स्थान पर गन्दी हवा की निकासी की समुचित व्यवस्था मे कुछ कमी है तथा यह अत्यधिक प्रदूषण की सूचना देता है। सूक्ष्मजीवियों की संख्या मे वृद्धि के साथ ही तापक्रम मे वृद्धि, आर्द्रता एवं कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा का वायुमण्डल में अधिक होना प्रदूषण का सूचक है। ये सभी मनुष्यो तथा जानवरो के शरीर में रोग प्रतिरोध की क्षमता को कम करते है तथा इससे ऐसे दूषित वातावरण में रहने वाला प्राणी रोगग्रस्त हो जाता है। घरो के अन्दर व्याप्त सूक्ष्मजीवी प्रायः धूल के कणो, सास के साथ निकलने वाले पानी के कणो, लार एव नाक से निकलने वाले स्राव के साथ हवा मे तैरते रहते है। भारी पदार्थ जमीन पर जल्दी ही बैठ जाते हैं, जबकि विकारजनक रोग के जीवाणु के उपर्युक्त हल्के कणों को जब कोई प्राणी श्वास के साथ ग्रहण करता है तो ये उसमे बीमारी पैदा कर देते हैं।

उद्देश्य : जीवाणुओ को हवा से अलग करके उसकी संख्या या किस्म ज्ञात करना।

विधियाँ :

(1) जीवाणुओं को प्लेट विधि द्वारा स्थापित करना (Settle plate method) :

पोषक अगर की दो प्लेटें लेते हैं और उनमें से एक को कुछ निश्चित समय के लिए घर के अन्दर एवं दूसरी को घर के बाहर आधा या एक मिनट तक खुला रखें। पोषक अगर बनाने की विधि हम पिछले अध्याय में लिख चुके हैं। दोनों प्लेटों को 37° सी. पर 24 घंटे तक इन्क्यूबेट करते हैं। फिर उसमें उत्पन्न सूक्ष्मजीवाणुओं की कोलोनी की संख्या को गिनते हैं और जीवाणुओं के साथ कणों को आधा या एक मिनट (जितनी देर प्लेट खोली हो) तक 4 इंच प्लेट पर 37° सी. के हिसाब से व्यक्त करते हैं।

इस तरह से घर के अन्दर और बाहर खोली गयी प्लेटों के परिणाम का तुलनात्मक अध्ययन करके वायु प्रदूषण के स्तर का पता लगाया जा सकता है। यह एक साधारण विधि है, क्योंकि प्लेट को खोलकर रखने पर सिर्फ बड़े कण ही प्लेट पर आ पाते हैं।

(2) छिद्र द्वारा वायु का नमूना लेने की विधि (Slit sampler method) :

इस विधि द्वारा हवा की एक निश्चित मात्रा को 25 मि. मि. आकार के छिद्र से गुजारा जाता है। यह हवा सीधी संवर्धन माध्यम की प्लेट पर गिरती है। फिर इस प्लेट को 37° सी पर 24 घण्टों तक इन्क्यूबेट करते हैं और उस पर आने वाले जीवाणुओं के कोलोनी की संख्या को गिन लेते हैं। इस विधि द्वारा एक घनफुट हवा में कणों के साथ चिपके हुए जीवाणुओं की संख्या का पता चल जाता है।

मान्य तुल्यता (Acceptable level) :

उद्योगों, दफ्तरों व घरों में एक घनफुट क्षेत्रफल के लिये जीवाणु-युक्त कणों की मान्य संख्या पचास है। जबकि शल्य चिकित्सा गृह के लिये इनकी मान्य संख्या दस है।

हवा में व्याप्त सूक्ष्मजीवों को हटाना :

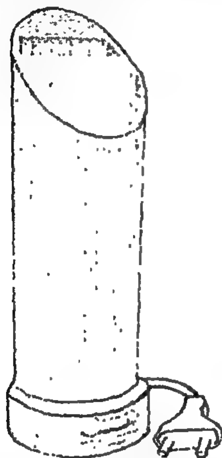
नीचे दिये गये तरीकों मे से कोई एक तरीका अपनाकर भवन की हवा से जीवाणुओं की संख्या में कमी की जा सकती है।

(1) प्रति 100 घनफुट जगह के लिये 1.5 औंस फार्मेलिन और एक औंस पोटेशियम परमैगनेट का रासायनिक घोल काम में ले सकते हैं। जो कमरा जीवाणु-रहित करना हो उसे पूर्णतया बन्द कर दें और एक बर्तन में परमैगनेट के रवों पर फार्मेलिन डाले तथा इस काम मे लगे व्यक्ति को शीघ्र ही कमरे के बाहर चला जाना चाहिये। कमरे को पूर्णतया बन्द कर दें ताकि गैस बाहर न निकल सके। कमरे को बारह घण्टे बाद खोलें और गैस को बाहर निकलने दें।

(2) सोडियम हाइपोक्लोराइट का एक प्रतिशत घोल बनाकर कमरे में छिड़काव करने से जीवाणुओं की संख्या मे कमी होती है।

(3) एक भाग ग्लिसरीन का छिड़काव करने से एक से 4 लाख भाग हवा को पूर्ण रूप से सूक्ष्मजीवियों से मुक्त किया जा सकता है।

(4) आयोनर (Ionaire) का उपयोग : जीवाणुओं द्वारा वायु प्रदूषण के सम्भावित खतरे की रोकथाम के लिये आयोनर (चित्र 14) का उपयोग काफी



चित्र 14 आयोनर*

प्रभावकारी होता है। आयोनर बिजली द्वारा सचालित किया जाता है। यह यन्त्र घरों मे सोने के या अन्य कक्ष, एयर कण्डीशन कक्ष, अस्पताल, नर्सिंग होम, क्लीनिक्स, कारखानों में, डेयरी प्लांट, कार्यालयों, पाठशालाओं, प्रयोगशालाओं, वाणिज्यिक प्रतिष्ठानो, जानवरों के रहने वाली जगहों जिसमे खासकर दूध दुहने का स्थान, कुक्कुट शाला आदि स्थानों के लिए बहुत उपयोगी है। इसका उपयोग खासकर फेफड़ों के रोगों से ग्रस्त, मिट्टी, पराग (Pollen), जीवाणु और विषाणु द्वारा

* Available at : *M/s. Emkaypee enterprises. Marketing & Allied Services, Gandhi Chowk, Jodhpur-342001.*

एलर्जिक रोगियों (Allergic Patients) के लिये बहुत फायदेमंद है। इसे चौबीसों घण्टे चालू रखा जा सकता है। इसमे किसी तरह की आवाज भी नही होती। इसका उपयोग बन्द भवनों के लिये ज्यादा अच्छा है। इसका असर एक कमरे मे 30 मीटर तक रहता है, तथा यन्त्र इतने भाग मे रहने वाले कणो को नेगेटिव चार्ज कर देता है, जिस कारण कण हवा में ठहर नही पाते हैं और फर्श पर आ जाते हैं। इस प्रकार वातावरण मे कणो के साथ जीवाणु भी फर्श पर आ जाते हैं और उस स्थान का वातावरण काफी हद तक स्वच्छ हो जाता है।

कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा ज्ञात करना

परिचय :

सांस क्रिया एक विधि है जिससे वातावरण और जीव के बीच गैसों का आदान-प्रदान होता है, जिससे इस क्रिया के दौरान सांस द्वारा बाहर निकली वायु का रासायनिक व भौतिक परिवर्तन हो जाता है। पल्मोनरी शिराओं मे रक्त द्वारा आक्सीजन के ग्रहण करने व कार्बन डाइआक्साइड के छोडने से फेफड़ों से निकलने वाली हवा में रासायनिक परिवर्तन होता है। हवा, जो सांस की क्रिया द्वारा बाहर छोडते हैं उसमे 16 4 प्रतिशत आक्सीजन व 4.24 प्रतिशत कार्बन डाइआक्साइड होती है, जबकि दूसरी गैसों मे कोई परिवर्तन नही आता है। जुगाली करने वाले चौपाये जानवरो के सांस द्वारा छोडी गई हवा मे आक्सीजन, कार्बन डाइआक्साइड व नाइट्रोजन के अलावा मिथेन गैस भी पायी जाती है। सांस द्वारा छोड़ी गयी हवा में भौतिक परिवर्तन उसके गर्म व हल्के होने से, आर्द्रता तथा इसके आयतन के बढ़ने से होता है। यह हवा गर्म व हल्की होने के कारण ऊपर की तरफ उठती है जिससे इसका स्थान खिडकी या दरवाजे से भीतर आने वाली ठंडी हवा ले लेती है। अतः प्राय. घरों मे प्राकृतिक तरीके से वायु के आदान-प्रदान का आधार यही है। हवा का आदान-प्रदान अगर ठीक से नही होगा तो उस स्थान पर कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा ज्यादा होगी तथा इसकी मात्रा मे वृद्धि हवा में प्रदूषण का सूचक मानी जायेगी। इसलिये घरों मे बढी हुई कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा परोक्ष रूप से वहां की हवा के आदान-प्रदान की प्रणाली की क्षमता का पता लगाने का एक आसान तरीका समझी जाती है। शुद्ध हवा कई गैसो का मिश्रण है जिसमें पानी की वाष्प भी शामिल है। हवा मे निम्न आयतन से गैसें पाई जाती हैं :—

आक्सीजन	20.94 प्रतिशत
कार्बन डाइआक्साइड	0.028--0 04 प्रतिशत
नाइट्रोजन	78.04 प्रतिशत
आर्गन	0.94 प्रतिशत
आर्द्रता	1.4 प्रतिशत

हीलियम, क्रिप्टोन, निओन इत्यादि गैसें अंश मात्र ही होती है।

उद्देश्य : भवन में उपलब्ध कार्बन डाइआक्साइड गैस की प्रतिशत निकालना।

विधियां :

कार्बन डाइआक्साइड गैस का प्रतिशत ज्ञात करने के लिये दो तरह के उपकरणों को काम में ला सकते हैं—

(1) लंग्स जैकोण्ड्रोफ उपकरण (Lung's Zecondroff Apparatus) और

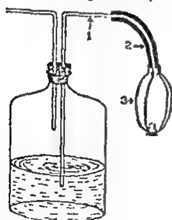
(2) हल्दाने का इधर-उधर ले जा सकने वाला उपकरण (Haldane's Portable Apparatus).

यहां सिर्फ पहली विधि की ही विस्तार से व्याख्या की जा रही है—

(1) लंग्स जैकोण्ड्रोफ विधि :

स्टाक घोल बनाना : सोडियम कार्बोनेट का $\frac{N}{10}$ घोल बनाने के लिये उबाल कर ठंडा किया हुआ 1,000 एम.एल. आसुत पानी लेकर उसमें 5 3 ग्राम सोडियम कार्बोनेट डालें। इस घोल में एक ग्राम फिनोफ्थलीन मिलाएं। इसके डालने पर घोल का रंग गुलाबी हो जाता है। प्रयोग के वास्ते घोल बनाने के लिये स्टाक घोल की एक एम.एल. मात्रा लेकर उसमें इतना आसुत पानी (उबालकर ठंडा किया हुआ) मिलाएं कि घोल की मात्रा 100 एम एल हो जाए।

विधि : प्रयोग के वास्ते कांच की एक बोतल लेते हैं। उसे साबुन व पानी से धोते हैं और फिर उसे उबालकर ठंडा किये हुए आसुत पानी से धोकर साफ करते हैं। इस साफ की हुई बोतल (चित्र 15) में 10 एम.एल. तनु किया हुआ सोडियम



चित्र 15. लंग्स जैकोण्ड्रोफ उपकरण। (1) काच की नली, (2) रबड़ की नली और (3) रबड़ का पम्प।

कार्बोनेट का घोल लेते हैं। अब बोतल के मुंह पर रबड का कार्क लगाए। कार्क पर दो गोल छेद होते हैं जिनमे कांच की मुड़ी हुई नलियां लगाते हैं। लम्बी कांच की नली का एक सिरा बोतल मे भरे हुए घोल मे डूबा रहता है जबकि उसका दूसरा सिरा रक्तचाप नापने वाले पम्प से जोड़ दिया जाता है। दूसरी काच की नली का

एक सिरा बोतल के अन्दर उसके आधे भाग तक ही उठा हुआ रहना चाहिये। इस नली का दूसरा सिरा हवा में खुला रहता है। इस प्रयोग को पहले भवन के बाहर खुले में किया जाता है। कांच की लम्बी वाली नली में लगे रक्तचाप नापने वाले पम्प को दबाकर वायुमण्डल की हवा को बोतल के अन्दर प्रविष्ट करवाते हैं। प्रत्येक बार पम्प दबाने पर पम्प में आई हुई हवा घोल में से होती हुई बुलबुलों के रूप में बाहर निकलेगी। हर बार पम्प दबाने के बाद बोतल को अच्छी तरह हिलाते हैं जिससे बोतल में उपस्थित कार्बन डाइआक्साइड गैस घोल में ठीक तरह से घुल जाये। पम्प दबाने और बोतल हिलाने की इस क्रिया को घोल के रंगहीन होने तक दोहराते हैं। इस क्रिया के लिये जितनी बार पम्प दबाया हो वह संख्या (ए) नोट कर लेते हैं। इस पूरी विधि के पीछे सिद्धान्त यह है कि घोल में कार्बन डाइआक्साइड का अवशोषण (Absorption) कराया जाता है। यह गैस अम्लीय प्रकृति की होती है, अतः घोल के साथ क्रिया करने पर वह घोल को क्षारीय से अम्लीय कर देती है जिससे घोल रंगहीन हो जाता है।

अब बोतल को ऊपर लिखी गई विधि के अनुसार धोकर साफ कर लेते हैं। बोतल में फिर से 10 एम.एल. तनु किया हुआ सोडियम कार्बोनेट का घोल लेकर प्रयोग को भवन के अन्दर दोहराते हैं। वायुमण्डल की हवा को पम्प द्वारा बोतल के भीतर तब तक प्रविष्ट करवाते रहते हैं जब तक कि घोल रंगहीन न हो जाय। पम्प को इस दौरान जितनी बार दबाया गया हो वह संख्या (बी) नोट कर लेते हैं। अब नीचे दिये गये सूत्र की सहायता से भवन में पाई जाने वाली कार्बन डाइआक्साइड का प्रतिशत ज्ञात कर सकते हैं।

सूत्र :

प्रति 10,000 वायु के भाग पर कार्बन डाइआक्साइड का भाग : $डी = \frac{4ए}{बी}$

जबकि ए = भवन के बाहर खुली जगह पर जितनी बार पम्प दबाया गया हो वह संख्या।

बी = भवन के अन्दर जितनी बार पम्प दबाया गया हो वह संख्या।

4 = वायुमण्डल में निश्चित कार्बन डाइआक्साइड की सामान्य मात्रा।

$$\text{कार्बन डाइआक्साइड की प्रतिशत} = \frac{डी \times 100}{10,000}$$

भवन में कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा सामान्य से ज्यादा होने पर सांस क्रिया तेज हो जाती है। इसकी 5 प्रतिशत मात्रा होने पर आदमी हांफने लगता है।

आपेक्षिक आर्द्रता व ओस विन्दु का अनुमान

परिचय :

जब कोई प्राणी किसी कम हवादार भवन मे रहता है तो यह देखा गया है कि वहां के वायुमंडल के तापक्रम और नमी मे बढ़ोतरी होती है। यह शरीर के द्वारा निकली गर्मी व पानी के कारण होती है। अगर इसकी मात्रा भवन मे बहुत ज्यादा बढ जाय तो शरीर से गर्मी निकलनी कम हो जाती है। अत. उच्च वातावरणीय ताप विकिरण द्वारा शरीर से निकलने वाली ऊष्मा को घटा देता है तथा अधिक आर्द्रता शारीरिक वाष्पीकरण को कम कर देती है। अगर भवन में वायु की गति ठीक से न हो तो शरीर से वाष्पीकरण और भी कम हो जाता है। दूसरे शब्दों में भवन के वायुमण्डल में आर्द्रता के बहुत बढने से शरीर से ऊष्मा बाहर निकलनी स्थिर हो जाती है और इसमे बेचैनी बढ जाती है। इस कारण पशुओ मे उत्पादन क्षमता भी कम हो जाती है। पशुघरो में आर्द्रता बढाने वाले अन्य स्रोत जैसे मल और मूत्र का जमाव, घास का बिछौना तथा फर्श की धुलाई के लिये काम में लिया गया पानी इत्यादि है। आर्द्रता को मापने से भवन के वेन्टीलेशन और वातावरण की उपयुक्तता का पता चलता है।

उद्देश्य :

(1) आपेक्षिक आर्द्रता मापना (To measure the relative humidity)

(2) ओस विन्दु को ज्ञात करना (To find out dew point)

परिभाषा :

सम्पूर्ण आर्द्रता (Absolute Humidity) : यह किसी निश्चित आयतन की वायु में उपस्थित पानी के वाष्प का भार है।

आपेक्षिक आर्द्रता :– यह किसी तापक्रम पर एक दिये गये आयतन की वायु में पानी के वाष्प की सम्पूर्ण मात्रा व उसी तापक्रम पर उतने ही आयतन की वायु को संतृप्त करने के लिये आवश्यक पानी के वाष्प की मात्रा का अनुपात है।

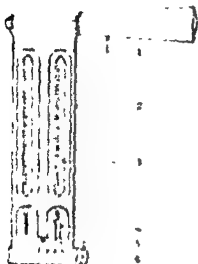
$$\text{आपेक्षिक आर्द्रता} = \frac{\text{ओस विन्दु पर संतृप्त वाष्पीय दवाव}}{\text{वायुमण्डलीय तापक्रम पर संतृप्त वाष्पीय दवाव}}$$

ओस बिन्दु :

वह तापक्रम, जिस पर हवा से आर्द्रता टपकती है उसे ओस बिन्दु कहते हैं। यह परिवर्तनशील है तथा वातावरण में पानी के वाष्प की मात्रा पर निर्भर करता है।

उपकरण :

स्लिंग साइक्रोमीटर या ह्वर्लिंग हाइग्रोमीटर (चित्र 16), हाइग्रोमेट्रिक टेबल।



चित्र 16 ह्वर्लिंग हाइग्रोमीटर। (1) हैंडिल, (2) लकड़ी का फ्रेम, (3) थर्मामीटर, (4) विक, (5) बल्ब और (6) [illegible]।

रीडिंग लेते है यानि कि जब तक गीले वल्ब वाले थर्मामीटर की लगातार दो रीडिंग एक जैसी न आ जाए। इससे यह पता चलता है कि यह अपने न्यूनतम तापक्रम पर पहुंच गया है। शुष्क एव गीले वल्ब के थर्मामीटर की रीडिंग लिख लेते है। थर्मामीटर का वल्ब लगभग 600 फीट प्रति मिनट की गति से घूमना चाहिये।

शुष्क व गीले वल्ब के तापक्रम के अन्तर को डिप्रेसन कहते है। चार्ट की सहायता से डिप्रेसन व शुष्क वल्ब की रीडिंग काम मे लेते हुए आपेक्षिक आर्द्रता ज्ञात कर लेते है (परिशिष्ट III) तथा ओस बिन्दु सारिणी की सहायता से ज्ञात कर लिया जाता है।

किसी अच्छे हवादार भवन की आपेक्षिक आर्द्रता उस भवन के बाहर की वायु की आपेक्षिक आर्द्रता से पाच प्रतिशत से ज्यादा नही होनी चाहिये।

हवा की शीतलन शक्ति एवं वायु-वेग का अनुमान

परिचय :

भवन मे हवा के सही आवागमन का मुख्य उद्देश्य उसमें व्याप्त ऊष्मा को नियन्त्रित रखना है। शरीर में ऊष्मा बराबर बनती रहती है। शरीर के तापमान को सामान्य बनाये रखने के लिये इसकी कुछ मात्रा का शरीर से निकलना जरूरी होता है। कम हवादार घरो मे हम कुछ प्रतिकूलता का अनुभव करते हैं, क्योंकि उसमे हवा रुकी हुई होती है। ठंडे वातावरण में जब शरीर से पसीना नही निकलता है तब शरीर की उष्मा विकिरण द्वारा और ठंडी हवा के शरीर को छूकर निकलते रहने से बाहर निकलती है। इस प्रकार शरीर से जो ऊष्मा निकलती है उसका हमे बराबर पता लगता रहता है। गर्मी के मौसम में या ज्यादा परिश्रम करने पर शरीर से बहुत पसीना निकलता है और इस प्रकार शरीर से ऊष्मा निकलती है। जब वातावरण का तापक्रम शरीर के तापक्रम से ज्यादा होता है उस समय शरीर से ऊष्मा के निकलने मे गिरावट आती है तथा ऊष्मा का निकास वाष्पीकरण द्वारा होता है। इसे हम गुप्त उष्मा का ह्रास कहते है। ऊष्मा की मात्रा में गिरावट का पता लगाने से भवन के वेन्टीलेशन की क्षमता का ज्ञान आसानी से लगाया जा सकता है। जिस दर से ऊष्मा की मात्रा मे गिरावट आती है उसे वातावरण की शीतलन शक्ति कहा जाता है। वायुमण्डलीय हवा को ठंडा करने की शक्ति को मापने के लिये कैंटा थर्मामीटर का प्रयोग किया जाता है। कैंटा थर्मामीटर सीधे ही वायु के अदान-प्रदान को दरसाता है। अत. इस उपकरण की सहायता से वेन्टीलेशन की कार्य-प्रणाली का पूर्ण रूप से पता लगाया जा सकता है।

उद्देश्य :

(1) हवा की शीतलन शक्ति का पता लगाना।

(2) हवा के वेग का पता लगाना।

शीतलन शक्ति :

उपकरण : कम और ज्यादा सीमा वाले कैंटा थर्मामीटर व कैंटा चार्ट।

कम सीमा वाले कैंटा थर्मामीटर - इसका आविष्कार सर लियोनार्ड हिल ने किया था। थर्मामीटर का मुख्य उद्देश्य वायुमण्डल की हवा की शीतलन शक्ति को

मापना है और इसके द्वारा शरीर की ऊष्मा-ह्रास का पता लगाया जा सकता है। यह एक स्प्रिट थर्मामीटर (चित्र 17) है जिसमें एक वल्व 4 से मी लम्बा व 2 से. मी. व्यास का होता है। इस वल्व में लाल रंग का एल्कोहल भरा रहता है। इसके ऊपर जुड़ी हुई 5 से मी लम्बी काच की एक नली होती है और उसके अंतिम सिरे पर सेफ्टी वल्व लगा रहता है। थर्मामीटर की इस नली पर 100° एफ तथा 95° एफ. के दो निशान अंकित रहते हैं। इस नली पर एक "एफ" फेक्टर भी अंकित रहता है जो प्रत्येक उपकरण के लिये निश्चित होता है। जब एल्कोहल 100° एफ से 95° एफ. पर ठंडा होकर लम्बी नली में नीचे उतरता है तब यह फेक्टर प्रति वर्ग सेन्टीमीटर पर मिलिकॅलोरी में ऊष्मा के हानि को दिखाता है जो कि वल्व के कुल क्षेत्रफल से भाग देने से ज्ञात होता है। कॅटा थर्मामीटर को गीला करके काम मे लेने के लिये उसके बल्व पर रेशम के कपड़े की टोपी चढ़ा देते है और इसके बाद जो रीडिंग लेते है उसे गीली कॅटा रीडिंग कहते है। भवन मे आरामदायक वातावरण का पता लगाने के लिये शुष्क और गीले कॅटा शीतलन शक्ति का साथ-साथ पता लगाना जरूरी होता है।



चित्र 17. कॅटा थर्मामीटर

उच्च सीमा का कॅटा थर्मामीटर . यह कॅटा थर्मामीटर भी कम सीमा वाले कॅटा थर्मामीटर जैसा ही बना हुआ होता है लेकिन इसके वल्व मे नीले रंग का एल्कोहल भरा रहता है। इसकी नली पर 130° एफ. व 125° एफ. के दो निशान अंकित होते हैं। भवन में हवा की शीतलन शक्ति का पता लगाने के लिये जब वायुमण्डल का तापक्रम 100° एफ. से कम हो तो कम सीमा वाला कॅटा थर्मामीटर काम मे लेते हैं और अगर वायुमण्डल का तापक्रम 100° एफ. से ज्यादा हो तो उच्च सीमा वाला कॅटा थर्मामीटर काम मे लेते हैं।

विधि : कॅटा थर्मामीटर को एक स्टैण्ड से लटकाकर उसके वल्व को तब तक गुनगुने पानी के अन्दर डुबोये रखते है जब तक कि एल्कोहल इसके वल्व तक न पहुंच जाय। शीघ्र ही पानी को हटाकर वल्व के बाहरी भाग को एक साफ कपड़े के द्वारा पोंछ लेते है तथा विराम घडी (Stop watch) को चालू कर देते है और एल्कोहल के ऊपर वाले निशान से नीचे वाले निशान तक आने मे लिया गया समय अंकित कर लेते है। पहली रीडिंग को छोड़कर बाकी तीन रीडिंगों का औसत (टी) लेते हैं। फॅक्टर "एफ" को ऊपर ली गयी रीडिंग से भाग देने पर शुष्क कॅटा रीडिंग प्राप्त हो जाती है। इसको मिलिकॅलोरीज प्रति वर्ग से.मी. प्रति सैकड से दरसाते है (1,000 मिलिकॅलोरी=1 ग्राम कॅलोरी)। गीले कॅटा रीडिंग लेने के लिए थर्मामीटर के वल्व पर रेशम के कपड़े का खोल चढ़ा देते हैं और रीडिंग लेने के लिए उपर्युक्त विधि को दोहराते है। पहली रीडिंग को छोड़ देते है और बाकी ... न

रीडिंगो का औसत निकाल लेते हैं।

$$\text{शीतलन शक्ति} = \frac{\text{एफ}}{\text{टी}}$$

जबकि F= कैंटा फैक्टर

T= एल्कोहल द्वारा ऊपर के निशान से नीचे के निशान तक आने में लिया गया औसत समय।

कैटा थर्मामीटर के स्तर के मानक : आरामदायक पशुघरों में शुष्क कैटा की अनुक्रमणिका का औसत 6 होता है और इसकी सीमा 4 से 8 तक है। गीले कैटा थर्मामीटर की औसत अनुक्रमणिका 18 है तथा इसकी सीमा 16 से 20 तक होती है।

वायु वेग :

वायु वेग का पता लगाने के लिये थर्मामीटर से मिलान करते हुए कैटा चार्ट का प्रयोग करते है। वायुमण्डलीय तापक्रम की रीडिंग भी लिख लेते हैं। वायुमण्डलीय तापक्रम तथा शुष्क कैटा रीडिंग को जोड़ते हुए समय के लिये एक रेखा खींचते हैं और यदि समय बढा दिया जाय तो यह वायु वेग को फीट प्रति मिनट में दरसाता है।

परिशिष्ट–I

पानी के परीक्षण के लिये काम में आने वाले रीएजेन्ट्स (Reagents) को तैयार करना :—

1. अमोनिया परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

नेस्लरस रिएजेंट :

एक फ्लास्क में 100 ग्राम मरक्युरिक आयोडाइड व 70 ग्राम पोटेशियम आयोडाइड लें और 400 एम.एल. आसुत पानी डालकर कुछ देर तक हिलाए। अब 500 एम.एल आसुत पानी मे 100 ग्राम सोडियम हाइड्रोआक्साइड को घोले और ठंडा होने पर उसे ऊपर तैयार किये गये घोल मे मिलाएँ। इस मिश्रण मे आसुत पानी मिलाकर कुल एक लीटर घोल बनाएँ। जब इसमे आया लाल अवक्षेप नीचे बैठ जाय तो ऊपर के घोल को अलग निकाल कर प्रयोग के लिये काम में लें।

2. क्लोराइड परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

सिल्वर नाइट्रेट का घोल :

इसे बनाने के लिये 396 ग्राम सिल्वर नाइट्रेट को एक लीटर आसुत पानी मे घोलें।

3. सल्फेट परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

बेरियम क्लोराइड का घोल :

इसे बनाने के लिये 10 ग्राम बेरियम क्लोराइड को 100 एम एल आसुत पानी में घोलते है।

4. नाइट्राइट परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

(i) सल्फानेलिक अम्ल :

इसे बनाने के लिये 0.60 ग्राम सल्फानेलिक अम्ल को 70 एम एल. गर्म आसुत पानी में मिलावें और ठंडा होने पर 20 एम.एल. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल डालें। इस घोल में आसुत पानी मिलाकर इसकी मात्रा 100 एम.एल. कर लें।

(ii) नेफ्थेलमीन हाइड्रोक्लोराइड रीएजेन्ट :

एक एम.एल. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल मिले आसुत पानी में 0.60 ग्राम

1–नेफ्थलमीन हाइड्रोक्लोराइड मिलाएँ। इसमें आसुत पानी मिलाकर घोल की मात्रा 100 एम एल कर ले। वह रंगहीन हो जाये तब उसे एक सप्ताह तक रखें। अगर परीक्षण सही परिणाम न दे तो उसे काम में न लावें। ज्यादा समय तक काम में लेने के लिये उसे रेफ्रीजरेटर में रखना चाहिये। काम में लेने से पहले उसे छान लें।

5. क्लोरीन परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

फेरिक क्लोराइड का घोल :

इसे बनाने के लिये 100 ग्राम फेरिक क्लोराइड को 39 एम.एल. आसुत पानी में मिलाएँ।

6. पानी की कठोरता के परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

(i) इथाइलीन डाइअमीन टेट्रा एसीटिक अम्ल (ई.डी टी ए.) का घोल :

इसे तैयार करने के लिये 3.722 ग्राम ई.डी टी.ए. को एक लीटर आसुत पानी में घोले।

(ii) अमोनिया बफर का घोल :

इसे बनाने के लिये 16.9 ग्राम अमोनियम क्लोराइड को 143 एम एल. द्रव अमोनिया में मिलाएँ और आसुत पानी मिलाकर घोल की मात्रा 250 एम.एल. करे।

(iii) यूरोक्रोम ब्लैक टी :

0 5 ग्राम यूरोक्रोम ब्लैक टी को 100 एम. एल. एबसोल्यूट एल्कोहल में मिलाकर बनाए।

7. क्लोराइड के (क्वांटीटेटिव) परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

(i) सिल्वर नाइट्रेट का घोल :

इसे बनाने के लिये 4.791 ग्राम सिल्वर नाइट्रेट को एक लीटर आसुत पानी में घोले। एक एम एल. घोल एक भाग क्लोराइड के बराबर होगा।

(ii) पोटेशियम क्रोमेट का घोल :

इसे बनाने के लिये 5.0 ग्राम पोटेशियम क्रोमेट को 100 एम.एल. आसुत पानी में उबाल कर घोल तैयार करें। जब यह ठंडा हो जाये तब सिल्वर नाइट्रेट का घोल, इसमें लाल रंग का अवक्षेप आने तक डालते रहे। घोल को छानकर परीक्षण के काम में लें। इसे काच की रंगीन ढक्कन वाली बोतल में ही रखे।

8. नाइट्राइट के क्वांटीटेटिव परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

(i) इथाइलीन डाइअमीन टेट्रा एसीटिक अम्ल (ई.डी.टी.ए.) का घोल :

इसे तैयार करने के लिये 0.5 ग्राम ई डी टी.ए. को सौ एम.एल. आसुत पानी में घोलें।

(ii) सल्फानिलिक अम्ल रीएजेन्ट :

सल्फानिलिक अम्ल की 0.60 ग्राम मात्रा को 70 एम एल गर्म आसुत पानी मे मिलाकर घोलें। जब वह ठंडा हो जाये तब उसमें 20 एम एल. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाएं और उसमें कुछ आसुत जल मिलाकर घोल की मात्रा सौ एम एल. कर लें।

(iii) नेप्थलमीन हाइड्रोक्लोराइड का घोल :

आसुत जल की 99 एम.एल. मात्रा में 0.60 ग्राम 1–नेप्थलमीन हाइड्रोक्लोराईड घोलें और उसमें एक एम. एल. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाए। उस घोल को छान कर काम में लाएँ और हमेशा रेफ्रिजरेटर में ही रखें।

(iv) सोडियम एसिटेट बफर का घोल, 2 एम

इसे बनाने के लिये 16.4 ग्राम $NaC_2H_3O_3$ लें तथा उसे आसुत पानी में घोलें और उसकी मात्रा सौ एम.एल. कर लें। इसे उपयोग में लाने से पूर्व छानना चाहिये।

(v) सोडियम नाइट्राइट का घोल .

इसे बनाने के लिये सोडियम नाइट्राइट की 1.322 ग्राम मात्रा लेकर उसे कुछ भाग आसुत पानी मे घोल लें और उसमे आसुत पानी और मिलाते हुए घोल की मात्रा 1,000 एम. एल. कर लें। इसमे एक एम एल क्लोरोफार्म मिलाकर रखने से यह सुरक्षित रहता है, 1.00 एम एल.=0.25 मि. ग्राम एन। जब घोल को काम मे लेना हो तो, 10 एम. एल. नाइट्राइट का घोल लें और उसमे आसुत पानी मिलाते हुए कुल मात्रा 1,000 एम. एल. कर ले। एक एम. एल. घोल=0.500 μgN और परीक्षण करने के समय घोल को उसी समय बनाकर तैयार करे।

9. नाइट्रेट के क्वांटीटेटिव परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

(i) सिल्वर सल्फेट का घोल :

इस घोल को तैयार करने के लिये 4.40 ग्राम सिल्वर सल्फेट को 1,000 एम. एल. आसुत पानी मे मिलावें। एक एम. एल.= एक मि. ग्राम क्लोराइड।

(ii) फिनोल डाइसल्फोनिक अम्ल का रीएजेन्ट

इसे बनाने के लिये 25 ग्राम सफेद फीनोल (C_6H_5OH) लें और उसमे 150 एम. एल. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाएँ, 75 एम. एल. सल्फ्यूरिक अम्ल गर्म करें और उसमें जब धूआँ उठने लगे (15 प्रतिशत मुक्त SO_3) तब उसे घोल मे डाल कर मिलाएँ। इस घोल को दो घंटे तक गर्म पानी के टब मे रख कर गर्म होने दें।

(iii) 12 एन पोटेशियम हाइड्रोआक्साइड का घोल :

इस घोल को तैयार करने के लिये 673 ग्राम पोटेशियम हाइड्रोआक्साइड

का कुछ भाग आसुत पानी में मिलाएं। यह जब घुल जाय तब इसमें आसुत पानी मिलाते हुए घोल की मात्रा एक लीटर कर लें।

(iv) नाइट्रेट का मुख्य घोल :

0.7218 ग्राम एनहाइड्रस पोटेशियम नाइट्रेट लें और इसमें आसुत पानी मिलाते हुए घोल की कुल मात्रा 1,000 एम. एल. कर लें; इसमे 100 मि. ग्राम प्रति एक एन होती है।

(v) स्टेण्डर्ड नाइट्रेट का घोल :

50 एम. एल. मुख्य नाइट्रेट घोल लें और उसका सारा पानी वाष्प के द्वारा उड़ा दे। पैंदे मे बचे रसायन को 2 एम. एल फिनोल डाइसल्फोनिक अम्ल रीएजेन्ट मिलाकर घोलें और उसमें आसुत पानी मिलाकर घोल की मात्रा 500 एम. एल. कर लें। एक एम. एल. = 10.00 मि. ग्राम एन = 44.3 μgNO_3

10. फ्लोराइड के क्वांटेटेटिव परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

(i) एलिजरीन लाल रीएजेन्ट :

इसे तैयार करने के लिये 0.75 ग्राम 3—एलिजरीन सल्फ्यूरिक अम्ल सोडियम साल्ट (Alizarin red S) को 1,000 एम. एल. आसुत में घोलें।

(ii) जरकोनिल अम्ल रीएजेन्ट :

0.354 ग्राम जरकोनिल क्लोराइड ओक्टाहाइड्रेट ($ZrOCl_2 . 8H_2O$) को 600 एम. एल आसुत पानी मे मिलाए। इसमें 33.3 एम. एल. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल और 101 एम एल. सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाएँ। इन दोनों अम्ल को घोल मे थोडा-थोड़ा डालें और धीरे-धीरे हिलाते रहे। इसमे आसुत पानी मिलाकर घोल की मात्रा एक लीटर कर लें तथा इसे एक घटे बाद काम में लें।

(iii) सोडियम फ्लोराइड का घोल :

0.221 ग्राम सोडियम फ्लोराइड को एक लीटर आसुत पानी में मिलाकर घोल तैयार करें। परीक्षण करने के वक्त बनाये गये घोल की 100 एम. एल. मात्रा लेकर उसमें 900 एम. एल. आसुत पानी मिलाकर काम में लाएं। एक एम एल. घोल 10.0 μgF के बराबर होता है।

11. बी. ओ. डी. के परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

(i) तनु करने के लिये पानी :

इस परीक्षण के लिये काम मे लिए जाने वाले पानी मे क्लोरीन, क्लोरामीन, क्षार और अम्ल की मात्रा बिल्कुल ही नही होनी चाहिये तथा इसमे तांबे की मात्रा 0.01 मि. ग्राम प्रति लीटर से कम होनी चाहिये।

(ए) फॉसफेट बफर :

पोटेशियम डाइहाइड्रोजन आरथोफासफेट	(KH_2PO_4)	8.5 ग्राम
पोटेशियम फॉसफेट डाइवेसिक	(K_2HPO_4)	21 75 ग्राम
सोडियम फॉसफेट डाइवेसिक	(Na_2HPO_4)	33 4 ग्राम
अमोनियम क्लोराइड	(NH_4Cl)	1.7 ग्राम

इन सभी रसायनो को एक लीटर आसुत पानी मे घोलें और उसका पी एच. 7.2 स्थापित करें।

(बी) मैगनीसीयम सल्फेट का घोल :

22.5 ग्राम मैगनीसीयम सल्फेट को एक लीटर आसुत पानी में घोलें।

(सी) कैल्शियम क्लोराइड का घोल ·

27.5 ग्राम एनहाइड्रस कैल्शियम क्लोराइड को एक लीटर आसुत पानी मे घोलें।

(डी) फेरिक क्लोराइड का घोल .

इसे बनाने के लिये 0.25 ग्राम फेरिक क्लोराइड को एक लीटर आसुत पानी मे घोलें।

तनुकरण के लिये जो पानी बनाया जाता है उसके लिये उपरोक्त ए, बी, सी और डी तैयार किये घोल की एक-एक एम. एल. मात्रा ले और उसमे आसुत पानी मिलाकर एक लीटर घोल तैयार करे। मशीन द्वारा उसमे हवा प्रवाहित करके काम में लें।

(ii) सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल :

इस अम्ल की शक्ति 36 एन होती है इसलिये इसका एक एम. एल एलकली आयोडीन घोल की 3 एम. एल मात्रा के बराबर होता है।

(iii) सोडियम थायोसल्फेट का घोल($\frac{N}{80}$) :

24.82 ग्राम सोडियम थायोसल्फेट को एक लीटर आसुत पानी मे घोले($\frac{N}{10}$) परीक्षण करने के समय ($\frac{N}{80}$) 125 एम. एल. घोल लें और उसमे आसुत पानी मिलाकर उसकी मात्रा 1,000 एम. एल. कर लें। इसमें पोटेशियम क्रोमेट की मात्रा मिलाकर स्टेन्डराइज करे तथा इसके लिये स्टार्च घोल को इन्डीकेटर के रुप मे काम में लाएं।

(iv) पोटेशियम डाइक्रोमेट का घोल (0.025 एन) :

पोटेशियम डाइक्रोमेट को 103° सी पर दो घंटे तक रख कर सुखाए और इसके 1.226 ग्राम को एक लीटर आसुत पानी मे घोले।

(v) स्टार्च का घोल :

इसे बनाने के लिये 6 ग्राम स्टार्च को 20 एम. एल. पानी में डालें और

घोलकर घोल । इसे 980 एम. एल. उबलते हुए आसुत पानी में डालें और कुछ समय तक उबलता रहने दें । उसे ठंडा करके रात भर के लिये रेफ्रिजरेटर में रखें। इसके ऊपर के पानी को धीरे-धीरे निकाल कर अलग करें और उसमें 1.25 ग्राम सेलिसिलिक अम्ल या कुछ बूंदें टोलुइन की मिलाकर उसे सुरक्षित स्थान पर रखें।

(vi) एलकली आयोडीन का घोल :

सोडियम हाइड्रोआक्साइड	500 ग्राम
पोटेशियम आयोडीन	150 ग्राम
सोडियम एजाइड	10 ग्राम

इन सभी को आसुत पानी में घोलें और इसकी मात्रा 1,000 एम एल. करें। इस रीएजेन्ट को जब स्टार्च के घोल के साथ तनु किया जाय या अम्लीय किया जाय तब किसी भी तरह का रंग पैदा नहीं होना चाहिये।

(vii) मैंगनस सल्फेट का घोल :

480 ग्राम $MnSO_4 . 4H_2O$ या 354 ग्राम $MnSO_4 . H_2O$ को आसुत पानी में घोलें और इसकी मात्रा एक लीटर करें।

12. केमीकल आक्सीजन डिमाण्ड के लिये रीएजेन्ट

(i) पोटेशियम डाइक्रोमेट का घोल (0.25 एन) :

12.25 ग्राम पोटेशियम डाइक्रोमेट को एक लीटर आसुत पानी में घोलें।

(ii) फेरोइन इन्डीकेटर का घोल :

1 485 ग्राम 1,10– फीनेनथ्रोलीन (मोनोहाइड्रेट) और 0 695 ग्राम फेरस सल्फेट ($FeSO_4 . 7H_2O$) को 100 एम. एल. आसुत पानी में घोलें।

(iii) फेरस अमोनियम सल्फेट का घोल (0.25 एन) :

98 ग्राम फेरस अमोनियम सल्फेट को 100 एम.एल आसुत पानी में घोलें और उसमें 20 एम एल. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाएँ। जब वह ठंडा हो जाय तब उसमें कुछ आसुत पानी और मिलाकर घोल की मात्रा एक लीटर कर लें। परीक्षण के समय उस घोल को हमेशा पोटेशियम डाइक्रोमेट घोल से स्टेन्डराइज करते हैं। इसके लिये 25 एम. एल. पोटेशियम डाइक्रोमेट घोल को 250 एम. एल तक तनु करके उसमें 20 एम. एल. सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल मिलाएं। जब वह ठंडा हो जाय तब उसमें 3 से 6 बून्दें फेरोइन इंडीकेटर की मिलाकर उसे फेरस अमोनियम सल्फेट के घोल से टाइट्रेट करें।

$$\text{फेरस अमोनियम सल्फेट की नारमलेटी} = \frac{\text{जितना एम. एल. पोटेशियम डाइक्रोमेट का घोल लिया} \times 0.25}{\text{जितना एम. एल. फेरस अमोनियम सल्फेट टाइट्रेसन के दौरान काम में आया}}$$

(iv) सान्द्र सल्फ्यूरिक अम्ल 98 प्रतिशत :

(v) सिल्वर सल्फेट के कण :

13. लोहे व तांबे के परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

पोटेशियम फेरो सायनाइड का घोल :

इसे बनाने के लिये 8 ग्राम पोटेशियम फेरो सायनाइड को 100 एम एल. आसुत पानी में घोलकर उसे छान लें।

14. सीसे के परीक्षण के लिये रीएजेन्ट

पोटेशियम आयोडाइड का घोल :

इसे 25 ग्राम पोटेशियम आयोडाइड पाउडर को 50 एम. एल. आसुत पानी में घोल कर बनाया जाता है।

संभावित सारणी (मेक्कारडी)

पानी की मात्रा	10 एम.एल	1 एम.एल	0.1 एम.एल.*		पानी की मात्रा	10 एम.एल.	1 एम.एल.	0.1 एम.एल.*	
पानी की हर एक मात्रा के नमूनों का परीक्षण	5	5	5		पानी की हर एक मात्रा के नमूनों का परीक्षण	5	5	5	
1	2	3	4	*	5	6	7	8	*
स्पष्ट प्रतिक्रिया बताने वाले नमूनों की संख्या (अम्ल एवं गैस)	0	0	0	0	स्पष्ट प्रतिक्रिया बताने वाले नमूनों की संख्या (अम्ल एवं गैस)	4	0	0	13
	0	0	1	2		4	0	1	17
	0	0	2	4		4	0	2	20
	0	1	0	2		4	0	3	25
	0	1	1	4		4	1	0	17
	0	1	2	6		4	1	1	20
	0	2	0	4		4	1	2	25
	0	2	1	6		4	2	0	20
	0	3	0	6		4	2	1	25
	1	0	0	2		4	2	2	30
	1	0	1	4		4	3	0	25
	1	0	2	6		4	3	1	35
	1	0	3	8		4	3	2	40
	1	1	0	4		4	4	0	35
	1	1	1	6		4	4	1	40
	1	1	2	8		4	4	2	45
	1	2	0	6		4	5	0	41
	1	2	1	8		4	5	1	50
	1	2	2	10		4	5	2	55
	1	3	0	8		5	0	0	25
	1	3	1	10		5	0	1	130
	1	4	0	11		5	0	2	45

1	2	3	4	*	5	6	7	8	*
	2	0	0	5		5	0	3	60
	2	0	1	7		5	0	4	70
	2	0	2	9		5	0	0	35
	2	0	3	12		5	1	1	45
	2	1	0	7		5	1	2	65
	2	1	1	9		5	1	3	85
	2	1	2	12		5	1	4	115
	2	2	0	9		5	2	0	50
	2	2	1	12		5	2	1	70
	2	2	2	14		5	2	2	95
	2	3	0	12		5	2	3	120
	2	3	1	14		5	2	4	150
	2	4	0	15		5	2	5	175
	3	0	0	8		5	3	0	80
	3	0	1	11		5	3	1	110
	3	0	2	13		5	3	2	140
	3	1	0	11		5	3	3	175
	3	1	1	14		5	3	4	200
	3	1	2	17		5	3	5	250
	3	1	3	20		5	4	0	130
	3	2	0	14		5	4	1	170
	3	2	1	17		5	4	2	225
	3	2	3	20		5	4	3	275
	3	3	0	17		5	4	4	350
	3	3	1	20		5	4	5	425
	3	4	0	20		5	5	0	250
	3	4	1	25		5	5	1	353
	3	5	0	25		5	5	2	550
						5	5	3	900
						5	5	4	1600
						5	5	5	1800+

* कोलीफार्म जीवाणुओं की 100 एम एल. पानी में सम्भावित संख्या।

परिशिष्ट–III

गीले और शुष्क बल्व हाईग्रोमीटर की सारणी (वेन्टीलेटेड किस्म का हाईग्रोमीटर)
सूची के रूप में दी गयी आपेक्षिक आर्द्रता की दरें*

गीले बल्व में डिप्रेसन °C में	0	3	5	6	9	10	12	15	18	20	21	24	25	27	30	33	35	36	39	40
0 5°C	90	92		94	94		94	95		96		96		96	96	96		97	97	[illegible]
1	81	84	87	87	88	88	89	90	90	90	91	92	92	93	93	93	93	93	94	[illegible]
1.5	71	76		80	82	83	84	85	86		87	88		90	90	90		90	91	[illegible]
2	64	69	72	73	76	76	78	80	82	82	83	85	85	86	86	86	87	87	88	88
2.5	55	62		66	70		73	76	78		79	81		82	82	83		84	85	[illegible]
3	46	54		60	65		68	71	73		75	77		79	79	80		81	85	[illegible]
3 5	38	46		54	59		63	66	69		71	74		76	76	77		78	79	[illegible]
4	29	40		47	53		58	62	65		67	70		72	73	74		75	76	[illegible]
4 5	21	32		41	48		53	58	61		64	66		68	70	71		72	74	[illegible]
5	13	25	33	35	42		48	53	57	59	60	63	63	65	67	68	70	70	71	72
6		12	21	23	32	34	38	44	52	52	53	56	57	59	61	63	64	64	66	66
7			9	11	22	25	30	36	42	45	46	49	50	53	55	57	59	59	61	61
8					12	15	21	28	35	38	39	43	44	47	50	52	54	54	56	56
9					3	6	12	20	27	30	32	37	38	41	44	47	50	50	52	52
10							4	13	20	24	26	31	33	36	39	42	44	45	47	48
11								4	13		19	26		31	35	37		41	43	
12									6		13	21		26	30	33		36	39	

(शुष्क बल्व का तापक्रम °C में)

* नेशनल इन्स्ट्रूमेन्ट लिमिटेड, जावदपुर, कलकत्ता



लेखक परिचय

डॉ. एस. के. पुरोहित पशुचिकित्सा एवं पशुविज्ञान महाविद्यालय, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर, के औषध एवं जनस्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य विज्ञान विभाग में सहायक प्राध्यापक *(Assistant Professor)* हैं। आप पशुचिकित्सा और जनस्वास्थ्य विज्ञान के क्षेत्र में एक जानेमाने लेखक हैं। इनकी तीन पुस्तकें और 44 शोध-पत्र राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं।